।। ओ३म् ।।

आर्य-संसार

[वार्षिक विशेषांक १९८८]

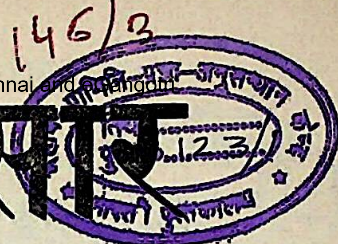
* धर्म का आदि स्रोत *



महर्षि दयानन्द सरस्वती

प्रकाशक :
आर्य समाज कलकत्ता

आर्य-संसार



मार्गशीर्ष-पौष
२०४५

नवम्बर-दिसम्बर
१९८८

वर्ष-३१
अंक ११-१२

मूल्य :
यह अंक ४ रुपये
वार्षिक १२ रुपये

* धर्म का आदि स्रोत *

'संसार के मुख्य मुख्य मतों पर तुलनात्मक विचार
और उनके वेद-मूलक होने का प्रतिपादन'

श्री पं० गंगाप्रसाद जी, M. A.,
चीफ़ जज, टिहरी गढ़वाल राज्य तथा डिप्टी कलक्टर
युक्त प्रान्त, भूतपूर्व प्रोफेसर मेरठ कालेज

रचित

The Fountain Head of Religion

का

हिन्दी अनुवाद

अनुवादक :

पं० हरिशंकर शर्मा, सम्पादक, आर्यमित्र, आगरा

•

सम्पादक :

प्रो० उमाकान्त उपाध्याय, एम० ए०

•

प्रकाशक :

आर्यसमाज कलकत्ता
१९, विधान सरणी
कलकत्ता-६
दूरभाष : ३१-३४३९

आर्य समाज कलकत्ता

के

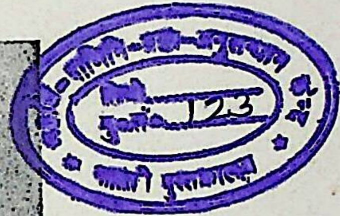
वर्तमान पदाधिकारी एवं अन्तरंग सदस्य



१. श्री हलियाराम गुप्त	प्रधान
२. श्री सुखदेव शर्मा	उप-प्रधान
३. श्री छबीलदास सैनी	उपप्रधान
४. श्री लक्ष्मण सिंह	उपप्रधान
५. श्री राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल	मन्त्री
६. श्री मनीराम आर्य	उपमन्त्रो
७. श्री अशोक कुमार सिंह	,,
८. श्री मंशाराम वर्मा	उपमन्त्री
९. श्री विन्देश्वरो प्रसाद जायसवाल	कोषाध्यक्ष
१०. श्री कुलभूषण आर्य	हिसाब परीक्षक
११. श्री घनश्याम मौर्य	पुस्तकाध्यक्ष
१२. श्री सुरेशकुमार अग्रवाल	उप-पुस्तकाध्यक्ष
१३. श्री लक्ष्मीकान्त जायसवाल	उप-पुस्तकाध्यक्ष
१४. श्री विजय प्रकाश आर्य	अधिष्ठता आर्य युवाजन
१५. श्री कृष्णलाल खट्टर	अन्तरंग सदस्य
१६. श्री सीताराम आर्य	अन्तरंग सदस्य
१७. श्री श्रीनाथदास गुप्त	अन्तरंग सदस्य
१८. श्री रामधनी जायसवाल	अन्तरंग सदस्य

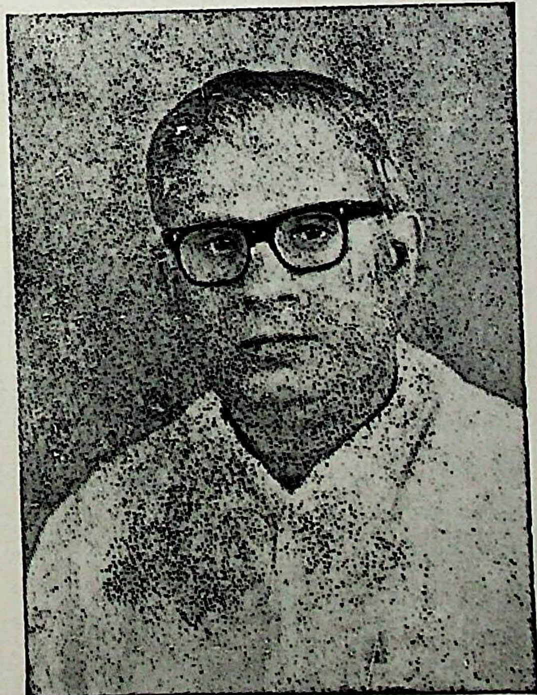
146

आर्यसमाज कलकत्ता के विद्वान् प्रचारक :

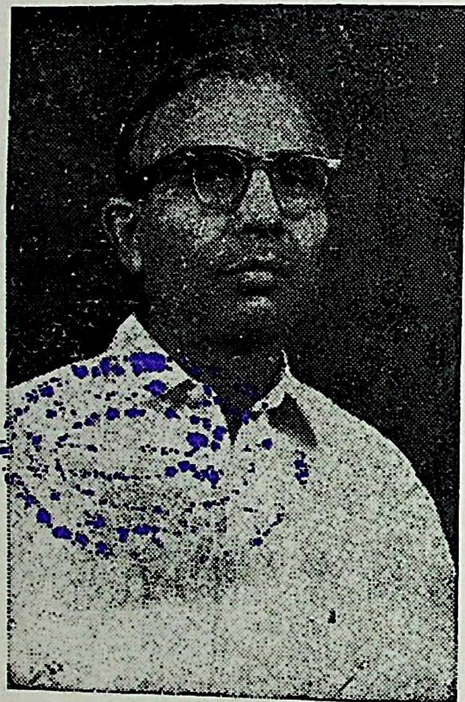




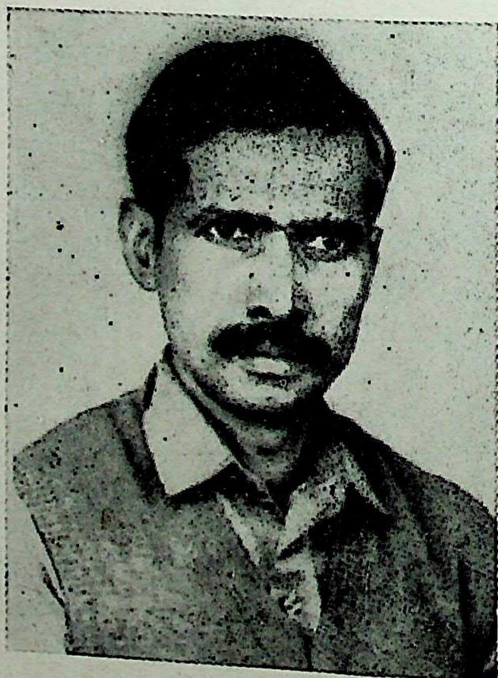
पं० श्री प्रियदर्शन सिद्धान्तभूषण



पं० श्री उमाकान्त उपाध्याय



श्री रुलियाराम गुप्त, प्रधान



श्री राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल, मन्त्री

१९. श्रीमतीसुनीति शर्मा	अन्तरंग सदस्य
२०. श्री यशपाल वेदालंकार	अन्तरंग सदस्य
२१. श्री श्रीराम आर्य	अन्तरंग सदस्य
२२. श्रीमती विद्यावती दत्ता	अन्तरंग सदस्य
२३. श्री अमर सिंह सैनी	अन्तरंग सदस्य



प्रतिष्ठित सदस्य

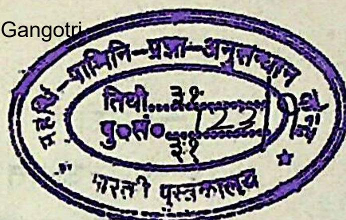
प्रो० उमाकान्त उपाध्याय
पं० प्रियदर्शन सिद्धान्तभूषण
श्रीमती सुमना आर्या
श्रीमती केकनवती वंसल
श्री देवव्रत आर्य
श्री राजाराम जायसवाल

पदेन

१. श्री रामलखन सिंह
२. श्रीमती सरोजनी शुक्ला

विषय-सूची

—:o:—



द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय

पंचम अध्याय

प्रकाशकीय

'आर्यसंसार' का वार्षिक विशेषांक किसी दुर्लभ साहित्य के पुनः प्रकाशन के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। यह क्रम १९६९ ई० से आरम्भ हुआ। इस वर्ष हम श्री पं० गंगाप्रसाद एम० ए०, चीफ जज कृत "धर्म का आदि स्रोत" नामक दुर्लभ ग्रन्थ प्रकाशित कर रहे हैं। आर्य-संसार के विशेषांक के रूप में यह २० वाँ ग्रन्थ है।

कोई ८० वर्ष पूर्व १९०९ ई० में पं० गंगाप्रसाद जी ने The Fountain Head of Religion नामक ग्रन्थ लिखकर यह प्रमाणित किया कि संसार के सभी मुख्य-मुख्य धर्मों का आदि मूल वेद है। उस समय सम-सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में एलाहाबाद और कलकत्ता से इस पुस्तक की आलोचना-प्रत्यालोचनायें प्रकाशित हुयीं। पुस्तक की जन-प्रियता बढ़ी और इसका हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हुआ। हिन्दी-अंग्रेजी के कई संस्करण प्रकाशित हुए। किन्तु इधर बहुत वर्षों से यह पुस्तक दुर्लभ हो गई थी। अतः हमने इसे प्रकाशित करने का निर्णय लिया।

आर्यसमाज कलकत्ता के पुस्तकालय में १९३३ ई० में आर्य पुस्तकालय व सरस्वती आश्रम, लाहौर से प्रकाशित वह पुस्तक उपलब्ध हो गई और उसे ही हम प्रकाशित कर रहे हैं।

पुस्तक को यथा समय प्रकाशित करने के लिए एसोशियेटेड आर्ट प्रिंटर्स और श्री राजकुमार मल्लिक का धन्यवाद है।

उमाकान्त उपाध्याय

सम्पादक,
आर्य-संसार

आर्यसमाज कलकत्ता

के

स्थायी पुरोगम एवं प्रचार कार्य

१—दैनिक—प्रातः सात बजे हवन एवं मन्त्र पाठ।

२—साप्ताहिक—प्रति रविवार प्रातः ८ बजे यज्ञ, ९ बजे से ११ बजे तक सत्यार्थप्रकाश की कथा, भजन और आचार्य उमाकान्त उपाध्याय तथा अन्य विद्वानों के प्रवचन।

३—प्रत्येक बुधवार को अपराह्न २॥ से ४॥ बजे तक आर्य स्त्री समाज का सत्संग होता है।

४—पुस्तकालय एवं वाचनालय की सुव्यवस्था है जिससे अधिकाधिक लोग लाभ उठाते हैं। यह निःशुल्क प्रातः ७ से ९ बजे तक एवं सायं ६ बजे से ८ बजे तक खुला रहता है।

५—दातव्य चिकित्सालय—प्रतिदिन प्रातः ७ से १० बजे तक सैकड़ों रोगी आकर निःशुल्क औषधि ग्रहण करते और रोग मुक्त होते हैं।

६—आर्यसमाज मन्दिर के प्रवेश द्वार पर प्याऊ का समुचित प्रबन्ध है। यहाँ तृषित आकर प्यास बुझाते हैं।

७—प्रत्येक रविवार को बाल सत्संग पं० प्रियदर्शन सिद्धान्तभूषण के निरीक्षण में प्रातः ९ से १० बजे तक बच्चों को धर्मनिष्ठ नागरिक बनाने हेतु होता है।

८—वैदिक एवं धार्मिक पुस्तकें तथा शुद्ध हवन सामग्री यहाँ उपलब्ध होती है।

९—प्रत्येक सोमवार प्रातः ८ से ९ और बुधवार १२ से १ बजे तक नेत्र आरोग्यशाला खुलती है।

रलियाराम गुप्त
प्रधान

राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल
मन्त्री

* ओ३म् *

प्रथम संस्करण की भूमिका

—०—

दस वर्ष से अधिक समय हुआ जब इस पुस्तक के लिये सामग्री एकत्रित की गई थी* और उसी समय इसके प्रथम चार अध्याय भी लिखे गये थे। परन्तु विशेषतः अवकाशाभाव से पुस्तक अपूर्ण पड़ी रही। कोई तीन वर्ष हुए जब कतिपय मित्रों के अनुरोध से मैंने उसको समाप्त किया, और तब वह गुरुकुल कांगड़ी के 'वैदिक मैगज़ीन' में क्रमशः छपी। अब वह वर्त्तमान आकार में प्रकाशित की जाती है। मेरी अभिलाषा थी कि मैं पहले चार अध्यायों को नये सिरे से लिखता परन्तु समय न मिलने के कारण यह सम्भव न हो सका और न उन पर कुछ अधिक पुनर्विचार कर सका।

यह पुस्तक मौलिक होने की प्रतिज्ञा नहीं करती। इसमें कोई ही बात होगी जिसे मैं अपनी कह सकूं। यह पुस्तक ज़िन्दावस्ता, बाइबिल, कुरान तथा अन्य विविध मत सम्बन्धी अनेक पुस्तकों के उद्धरणों से भरी हुई है। प्रतिपाद्य विषय और अन्वेषणशैली के विचार से अवतरणों का उद्धृत करना अनिवार्य था। दो मतों के बीच विचार-साम्य दिखा कर उनके मध्य सम्बन्ध स्थापित करने को समानता के जितने उदाहरण उपलब्ध हो सके उतनों का देना आवश्यक है। वास्तव में समानताओं की संख्या जितनी अधिक होगी तर्क उतना ही दृढ़ और विश्वास-प्रद होगा। इस पुस्तक में अन्य ग्रन्थकारों के ग्रन्थों से भी अनेक उद्धरण

* यह १९०९ ई० में लिखा गया था।

दिये गये हैं। इसका कारण यही है कि कुछ विषयों पर मेरी निज की सम्मति अप्रामाणिक प्रत्युत प्रगल्भता युक्त प्रतीत होती। यह कारण न होता तो मैं पाठकों पर इतने अधिक अवतरण और उद्धरणों का भार कदापि न डालता। संसार के विभिन्न मतों की परस्पर तुलना करने में मैं ने स्वतन्त्रता पूर्वक उन पुस्तकों से लाभ उठाया है जिनका मुझे ज्ञान था। मुसलमानी मत का यहूदी मत से मिलान करने में मैंने अधिकांश में डाक्टर सेल का अनुगमन किया है, और प्रथम अध्याय के प्रायः प्रत्येक पृष्ठ के लिये मैं उनका अभारी हूँ। बौद्ध मत का ईसाई मत पर प्रभाव दिखाने में श्रीयुत् रमेशचन्द्र दत्त के 'प्राचीन भारतीय सभ्यता' (Civilization in ancient Indin) नामक ग्रन्थ से अधिक सहायता ली है। परन्तु यहूदी मत का ज़रदुस्ती मत से और उसका वैदिक-धर्म से मिलान करने में मैं किसी पुस्तक विशेष पर अबलम्बित नहीं रहा हूँ।

अन्तिम अध्याय में ज़रदुस्ती मत और वैदिक धर्म की तुलना करते हुये अनेक विषयों पर जिनकी ओर मेरा ध्यान आकर्षित हुआ, वैदिक शिक्षा का कुछ विस्तार पूर्वक वर्णन करने का अवसर प्राप्त किया है, जिसके कारण वह अध्याय औरों की अपेक्षा कुछ बढ़ गया है।

जैसा कि पाठकों को ज्ञात हो जायगा, इस ग्रन्थ का उद्देश्य किसी विशेष मत या मतों पर तीव्र आलोचना अथवा कटाक्ष करना नहीं है किन्तु सब मतों का मूल वेदों को सिद्ध करके उनके परस्पर सम्बन्ध को प्रकट करना है।

अन्त में प्रार्थना है कि यदि पुस्तक में कोई अशुद्धि या त्रुटि रह गई हो तो उसके लिये पाठकगण कृपया क्षमा करेंगे।

गंगाप्रसाद

दूसरे संस्करण की भूमिका

सर्व साधारण ने इस पुस्तक का जो स्वागत सन्मान किया है उसके लिये मैं उनका कृतज्ञ हूँ। पुस्तक प्रकाशित होने के एक वर्ष के भीतर ही प्रायः समस्त प्रतियाँ बिक गईं। द्वितीय संस्करण के प्रकाशित होने में कुछ विलम्ब हुआ। मैंने उसमें थोड़े ही परिवर्तन और परिवर्द्धन किये हैं। अब की बार पुस्तक के आरम्भ में सविस्तार विषय सूची देने के अतिरिक्त अकारादि क्रम युक्त एक विस्तृत विषयानुक्रमणिका भी बढ़ाई गई है। आशा है कि वह उपयोगी सिद्ध होगी।

धर्म सम्बन्धी तथा अन्य कितने ही पत्रों ने पुस्तक की आलोचना की है, जिनमें से कुछेक का सारांश इसके अन्त में दिया जाता है। जैसी कि आशा की जा सकती थी कि पुस्तक पर कई पत्रों ने निर्देश भी दिये हैं। मेरे एक मित्र ने 'सत्य-प्रेमी' के कल्पित नाम से प्रयागीय "मुसलिम रिव्यू" (Muslim review) में "धर्म के आदि स्रोत पर विचार" (Thoughts on the Fountain head of religion) शीर्षक एक लेख मालिका निकाली है जो सात लेख प्रकाशित हो चुकने पर भी अभी समाप्त नहीं हुई। इसके अतिरिक्त भूमिका में इतना स्थान ही कहाँ है जो इन सब लेखों का उत्तर दिया जा सकता। इन लेखों में से दो का उत्तर मैंने "वैदिक मेगज़ीन" द्वारा दिया है, जिनमें से एक का शीर्षक "क्या सृष्टि अभाव से नहीं हुई," और दूसरे का "सृष्टि उत्पत्तिवाद" है। ये दोनों लेख क्रम से दिसम्बर १९१० और अप्रेल १९११ "मुसलिम रिव्यू" में प्रकाशित हुए हैं। मेरे मित्र बा० घासीराम एम० ए०, एल-एल० बी० मेरठ निवासी ने "वेदों की व्याख्या" नामक लेख का उत्तर (जो जनवरी १९११ के "मुसलिम रिव्यू" में मुद्रित हुआ

था) आषाढ़ १९६८ के "वैदिक मेगज़ीन" द्वारा दिया है। इस लेख का सम्बन्ध इस पुस्तक के विषय से बहुत ही कम अथवा बिलकुल नहीं है, किन्तु उसमें स्वामी दयानन्द कृत वेदभाष्य सम्बन्धी आर्यसमाज के मन्तव्य पर सामान्य आक्रमण किया गया है। तीन लेखों में 'सत्य प्रेमी जी' ने बौद्ध मत को हिन्दू मत से भिन्न सिद्ध करने का श्रम किया है। यदि ऐसा न होता तो वह एक पृथक धर्म क्यों कहलाता जैसा कि वह अब है। परन्तु इसका यह अर्थ लगाना कोई आवश्यकीय बात नहीं है कि उसके मुख्य सिद्धान्त वेदों से नहीं लिये गये। लेखक ने पुस्तक के प्रथम और चतुर्थ अध्यायों पर कुछ नहीं लिखा, जिनमें मुसलमानी मत की उत्पत्ति यहूदी मत से, और उसकी उत्पत्ति ज़रदुस्ती मत से सिद्ध की गई है। आशा थी कि लेखक महाशय मुसलमान होने के कारण ग्रन्थ के उक्त अध्यायों पर ही सब से पूर्व अपनी लेखनी चलावेंगे।

कलकत्ते से प्रकाशित होने वाले ईसाइयों के सुप्रसिद्ध पत्र 'एपिफेनी (Epiphany) के २ एप्रिल १९१० के अंक में इस पुस्तक पर एक गम्भीर समालोचना छपी है। समालोचक महाशय ने कृपा कर जो दो एक छोटी अशुद्धियां बताई हैं तदर्थ मैं उनका कृतज्ञ हूँ। मैंने प्रथम संस्करण के ४० वें पृष्ठ पर लिखा था कि अब्राहम का जन्म स्थान "हैरन" था परन्तु लेखक महाशय ने बतलाया है 'अब्राहम' 'उर' के रहने वाले थे, केवल थोड़े समय के लिये हैरन में आ बसे थे। तदनुसार मैंने इस अशुद्धि का संशोधन कर दिया है। परन्तु इसका मेरी युक्ति पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता, चाहे उन्होंने उसे अपना कुछ समय के लिये निवास स्थान बनाया है परन्तु हैरन और ऐरन ज़रदुश्त का जन्म स्थान) एक ही होने की दशा में स्पष्ट है कि उन्होंने ज़रदुश्त के साथ विचार-परिवर्त्तन करने का अवसर प्राप्त किया।

आलोचना का सारांश निम्नलिखित पंक्तियों में आ गया है:—

'सेमाइट—मतों में ईसाई और मुसलमानो दोनों मतों का सम्बन्ध यहूदी मत से स्पष्ट और सुप्रसिद्ध है। इसी प्रकार आर्यधर्मों में बौद्ध

मत और ज़रदुश्ती मत का वैदिक-धर्म से सम्बन्ध है। परन्तु ईसाई मत और बौद्ध धर्म, यहूदीमत व ज़रदुश्ती मत के मध्य किसी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित करना बहुत कठिन कार्य है" इस सम्मति के बल को मैं स्वीकार करता हूँ। जैसा कि मैंने सिद्ध करने का यत्न किया है ईसाई मत अधिकांश में यहूदी मत और किसी अंश में बौद्ध मत, के आधार पर स्थित हैं। उसके समस्त मन्तव्य वा सिद्धान्त यहूदीमत से लिये गये हैं और केवल आचार सम्बन्धी उपदेशों के लिये वह बौद्ध धर्म का ऋणी है। मैं स्वीकार करता हूँ कि ज़रदुश्ती मत और यहूदी मत का सम्बन्ध मेरे तर्क का सबसे आवश्यक अवयव है और उसका सिद्ध करना भी बड़ा कठिन कार्य है। मैंने उसको सिद्ध करने में सफलता प्राप्त की है कि नहीं, इसका निर्णय पाठकों पर छोड़ता हूँ। "एपिफेनी" के लेखक महाशय कदाचित् यह समझते हैं कि मैंने अपनी प्रतिज्ञाओं को छोटी-छोटी समानताओं तथा बहुधा ऐसी बातों से सिद्ध किया है जिन्हें वे अप्रामाणिक या पीछे की मिली हुई कहना पसन्द करते हैं। यह बात सत्य है कि मैंने छोटी-छोटी बातों का भी उल्लेख किया है। परन्तु मैंने यह भी दिखलाया है कि "यहूदियों का ईश्वर के विषय में मत, ईश्वर के कतिपय मुख्य दो नाम, दो परस्पर विरोधिनी शक्तियां अर्थात् ईश्वर और शैतान, फरिश्ते और उनके नाम और अधिकार, यहूदियों के सृष्टि-उत्पत्ति सम्बन्धी विचार, मृतोत्थानवाद, भविष्य-जीवन, स्वर्ग और नरक सम्बन्धी समस्त बातों का पता ज़रदुश्ती मत से लग जाता है। यदि इन सब बातों की उत्पत्ति ज़रदुश्ती मत से सिद्ध हो सकती है तो फिर यहूदी मत में शेष रह ही क्या जाता है जिसके लिये यह मूल मत होने का अभिमान कर सके। एपिफेनी के लेखक को सरगन और मूसा विषयक मेरी युक्तियां समझने में भ्रम हुआ है। (देखो पृष्ठ ७०-७१ अथवा प्रथम संस्करण के पृष्ठ ५१-५२) यहां इस बात पर विचार नहीं करना कि सेमियों ने इस गाथा को ज़रदुश्तियों से लिया अथवा ज़रदुश्तियों ने सेमियो से। वास्तव में यह

कथा ज़रदुश्तियों की पुस्तकों में नहीं है। मैंने जिस बात को सिद्ध करने का प्रयत्न किया है वह यह है कि सम्भवतः मूसा कोई हुआ ही नहीं और उसका वृतान्त राजा सरगन की कथा से लिया गया प्रतीत होता है। इस विचार के अनुसार पंजनामा मूसा का लिखा नहीं हो सकता। उसका लेखक एजरा नामक व्यक्ति था। जिसने उसे सन् ईसवी से ४५० वर्ष पूर्व लिखा अर्थात् उस समय जब फारिस के सम्राट खुसरो ने यहूदियों को बन्धन से मुक्ति प्रदान की थी और इस प्रकार यहूदियों को धार्मिक विषयों में ज़रदुश्तियों द्वारा प्रभावान्वित होने का पर्य्याप्त अवसर मिल चुका था इसलिये यह प्रश्न निरर्थक है कि सरगन और अक्कद लोग आर्य थे अथवा सेमी।

"ऐपीफेनी" के लेखक महाशय ने अपने लेख के अन्त में एक प्रकार से स्वीकार कर लिया है कि वेदों में सम्भवतः कुछ भाग "ईश्वरीय ज्ञान" का है। वे लिखते हैं :—"मानव जाति की उत्पत्ति समय से ही ईश्वर अपने आपको प्रकृति, अन्तःकरण और दैवी ज्ञान द्वारा मनुष्यों पर प्रकट करने की चेष्टा करता रहा। क्या आश्चर्य है कि अनेक जातियों में ऐसे मनुष्य पाये गये हों जो आंशिक रूप से ईश्वरीय ज्ञान को प्राप्त करके उसे दूसरों को दे गये हों। ईश्वरीय ज्ञान अनादि है और उसमें परिवर्त्तन नहीं हो सकता। अतएव आवश्यक है कि ईश्वरीय-ज्ञान जहाँ भी शुद्ध रूप से प्राप्त और प्रकाशित हुआ हो वह सर्वत्र एक ही समान होना चाहिये।............ ....
.... हम इस बात को अच्छी तरह मान सकते हैं कि ईश्वर ने आध्यात्मिक ज्ञान के बीजवपन कर भारतवर्ष मे भी किसी जाति विशेष को उन्नत बनाने का विचार किया हो। परन्तु उसे पवित्र-तर आत्मिक अन्तर्ज्ञान अथवा उस ज्ञान को सत्यता पूर्वक प्रतिपादन करने की शक्ति इबरानी (यहूदी) लोगों में मिली और इस कारण उनकी सन्तान भी उस शक्ति से सम्पन्न रही।"

पारसी पत्रों में से बम्बई के जामेजमशेद' और 'सांझ वर्त्तमान' नामक दैनिक पत्रों ने अपने १ सितम्बर १९१० के अङ्क में पुस्तक की आलोचना की थी। 'सांझ वर्त्तमान' लिखता है :—'हमें.......... आश्चर्य है कि म० गंगा प्रसाद ने इस वाद को संक्षेप से ही क्यों टाल दिया है कि वेदों की भाषा और धर्म सत ज़रदुश्त से निकले हैं।"

मैं समझता हूँ कि मैंने इस बात को सिद्ध करने के लिये बहुत उदाहरण दिये हैं कि वेद जिन्दावस्ता की अपेक्षा बहुत प्राचीन हैं और ऊपर लिखा हुआ वाद सर्वथा अप्रतिपाद्य है और वस्तुतः कभी किसी विद्वान् द्वारा प्रस्तुत भी नहीं हुआ। मैंने उक्त वाद को केवल विचार के लिये सम्भव मानकर उसका उल्लेख किया है। स्वयं जिन्दावस्ता के आन्तरिक प्रमाण ही उसके प्रतिकूल हैं।

गंगाप्रसाद



अनुवाद की भूमिका

यह पुस्तक प्रथम अंग्रेजी भाषा में सन् १९०९ में छपा था। सन् १९११ में दूसरा और सन् १९१६ में तीसरा संस्करण छापा गया। पुस्तक का सर्वसाधारण ने जैसा मान किया उससे मैं कृतकृत्य हूँ। भारत वर्ष के अतिरिक्त योरुप, अमरीका और अफ्रीका में भी पुस्तकें गईं। कतिपय प्रसिद्ध विद्वानों के प्रशंसा पत्र तथा समाचार पत्रों की समालोचनाएँ पुस्तक के अन्त में दी गई हैं।

मेरे एक मित्र मौलवी अबूअबदुल्ला मुहम्मद जकाउल्ला खां एम० ए० ने पुस्तक के कुछ भागों की आलोचना करते हुए मुसलिम रिव्यू नामक पत्र में कतिपय लेख छपवाये थे, जिनका उत्तर मैंने वेदिक मैगजीन में दिया था। अंग्रेजी के तीसरे संस्करण में ये सब उत्तर भी पुस्तक के अन्त में छाप दिये गये हैं और "इन्डियन विटनस" नामक एक ईसाई पत्र की आलोचना के भी उत्तर दिये गये हैं। इन सब को इस अनुवाद के के साथ छपवाना उचित नहीं समझा गया क्योंकि मूल लेख भी जिनके वे उत्तर हैं केवल अंग्रेजी में ही छपे हैं, और उनका अनुवाद छापने से पुस्तक बहुत बढ़ जाता।

मेरे परम मित्र बाबू घासीराम जो एम० ए०, एल-एल० बी० ने मूल पुस्तक का उर्दू में अनुवाद किया जो श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से छप चुकी है। आर्य भाषा (हिन्दी) में अनुवाद करने के लिये आरम्भ से ही कई विद्वानों ने इच्छा प्रकट की थी किन्तु मेरे एक योग्य मित्र का विचार स्वयम् हिन्दी अनुवाद करने का था, उनके अनुरोध से किसी को आज्ञा नहीं दी गई। परन्तु कुछ कारणों से उक्त मित्र अपना विचार पूर्ण न कर सके। अब श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा ने आर्य-

मित्र आगरा के योग्य सम्पादक पं० हरिशंकर शर्मा से पुस्तक का अनुवाद कराया है जो पाठकों की भेट होता है। मैंने इसको आदि से अन्त तक देख कर मूल के अनुकूल शुद्ध कर दिया है तथापि जो भूल वा त्रुटि रह गई हों, आशा है कि पाठकगण उनके लिये क्षमा प्रदान करेंगे।

आगरा
१७।११।१७

गंगाप्रसाद





ओ३म्

धर्म का आदि स्रोत

उपोद्घात

—:०:—

धर्म का मूल ईश्वर है

धर्म का उत्पत्ति स्थान क्या है? किसी मत विशेष का नहीं प्रत्युत उस धर्म का मूल क्या है जिसके अवान्तर रूप से विविध प्रकार के मत विद्यमान हैं। साधारणतया इस प्रश्न के दो उत्तर हैं :— (१) यह कि धर्म का मूल ईश्वर है और (२) यह कि उसकी उत्पत्ति मनुष्य से है। प्रथम विचार इस बात की उपेक्षा नहीं करता कि वर्त्तमान धर्मों के विकास और वृद्धि पर मनुष्यों का उनके जातीय इतिहास और देश की भौगोलिक अवस्था तक का बड़ा प्रभाव पड़ा है। केवल इस बात पर बल दिया जाता है कि धर्म का आदि मूल कारण ईश्वर है।

यह पुस्तक इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर पूर्ण रूपेण मीमांसा करने की प्रतिज्ञा नहीं करती। इसका उद्देश्य संसार के मुख्य २ बातों के मिलान और अनुशीलन से केवल यह सिद्ध करना हैं कि नवीन मतों का पता पुराने मतों से और इन पुराने मतों का पता और अधिक प्राचीन मतों से चल सकताहै। इस प्रकार उत्तरोत्तर पता लगाते हुए हम मनुष्य जाति के प्राचीनतम पवित्र धर्म तक पहुँच जाते हैं। मतों के परस्पर मिलान पूर्वक अनुशीलन से यह सिद्ध हो जायगा कि वास्तव में धर्म की सीमा के अन्तर्गत किसी प्रकार का नया आविष्कार कभी नहीं हुआ। धर्म के मुख्य सिद्धान्त जिन्हें उसका सार कहना चाहिए उतने ही पुराने हैं

जितनी मानव जाति। इससे सिद्ध होता है कि सृष्टि के आरम्भकाल में परमेश्वर ने धार्मिक ज्ञान का बीज मनुष्य के लिये दिया था। और यही धर्म ज्ञान का बीज मानव जाति के ग्रन्थ भण्डार की सर्वसम्मत प्राचीनतम पुस्तक वेद में पाया जाता है।

कोई आस्तिक इस बात को स्वीकार करने में संकोच न करेगा कि एक अर्थ में ईश्वर सम्पूर्णज्ञान का मूल कारण है। परन्तु धार्मिकज्ञान के सम्बन्ध में यह बात विशेष रूप से सत्य है। पश्चिमीय तत्वज्ञान के प्रथम आचार्य देकार्त्त (Descartes) साहब ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान के विषय में लिखते हैं कि जितना ही अधिक मैं सोचता हूँ उतना ही मेरा यह विश्वास है कि यह विचार मेरे मनसे उत्पन्न नहीं हुआ अधिकतर गम्भीर हो जाता है। परमेश्वर अनन्त है और मेरा आत्मा सान्त है। परमेश्वर स्वतन्त्र है और मेरी आत्मा परतन्त्र है, इत्यादि। अतएव यह स्पष्ट है कि मैं इस ज्ञान का उत्पादक नहीं हो सकता। इसमें सन्देह नहीं कि इस ज्ञान की छाप स्वयं परमेश्वर ने मनुष्य के आत्मा पर लगाई है। इन विचारों में बहुत कुछ सत्य हैं जो इस बात से प्रकट है कि हमारा ईश्वर तथा उसके स्वभाव और गुण विषयक ज्ञान अन्य प्रकार के ज्ञानों के सदृश नहीं हैं। उसमें और ज्ञानों के समान परिवर्त्तन वा उन्नति नहीं हो सकती। हमें इस बात का ज्ञान है कि ईश्वर न्यायकारी, श्रेष्ठ, दयालु, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, अनन्त और सर्वव्यापक हैं, इत्यादि। परन्तु ऐसा कोई समय न था जब इन गुणों में से किसी एक का भी ज्ञान मनुष्य को न रहा हो। प्राचीन ऋषिगण ईश्वर की उपासना उसे इन गुणों से युक्त जानकर करते थे। अर्वाचीन विज्ञान वेत्ता या धर्मोपदेष्टा इससे अधिक और किन गुणों के ज्ञान का अभिमान कर सकते हैं? अन्य विषयों में हमारा ज्ञान उत्तरोत्तर वृद्धि करता चला जाता है परन्तु ईश्वर विषयक हमारी अभिज्ञता एक ही स्थान पर स्थित है। अतएव यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि कालचक्र कितना ही क्यों न चले पदार्थ विज्ञान अब से भी अधिक शीघ्रता के साथ उन्नति पथ पर चाहे

जितनी चौकड़ी भरे—भौतिक पदार्थों के विषय में हम कितने ही आश्चर्यपूर्ण नूतन आविष्कार कर लें परन्तु वह समय आना सम्भव नहीं जब मनुष्य ईश्वर के सम्बन्ध में कोई नवीन बात जानने योग्य होगा। यह सम्भव है कि हम लोग ईश्वरीय गुणों के सम्बन्ध में अब से अधिक उत्तम ज्ञान प्राप्त करलें अथवा उसको पूर्णतया अनुभव करने में समर्थ हों परन्तु परमेश्वर का कोई नवीन गुण खोजने वा जानने के योग्य हम कदापि नहीं हो सकते। कारण यह है कि ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान मनुष्यों के मस्तिष्क से उत्पन्न नहीं हुआ।

जैसा ईश्वर के ज्ञान विषयक यहाँ लिखा गया है वैसा ही समस्त धर्म ज्ञान के विषय में समझना चाहिए। धर्म ज्ञान की सीमा में न तो कभी कोई वास्तविक नवीन अन्वेषणा की गई और न की जा सकेगी। मैडम एच० पी० ब्लैवस्टकी का यह विचार यथार्थ है—

"अनेक बड़े विद्वानों का कथन हैं कि आर्य, सामी, या तूरानियों में ऐसे किसी धर्म-संस्थापक का प्रादुर्भाव नहीं हुआ जिसने किसी नवीन धर्म तत्त्व को निकाला हो अथवा कोई नूतन ज्ञान प्रकाशित किया हो। इन समस्त आचार्यों ने धर्म ज्ञान को पाकर केवल उसका प्रचार किया हैं वे कोई आदि गुरु नहीं थे। इसीलिये डाक्टर लैंग* कन फूश्यस को 'धर्म निर्माता' न कहकर धर्म प्रचारक बताते हुए उसके वचन लिखते हैं कि "मैं केवल प्रचार करता हूँ कोई नवीन बात उत्पन्न नहीं कर सकता, प्राचीन पुरुषाओं पर मेरा विश्वास है अतएब मैं उनसे प्रेम करता हूँ।" (प्रो० मोक्षमूलर के साइन्स आफ रिलीजन' से उद्धृत)**

---

* चीन देश का सबसे प्रसिद्ध और प्राचीन धर्म शिक्षक 'कनफूश्यस (Confucious) था।

** देखो Secret doctrine Vol, I, pp. XXXVI-VII.

प्रोफेसर मोक्षमूलर का कथन है कि "सृष्टि-उत्पत्ति के आरम्भ काल से कोई भी ऐसा धर्म नहीं हुआ जो सर्वथा नूतन हो"। *

इन विचारों से हम यही स्थिर करते हैं कि इस संसार में धार्मिक ज्ञान के उत्पत्ति-स्थान का पता लगाने के लिये हमको ईश्वर की ओर जाना पड़ता है अथवा दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि अन्ततोगत्वा धर्म की उत्पत्ति ईश्वर से है।

यहां यह प्रश्न किया जा सकता है कि क्या धर्मों के समस्त भेद समान रूप से ईश्वरीय हैं ? क्या संसार भर के परस्पर विरोधी समस्त मत समान रूप से सत्य हैं ? इसके उत्तर में हम 'हां' और 'ना' दोनों का उपयोग करते हैं। वर्त्तमान समय में जितने मत मतान्तर हैं उनमें ईश्वरीय ज्ञान और मानवी भूल दोनों का मेल पाया जाता है। किन्तु विचार पूर्वक तुलना करने से प्रकट हो जायगा कि उनमें जो सार है उसका मूल वेद हैं। उनमें बहुत ** सो बातों में भेद है तोभी ऐसे सिद्धान्त और सत्य हैं जो उन सब में अथवा बहुतों में समान हैं। ये समान सत्य बातें और सिद्धान्त वेदों से निकले हैं और बहुधा वे बातें भी जिन पर इन मतो में इतना अधिक भेद प्रतीत होता है, वास्तव में एक ही प्रकार की पाई जावेंगी। जो वाह्य भेद दिखाई देता है उसका कारण यह है कि जिस वैदिक उपदेश के ऊपर उनकी नींव है उसके समझने में भ्रम वा भूल हुई है।

अब हम यह सिद्ध करने के लिये आगे बढ़ते हैं कि वेद ही समस्त धर्मों का मूल कारण है। यही वह स्रोत है जिससे धार्मिक ज्ञान की

---

* देखो Chips from a German workshops Vol I, Preface. p. X.

** इसी प्रकार स्वामी दयानन्द सरस्वती सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ ३८२ पर लिखते हैं :—

"जिस बात में यह सहस्र एक मत हैं वह वेद मत ग्राह्य है और जिसमें परस्पर विरोध हो वह कल्पित, झूठा, अधर्म अग्राह्य है।"

धारा जरदुश्ती, यहूदी, बौद्ध, ईसाई और मुसलमानी मतों की नदियों में होकर बही है। हम उपर्युक्त पाँच प्रधान धर्मों पर विचार कर सकते हैं। संसार के अन्य मत साधारणतः उन्हीं में से किसी एक या दो पर अवलम्बित हैं। जैनमत *** बौद्ध धर्म का रूपान्तर मात्र है। कबीर नानक और दादूपन्थ अधिकांश में हिन्दू-धर्म और किसी अंश में मुसलमानी मत पर स्थित हैं। ब्राह्म-धर्म की उत्पत्ति हिन्दू धर्म और ईसाई-मत से है। इसी प्रकार अन्य छोटे छोटे मतों के सम्बन्ध में समझना चाहिए।

इन विविध मतों की उत्पत्ति कैसे हुई ? धर्मों के मिलान और अनुशीलन से ज्ञात होता है कि जब कभी पुरोहितों के स्वार्थ अथवा सर्वसाधारण के अज्ञान वश धर्म के किसी महत्व पूर्ण अंग का ह्रास और लोप हो जाता है तब कोई महान् आत्मा प्रकट होकर उसका बल पूर्वक प्रचार करता है, जिसके कारण धर्म का मैल दूर होकर वह अपनी पूर्व दीप्ति के साथ चमकता है।

इस प्रकार प्रत्येक नवीन धर्म प्रारम्भ में किसी प्राचनीतर धर्म की तत्कालीन दशा का संशोधन करने को और उसके अनुचित उपयोगों का विरोध करने को उत्पन्न हुआ। इस प्रकार हम दिखलावेंगे कि जब

*** जैनमत व बौद्ध धर्म में बहुत थोड़ा भेद है। दोनों धर्मों के मुख्य मुख्य सिद्धान्त एक ही हैं। परन्तु एक का दूसरे के साथ क्या सम्बन्ध है इस विषय में विद्वानों के मध्य बड़ा मत भेद है। कुछेक के कथनानुसार जैनमत बौद्ध धर्म की शाखा है। दूसरे लोग कहते हैं कि यह उसका समकालीन धर्म है और दोनों की उत्पत्ति एक प्रकार के कारणों से हुई जो उस ऐतिहासिक समय में विद्यमान थे। यदि हम पिछली बात को ही मानलें तोभी जैनधर्मों के सिद्धान्तोंका वेदों से उसी प्रकार पता लग सकता है जिस प्रकार बौद्धमत सम्बन्धी सिद्धान्तों का।

वदिक ईश्वर वाद में अनेक देवताओं की पूजा का प्रवेश हो रहा था, उस समय स्पितामा जरदुश्त का प्रदुर्भाव हुआ, जिन्होंने केवल एक ईश्वर की उपासना का उपदेश दिया, और अनेक देवताओं की पूजा का खण्डन किया। इसी प्रकार जब पीछे वैदिकधर्म की अवनति के कारणरूप ऐसे कर्म्म (यज्ञ के नाम से) किये जाने लगे जिनमें निरपराध पशुओं का अंधाधुन्ध संहार होता था,—जब मनुष्य मात्र की धार्मिक समानता के स्थान में अन्याययुक्त जातिभेद फैल गया था। उस समय गौतमबुद्ध का आविर्भाव हुआ जिन्होंने पवित्र जीवन का उपदेश किया तथा पददलित शूद्र और वाक्हीन पशुओं की ओर से हृदयग्राही अपील की। जिस प्रकार बुद्ध ने अपने समय के वैदिकधर्म का सुधार करने का उद्योग किया उसी प्रकार ईसामसीह, यहूदीमत का संस्कार करने को प्रयत्नवान् हुए। जब ईसाईमत पतित होकर मिथ्या विश्वास और मूर्ति पूजा के ढकोसलों में फँस गया उस समय मुहम्मद साहब अपने प्रबल एक ईश्वर वाद के प्रचारार्थ आये। यहीं बात अन्य धर्म प्रवर्त्तकों के सम्बन्ध में कही जा सकती है। उदाहरणार्थ हमारे देश में ही कबीर, नानक, दादू और चैतन्य संशोधक हुए, जिनका उद्देश्य अपने समय के अवनत हिन्दूधर्म को मिथ्या विश्वास, मूर्तिपूजा और अनेक ईश्वरवाद के दोषों से शुद्ध करना था। इस प्रकार ये समस्त धर्माचार्य (चाहे उन्हें पैगम्बर कहिये) वास्तव में संशोधक थे। इन सभी ने अपनी अपनी शैली से भलाई करने और उस समय के वर्त्तमान धर्मों को उन्नत बनाने का प्रयत्न किया। किन्तु उनमें से कोई भी सनातन वैदिकधर्म की श्रेष्ठतम पवित्रता की समानता नहीं कर सका।



छः मुख्य धर्मों का समय-निरूपण

मुसलमानी, ईसाई, बौद्ध, यहूदी, जरदुश्ती

और

वैदिक धर्म

—:०:—

पाठकों को यह बताने की आवश्यकता नहीं कि उपर्युक्त धर्म समय क्रम से लिखे गये हैं। उदाहरणार्थ बौद्धधर्म ईसाईमत से और ईसाईमत मुसलमानीमत से पुराना है, इसे सब कोई जानता है। इसी प्रकार यह भी निश्चित है कि वैदिकधर्म, ज़रदुश्तीमत से पुराना है और ज़रदुश्तीमत यहूदीमत से पूर्व का है। पर यह बात उतनी सुपरिचित नहीं है, अतएव यहां इन तीनों धर्मों की पारस्परिक काल-निरूपण मीमांसा में दो एक शब्द कहना अनुचित न होगा।

बाइबिल के अनुसार हजरत मूसा—जो पंजनामे * के रचयिता बताये जाते हैं, सन् ईसवी से १५७१ वर्ष पूर्व उत्पन्न हुये थे और ईसा से १४११ वर्ष पूर्व उन्हें ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त हुआ। इस प्रकार यहूदियों की प्राचीनतम पुस्तक सन् ईसवी से १४९१ वर्ष पूर्व से अधिक पुरानी होने का साहस नहीं कर सकती। और यदि हम पंजनामे का लेखक हजरत मूसा को न मानें तो हमें यह बात स्वीकार करनी पड़ेगी कि एजरा ने उसका संकलन सन् ईसवी से केवल ४५० वर्ष पूर्व किया (देखो अध्याय ४ अंश २)।

---

* बाइबिल के सबसे प्राचीन और प्रथम ५ अध्यायों का नाम पंजनामा है। यह यहूदी और ईसाई दोनों का धर्म पुस्तक है।

पंजनामे की अपेक्षा जन्दावस्ता * अधिक पुराना ग्रन्थ है। डा० स्पीगल के अनुसार जरदुश्त, अब्राहम के समकालीन थे, जो सन् ईसवी से १६०० वर्ष पूर्व हुए। इस प्रकार उनका काल मूसा से ४०० वर्ष पूर्व सिद्ध होता है। डा० हॉग (Dr. Haug) कहते हैं कि प्रथम शताब्दी का प्लिनी नामक सुप्रसिद्ध इतिहास-वेत्ता इससे बढ़कर जरदुश्त का समय मूसा से कई सहस्र वर्ष पूर्व बताता है। (देखो Historia Naturalis XXX, 2) आगे चलकर हॉग साहब कहते हैं कि वेबीलोन का प्रसिद्ध इतिहासज्ञ बीरोसस उसे बेबीलोन के लोगों का सम्राट और उनके परिवार का परिवर्त्तक ठहरता है, जिन्होंने कि सन् ईसवी से पूर्व २२०० और २००० वर्ष के मध्य राज्य किया। पारसियों के पवित्र ग्रन्थों का वर्णन करते हुए डा० हॉग एक स्थान पर लिखते हैं—"मूसा के समय (ईसा से १३०० वा १५६० वर्ष पूर्व) से लेकर तलमूदी साहित्य के अन्त (सन् ६६० ई०) तक यहूदियों के पवित्र ग्रन्थों की रचना में कोई २४०० वर्ष व्यतीत हुए। जरदुश्ती साहित्य के सम्बन्ध में भी यदि हम इसी प्रकार की गणना करें तो उसका आरम्भ काल ईसा से १८०० वर्ष पूर्व मानना पड़ेगा। और यह बात उन वचनों का किसी अंश में भी विरोध न करेगी जो यूनानियों ने पारसी धर्म के प्रवर्त्तक का समय वर्णन करने में लिखे हैं"। (देखो Haug's essays पृष्ठ १३६)।

प्राचीन यूनानी ग्रन्थकारों की सम्मति भी इस प्रकार की है। "अरस्तू और यूडोक्सस, जरदुश्त का समय प्लेटो (अफलातून) से ६००० वर्ष पूर्व मानते हैं। दूसरे लोग ट्रोजन युद्ध से ५००० वर्ष पूर्व बताते हैं।" (देखो प्लिनी साहब की Historia Naturalis XXX, 1-3.)

---

* पार्सियों की धर्म पुस्तक का नाम जन्दावस्ता है जिसका ज्ञान ईश्वर की ओर से जरदुश्त पर होना माना जाता है। इसको केवल अवस्ता नाम से भी पुकारते हैं।

पारसी लोग स्वयं अपने ग्रन्थों की बहुत बड़ी प्राचीनता मानते हैं और यह बात तो ईसाइयों को भी माननी पड़ेगी कि वे पंजनामे की अपेक्षा अधिक पुराने हैं।

कोई ही ऐसा होगा जो इस बात को न माने की वेद जिन्दावस्ता और संसार की अन्य समस्त पुस्तकों से अधिक पुराने हैं। हमारे ऋषियों का विश्वास है कि वेदों का प्रकाश सृष्टि के आदि में हुआ। इस सम्मति पर कुछ ही क्यों न कहा जाय परन्तु इतना सुनिश्चित है कि मानवजाति के पुस्तकालय में वेदों से प्राचीनतर कोई पुस्तक नहीं। प्रोफेसर मोक्षमूलर स्वीकार करते हैं कि "ऐसा कोई पुस्तक उपस्थित नहीं जो हमें मानवीय इतिहास में वेदों से प्राचीनतर समय की ओर पहुंचावे। * जिन्दावस्ता के विद्वान् अनुवादक पादरी एल० एच० मिल्स भी जिन्दावस्ता की अपेक्षा वेदों का काल पुराना निर्धारित करते हुये लिखते हैं—"मिथ्र और उसके उन सहयोगियों की अनुपस्थिति जिनका वर्णन पिछली 'अवस्ता' में है हमें इस बात को स्वीकार करने की आज्ञा देते हैं कि गाथाओं का काल (जो जिन्दावस्ता का प्राचीनतम भाग है) ऋचाओं से बहुत पीछे का है"। ** वे फिर कहते हैं "हमको इस परिवर्त्तन के लिये समय की आवश्तकता है और यह भी थोड़े समय की नहीं अतएव हम गाथाओं का समय प्राचीनतम ऋचाओं से बहुत पीछे का रख सकते हैं।"***

इस पुस्तक में हम यह दिखावेंगे कि मुसलमानी, ईसाई, बौद्ध, यहूदी और जरदुश्ती इन पांचों धर्मों की नींव वेदों पर है।

---

* Chips From a German Workshop Vol. I, p 4.

** 'जिन्दावस्ता का अंग्रेजी अनुवाद' भाग ३, भूमिका पृष्ठ ३६ (S. B. E. Series)

*** वही पुस्तक पृष्ठ ३७

धर्म का आदि स्रोत

—:०:—

प्रथम अध्याय

मुसलमानी मत का आधार विशेषतः यहूदी मत है

मुहम्मदीमत अधिकांश में यहूदीमत और कुछ अंश में जरदुश्तीमत के आधार पर है, जिस पर कि स्वयं यहूदीमत अवलम्बित है। पहली बात को तो मुसलमान भी स्वीकार नहीं करते हैं जिनका कथन ही यह है कि उनके धर्माचार्य ने कुछेक बातों में यहूदीमत का संशोधन किया है। इन दोनों मतों को विस्तार पूर्वक मिलाने से यह बात प्रकट होगी कि अवान्तर बातो में भी मुहम्मद साहब ने यहूदियों का किस घनिष्ठता के साथ अनुकरण किया है और यह भी सिद्ध हो जायगा कि मुसलमानी मत में ऐसी बहुत कम क्या कोई भी महत्वपूर्ण बात नहीं जिसके लिये मुहम्मद साहब नवीन अथवा ईश्वरीय ज्ञान होने की प्रतिज्ञा कर सकें।

अपनी अन्वेषणा के इस भाग में हम डाक्टर सेल का अनुगमन करेंगे। उनके सुप्रसिद्ध-कुरान के अनुवाद में जो भूमिका है उसमें इन विषय-सम्बन्धी बातों का भण्डार भरा हुआ है।

१—सृष्ट्युत्पत्ति

यह संसार पहिली ही बार रचा गया और प्रलय के पीछे फिर दोबारा नहीं रचा जायगा, यह केवल यहूदी विचार है और वह मूसाई तथा अन्य दो बड़े मत अर्थात् ईसाई व मुसलमानी मतों का—जिनकी

भित्ति उसके आधार पर है—विशेष उपलक्षण है। और यह विचार भी कि—यह सृष्टि सर्व-शक्तिमान् परमात्मा की आज्ञा से अभाव से उत्पन्न हुई—यहूदियों से लिया गया है। आदम और हव्वा की उत्पत्ति, उनका अदन के उस बाग में रक्खा जाना, जहाँ एक वृक्ष के फलों को छोड़ कर वे समस्त वस्तुओं का भोग कर सकते थे, सर्प के रूप में शैतान का आना और ठीक उसी फल को खाने का प्रलोभन देना, इस पर स्वर्ग से उनका निकाला जाना, यह कथा ज्यों-की-त्यों यहूदी ग्रन्थों से ली गई है।

यही बात मनुष्यों से ऊँचे उन प्राणियों के सम्बन्ध में कही जा सकती है कि जो फरिश्ते कहलाते हैं, जिनके शरीर पवित्र और सूक्ष्म, और अग्नि से बने हुए हैं। और जो न खाते न पीते और न सन्तानोत्पत्ति करते हैं। इन फरिश्तों के रूप और कार्य विविध प्रकार के हैं, उनमें सबसे बड़े दूत जबराईल, मैकाईल, इजराईल और असराफील हैं। डाक्टर सेल लिखते हैं—"फरिश्तों के सम्बन्ध की समस्त बातें मुहम्मद साहब ने यहूदियों से लीं। यहूदियों ने फरिश्तों के नाम और कार्य की शिक्षा पारसियों से ग्रहण की जैसा कि वे स्वयं स्वीकार करते हैं।" (Talmud Hieras and Rashbashan) *

कुरान में 'जिन' नामक नीच जाति के होने की शिक्षा भी दी गई है। ये भी अग्नि से बने हैं परन्तु फरिश्तों की अपेक्षा इनके शरीर स्थूल बनावट के हैं, क्योंकि ये खाते, पीते, सन्तानोत्पत्ति करते और मृत्यु के ग्रास बनते हैं। डाक्टर सेल का कथन है कि "ये विचार यहूदियों के उन विचारों से प्रायः सर्वथा मिलते हैं जो उन्होंने शेडिम नामक एक प्रकार की प्रेत जाति के सम्बन्ध में लिखे हैं।"

२—संसार का प्रलय और मृतोत्थान

मुसलमान लोग आत्मा को अमर मानते हैं। उनका विचार है कि एक ऐसा दिन आवेगा जब मृतक लोग अपने जीवन में किये हुए

---

* सेल साहब की अंग्रेजी कुरान की भूमिका, पृ० ५६, इस पुस्तक का अध्याय ४ अंश ५ भी देखो।

शुभाशुभ कर्मों के अनुसार फल वा दण्ड पाने के लिये उठेंगे। यह सब-की-सब शिक्षा यहूदियों से ली गई।

मृतोत्थान—कुछ लेखकों के मतानुसार मृतोत्थान केवल आत्मिक होगा। पर साधारणतः माना हुआ सिद्धान्त यह है कि शरीर और आत्मा दोनों उठाये जावेंगे *। यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि जो शरीर गल-सड़ गया वह कैसे उठेगा? परन्तु मुहम्मद साहब ने सावधानी पूर्वक शरीर के एक भाग को इसलिये सुरक्षित रक्खा है कि जिससे वह भावी शरीर-रचना के लिये आधार का काम दे सके, अथवा उस मवाद के लिये खमीर का काम दे सके जो इसमें मिलाया जायगा। क्योंकि उनका यह उपदेश है कि एक हड्डी को छोड़कर जिसे वे अल अजब और हम मेरुदण्ड (Coseygis) कहते हैं। मनुष्य का शेष सब शरीर पृथ्वी में मिल जायगा। मनुष्य के शरीर में सबसे पूर्व उसकी रचना होने के कारण अन्तिम दिवस तक भी वह बीज रूप होकर अक्षय रहेगी। जिसके द्वारा फिर नवीन रूप से सारा शरीर बनाया जायगा, और जैसा उनका कथन है यह कार्य ईश्वर की भेजी हुई ४० दिन की वर्षा से किया जायगा। यह वर्षा पृथ्वी को १२ हाथ ऊँचाई तक पानी से ढक देगी और शरीरों को पौधों के समान उगायेगी। यहाँ भी मुहम्मद साहब यहूदियों के कृतज्ञ हैं क्योंकि वह भी लूज नामक अस्थि के सम्बन्ध में यही बात कहते हैं। भेद केवल इतना ही है कि मुसलमान लोग जिस कार्य का बड़ी वर्षा-द्वारा होना मानते हैं, यहूदी लोग उसको एक ओस-द्वारा मानते हैं कि जो पृथ्वी की मिट्टी को उपजाऊ बना देगी।**

मृतोत्थान के चिह्न—मृतोत्थान दिवस की समीपता कुछ लक्षणों से जानी जायगी जो उससे पूर्व दिखाई देंगे।

---

* सेल साहब का कुरान, भूमिका, पृ० ६१।

** सेल का कुरान, भूमिका, पृ० ६८।

(अ) सूर्य का पश्चिम में उदय होना

(ब) दज्जाल नामक पशु का प्रकट होना। इसकी अत्यन्त अद्भुत आकृति होगी और वह इसलाम की सच्चाई का अरबी भाषा-द्वारा उपदेश करेगा। डाक्टर सेल की सम्मति में यह विचार उस पशु से लिया जाना प्रतीत होता है जिसका उल्लेख बाइबिल में किया गया है। (देखो लूक, अ० २३।८)

(स) महदी का आगमन।

(द) सूर नामक नरसिंहा का तीन बार फूंका जाना।

ये सब विचार न्यूनाधिक यहूदियों से लिये गये हैं। ऐसा ही यह सिद्धान्त भी है कि मृतोत्थान के पश्चात् किन्तु न्यायव्यवस्था से पूर्व पुनर्जीवित आत्माओं को चिरकाल तक सूर्य की कड़ी धूप में रहकर प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। सूर्य इतना नीचा उतर आवेगा कि उसकी ऊँचाई उनके सिरों से केवल कुछेक हाथ रह जायगी। *

न्याय का दिन—लोगों के नियत दिवस तक प्रतीक्षा करने के उपरान्त उनके न्याय-निर्धारण के लिये ईश्वर प्रकट होंगे। उस समय हजरत मुहम्मद साहब 'शफी' का पद ग्रहण करेंगे। तब प्रत्येक व्यक्ति से उसके जीवन के समस्त कर्मों के सम्बन्ध में पूछ-ताछ की जायगी। कुछेक का कथन है कि शरीर के समस्त अङ्ग-प्रत्यङ्गों में से जिसके द्वारा जो पाप हुआ है उससे वह स्वीकार कराया जायगा। प्रत्येक मनुष्य को एक पुस्तक दी जायगी जिसमें उसके कर्मों का लेखा लिखा होगा। इन पुस्तकों को एक तुला-द्वारा तौला जायगा, जिसे इसराईल उठावेगा। जिन लोगों के शुभ कर्मों का पल्ला अशुभ कर्मों के पल्ले की अपेक्षा भारी होगा वे सीधे स्वर्ग को भेजे जावेंगे। और जिनके कुकर्मों की मात्रा अधिक होगी उन्हें नरक का मार्ग ग्रहण करना होगा, यह विचार सर्वांश में यहूदियों से लिया गया है। डाक्टर सेल लिखते हैं कि "पुराने यहूदी

* सेल साहब का कुरान, भू० पृ० ६१।

लेखक लोग भी अन्तिम दिन उपस्थित की जाने वाली उन पुस्तकों का वर्णन करते हैं जिनमें मनुष्य के कर्मों का लेखा लिखा होगा, और उन तराजुओं का भी वर्णन करते हैं जिसमें ये तोली जावेंगी।" *

यहूदियों ने यह विचार जरदुश्तियों से लिया। डाक्टर सेल संकेत करते हैं कि दोनों के विचारों की नींव पुरानी 'धर्म पुस्तक' जान पड़ती हैं। (यात्रा की पुस्तक ३२। ३२-३३, दानयाल ७। १०, ईश्वरीयज्ञान २०। १२, दानयाल ५। २७) परन्तु वे स्वीकार करते हैं कि तुला के विषय में पारसी लोगों का जो विश्वास है वह मुसलमानों के के विचार से बहुत मिलता-जुलता है। उनका विश्वास है कि न्याय-व्यवस्था के दिन मेहर और सरूश दो देवदूत जिनका वर्णन हम आगे करेंगे, पुल पर खड़े होंगे। ये लोग पुल को पार करने वाले प्रत्येक मनुष्य की परीक्षा लेंगे। पहिला दूत जो ईश्वरीय दया का प्रतिनिधि है लोगों के कर्मों को तोलने के लिये एक तराजू हाथ में लिये रहेगा। इसकी सूचना के अनुसार ही ईश्वर आज्ञा देगा। जिनके सुकर्मों का पल्ला बोझ से बालभर भी झुक जायगा उनको स्वर्ग में जाने की आज्ञा दी जायगी। लेकिन जिनके शुभकर्मों का पल्ला हलका रहेगा वे ईश्वरीय न्याय के प्रतिनिधि दूसरे दूत द्वारा पुल से नरक में ढकेल दिये जावेंगे।

स्वर्ग के मार्ग पर एक पुल है जिसका नाम हजरत मुहम्मद ने अलसिरात ** रक्खा है। यह पुल नरक कुण्ड के ऊपर बना हुआ है, वह बाल से भी अधिक सूक्ष्म और तलवार की धार से भी अधिक तीव्र बताया जाता है। इस पुल से मुसलमान लोग मुहम्मद साहब के पीछे-पीछे सुगमता पूर्वक पार उतर जावेंगे। परन्तु दुष्ट लोगों का पैर फिसल

---

* देखो Midrash, yalkut, Shemum, p. 153, c. 3, and Gemar Sauhedr, p. 91.

** सेल का कुरान, भूमिका, पृ० ७१। देखो जन्दावस्ता भाग ३, मन्युखुर्द, पृ० १३४ (S. B, E. Series)

जायगा जिससे वे अपने नीचे के विशालमुखोन्मुक्त नरक में धड़ाम से सिर के बल जा पड़ेंगे। यहूदी लोग भी नरक सेतु का इसी प्रकार वर्णन करते हैं। उनके मतानुसार उसकी चौड़ाई धागे से अधिक नहीं है। इस विचार के लिये यहूदी और मुसलमान दोनों समान रूप से जरदुश्त के कृतज्ञ जान पड़ते हैं, जिसकी शिक्षा है कि अन्तिम दिन सब लोगों को चिनबद पुल पार करना होगा।*

स्वर्ग-अलसिरात को पार करके धर्मात्मा लोग स्वर्ग में पहुँच जावेंगे जो सातवें आसमान पर स्थित है। मुसलमानों के मत में स्वर्ग एक सुन्दर उद्यान है, जो झरनों और फव्वारों से सजा है, जिसमें जल, दूध और बेलसाम (Balsam) की नदियाँ बह रही हैं, वृक्षों के सुनहरी तने हैं और उन पर परम स्वादिष्ट फल लगते हैं। इन से बढ़ कर स्वर्ग में ७० सुन्दर और मनोहारिणी नवयुवतियाँ होंगी जो अपने विशाल श्याम नेत्रों के कारण हूरुल अयून कहलाती हैं। प्रायः इस समस्त वर्णन के लिये मुहम्मद साहब यहूदियों के आभारी हैं। "यहूदी लोग भी पुण्यात्मा लोगों के भावी निवास-स्थान को एक सुन्दर उद्यान बताते हुए उसकी स्थिति सातवें आसमान पर ही मानते हैं। (देखो Gemar Tanith, p. 25, Biracath d. 34, Midrash Labbath p. 37) उनका यह भी कथन है कि उसमें तीन द्वार और ४ नदियाँ हैं जिनमें दूध, मदिरा, बेलसाम और मधु प्रवाहित रहते हैं।" (Midrash, yalkut-Shewine)**

बहुत सम्भव है कि स्वयं यहूदियों ने यह विचार ज़रदुश्तियों से लिया हो, क्योंकि वह भी स्वर्ग की सुन्दरता का इसी प्रकार की भाषा में वर्णन करते हैं। डाक्टर सेल लिखते हैं कि "पारसी विद्वानों का पुण्यात्मा लोगों की आगामी हर्षमय अवस्था के सम्बन्ध में जो विचार

---

* सेलका कुरान, भूमिका पृ० ७।

** सेल का कुरान, भूमिका पृ० ७६

है उस में और मुहम्मद साहब के विचार में बहुत थोड़ा अन्तर है। वे स्वर्ग को विहिश्त और मिनू कहते हैं जिसके अर्थ स्फुटिकमणि या बिल्लौर के हैं। उनका विश्वास है कि वहाँ धर्मात्मा लोग सब प्रकार के आनन्दों का उपभोग करेंगे, जिनमें विशेषकर श्याम नेत्र वाली हूराने-बिहिश्त नामक उन स्वर्गीय रमणियों का सहवास है जो ज़मियाद फ़रिश्ते के संरक्षण में रहती हैं। यहीं से मुहम्मद साहब ने अपनी स्वर्गीय रमणियों का संकेत ग्रहण किया है।"*

यहाँ हम पारसियों के 'नामामिहावाद' नामक एक पिछले ग्रन्थ से कुछ उद्धरण देते हैं। "स्वर्ग की सब से तुच्छ कक्षा यह है कि वहाँ के निवासी समस्त सांसारिक सुखों का उपभोग करते हैं अर्थात् सुन्दरियाँ, दास, दासी, माँस और मदिरा, कपड़े और बिछौने, सजाने का सामान तथा अन्य पदार्थ जिनकी यहाँ गणना नहीं की जा सकती।" (मिहाबा ४०।४१)*

नरक—इसी प्रकार नरक की विविध प्रकार की यातनाएँ, उसका सात विभागों में विभक्त होना, स्वर्ग से नरक को पृथक् करने वाला 'अलऐराफ़' नामक स्थान आदि सब बातें यहूदियों से नक़ल की हुई जान पड़ती हैं।

३—ईश्वर और शैतान

मुसलमान लोगों का ईश्वर विषयक मन्तव्य यहूदियों के मन्तव्य से प्रायः पूर्णतया मिलता है। यह सिद्धान्त भी यहूदियों ही से लिया गया कि संसार में दो शक्तियाँ विद्यमान हैं—एक, अच्छी और शुभ-कारिणी शक्ति अर्थात् ईश्वर, दूसरी बुरी और अशुभकारिणी शक्ति अर्थात् शैतान। उपरोक्त विचार जो बाइबिल और कुरान के एक ईश्वरवाद पर धब्बा लगाता है निश्चय रूप से यहूदियों ने जरदुश्तियों से लिया जो उन शक्तियों को स्पन्तामन्यु और अंगिरामन्यु कहते हैं।

* भूमिका पृष्ठ ७८

आगे चल कर* हम इस प्रश्न पर अधिक विस्तार से विचार करते हुए यह सिद्ध करेंगे कि जरदुश्तियों की इस बात का पता वेदों के उस सुन्दर अलङ्कार में लगता है जिसमें संसार के पुण्य और पाप के संग्राम का वर्णन किया गया है। उस अलङ्कार को ठीक-ठीक न समझने का यह परिणाम हुआ कि यहूदी, ईसाई और मुसलमानों ने उसे बिगाड़ कर दो अलग शक्तियों का विश्वास रच लिया। शैतान का अधिकार इतना बढ़ाया गया कि वह ईश्वर से कुछ ही कम रह गया। यह एक महत्वपूर्ण विषय है। इसके द्वारा यह भली भाँति स्पष्ट हो जायगा कि धार्मिक विचारों की धारा वेदों से जन्दावस्ता तक और वहाँ से बाइबिल व कुरान तक किस प्रकार बही है।

४—विहित कर्म्म

हमने अब तक यह दिखलाया है कि मुसलमानों ने ज्ञान-काण्ड-सम्बन्धी मुख्य सिद्धान्त यहूदियों से लिये हैं। परन्तु अब हम यह दिखावेंगे कि इनके कर्म-काण्ड की भी उत्पत्ति उन्हीं से हुई।

प्रत्येक मुसलमान को नीचे लिखे चार कर्म अवश्य करने चाहिये अर्थात् नमाज, रोजे, जकात और मक्का की यात्रा वा हज।

(१) नमाज—पारसियों की दसातीर के निम्नलिखित बचनों से पाठकों को यह बात ज्ञात होगी कि मुहम्मदी लोगों की नमाज** वा प्रार्थना-समय की कतिपय अङ्गसंचालनादि सम्बन्धी बातें सम्भवतः जरदुश्तियों से नकल की गई है।

"नमाज पढ़ते समय एक पवित्र बुद्धिमान मनुष्य आगे खड़ा हो और शेष सब उसके पीछे। नमाज के समय मनुष्य दोनों हाथ मिलाकर सीधा खड़ा हो, फिर नीचे की ओर झुके, फिर धरती पर घुटनों के बल लेट जावे। फिर सीधा खड़ा होकर एक हाथ अपने सिर पर रख ले। इसके

---

* देखो अध्या० ४ अंश ४

** नमाज शब्द अर्बी नहीं किन्तु पारसी है और संस्कृत नमः से बना है।

उपरान्त अपना सिर ऊँचा करे और अंगूठों को बिना मिलाये दोनों हाथों को मिलावे। अंगूठों को अपनी आँखों पर इस प्रकार रक्खे कि हाथों की अंगुलियाँ सिर तक पहुँच जावें। फिर अपने सिर को छाती की ओर झुका कर उठावे, और धरती पर बैठ जावे। इसके पीछे अपने हाथ जमीन पर टेक घुटनों के बल बैठ कर पहले मस्तक को धरती से लगावे और फिर मुख के दोनों ओर से उसको छूए और तदुपरान्त धरती पर दण्ड के समान लेट जावे, फिर हाथों को इतना फैलावे कि छाती से धरती छू जावे। इसी प्रकार जंघाओं से करे। फिर घुटनों के सहारे झुके, फिर चार जानू बैठे और फिर हाथों को जोड़कर उन पर सिर रक्खे। इस प्रकार की नमाज ईश्वर के सिवाय अन्य किसी के प्रति न पढ़नी चाहिये।*

मुसलमानों में जो कअबे की ओर मुँह करके नमाज पढ़ने की प्रथा प्रचलित है वह भी यहूदियों से ग्रहण की गई। क्योंकि वह भी अपना मुँह यरूसलम के मन्दिर की ओर करके नमाज पढ़ा करते हैं। डाक्टर सेल लिखते हैं कि '६ या ७ मास तक (कोई-कोई १८ महीने बताते हैं, देखो Abulfednit mah, p. 54.) मुहम्मद साहब व उनके अनुयायियों का किबला भी यरूसलम ही रहा, अर्थात जब तक वे कअबे को अपना क़िबला' बनाने के लिये बाध्य न हुए।"**

नमाज के पूर्व रेती या जल से हाथ पाँव धोने की क्रिया भी यहूदियों और पारसियों से ली गई है। खतने की प्रथा के सम्बन्ध में तो यह प्रसिद्ध है कि वह यहूदियों से ग्रहण की गई।

(२) रोजे (उपवास)—रोजों के सम्बन्ध में मुहम्मद साहब के आदेश का वर्णन करते हुए डाक्टर सेल यहूदियों तक उसका पता लगाते हैं। वे लिखते हैं कि "यहूदी लोग जब उपवास करते हैं तब वे दिन निकलने से

---

* यासान प्रथम ५९-६१

** सेल का कुरान भूमिका ८५,

लेकर सूर्यास्त तक केवल खान-पान ही नहीं छोड़ देते प्रत्युत स्त्री और तैल मर्दन से भी बचते हैं और रात को जैसा चाहते हैं भोजन करने में व्यतीत करते हैं। (Gemar yama P. 40, etc)"

(३) खैरात (दान)—इसके दो भेद हैं, १-जकात और २-सदका। इनके लिये विशेष नियम निर्धारित किये गये हैं। डाक्टर सेल के मतानुसार इन नियमों में भी यहूदियों के पद चिह्नों का पता लगता है। (देखो सेल साहब के कुरान की भूमिका पृ० ८७)

(४) हज अर्थात् मक्का-यात्रा। मक्का-यात्रा की विधि यहूदियों से नहीं ली गई प्रत्युत वह मूर्ति पूजक अरब निवासियों का अवशिष्टांश मात्र है। अरब लोग मक्का के मन्दिर को चिरकाल से बहुत प्रतिष्ठा करते रहे और नबी ने उनके इस विश्वास में हस्तक्षेप करना उपयुक्त न समझा।

५—निषिद्ध कर्म

जूआ, मदिरा-पान, ब्याज लेना तथा कई प्रकार के वर्जित माँसों का सेवन, ये कुछ ऐसे निषिद्ध कर्म्म हैं जो यहूदी और मुसलमान दोनों के लिये समान हैं। अभक्ष्य माँसों के बारे में कुरान में लिखा है कि "तुम्हारे लिये उसके माँस का भक्षण करना वर्जित है जो अपने आप मरा हो, रुधिर और शूकर माँस* का तथा उसका जिस पर ईश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी के नाम का पाठ किया गया हो, एवं जिसके प्राण गला घोंट कर अथवा चोट से निकाले गये हों, अथवा जो गिरने से या अन्य पशुओं के सींघों के आघात से मरा हो, या जिस किसी को जंगली जन्तु ने खाया हो, तुमने स्वयं न मारा हो अथवा जो किसी मूर्ति के अर्पण किया गया हो।" डाक्टर सेल कहते हैं—"जान पड़ता है कि मुहम्मद साहब ने इन बातों का अनुकरण यहूदियों से किया, क्योंकि उनके धर्म ग्रन्थानुसार भी—जैसा कि प्रसिद्ध है—इन सब वस्तुओं का

* कुरान आ ५ अ० ७३,

निषेध है। पर मुहम्मद साहब ने कुछ ऐसी वस्तुओं को खाने की आज्ञा दी है जिनका विधान हजरत मूसा ने नहीं किया था।" (देखो बाइबिल लेवित ११।४)

६—सामाजिक प्रथाएँ

मुसलमानों को सामाजिक प्रथाएँ उसी प्रकार कुरान पर अवलम्बित हैं जिस प्रकार यहूदियों की पंजनामे पर। निम्नलिखित बातों से प्रकट होगा कि मुसलमानों ने इस विषय में भी यहूदियों की नकल की है—

१—बहु-विवाह (एक पुरुष का कई स्त्रियों से विवाह) का दोनों में विधान है। परन्तु मुसलमानों को एक समय में चार स्त्रियों से अधिक के साथ विबाह करने की आज्ञा नहीं। डाक्टर सेल उपरोक्त निश्चित संख्या के सम्बन्ध में लिखते हैं—'उसके स्थिर करने में मुहम्मद साहब ने उन यहूदी आचार्यों की व्यवस्था का अनुकरण किया है जिन्होंने सलाह के तौर पर चार स्त्रियों तक की सीमा रक्खी है (देखो Maimon in Halaehath Ishath, C. 14) यद्यपि उनके शास्त्र में स्त्रियों की किसी संख्या का प्रतिबन्ध नहीं है।" (सेल का कुरान भूमिका पृ० १०४)

स्त्री-त्याग—(तलाक) की प्रथा भी दोनों मतों में समान रूप से प्रचलित हैं। स्त्री-त्याग का विधान करने में मुहम्मद साहब ने यहूदियों का अनुगमन किया है। जब कोई स्त्री त्याग दी जावे तो उसे अपना पुनर्विवाह करने के पूर्व ३ मास पर्यन्त प्रतीक्षा करनी चाहिये। इस अवधि को 'इद्दत' कहते हैं। इस अवधि के अन्त में यदि वह गर्भिणी सिद्ध हो तो बालक प्रसव करने तक दूसरा विवाह नहीं कर सकती। डाक्टर सेल लिखते हैं कि—"यह नियम भी यहूदियों से लिए गये, क्योंकि उनके मतानुसार किसी त्यक्त अथवा विधवा स्त्री को पति के त्यागने अथवा मृत्यु होने से ९० दिन तक दूसरे पुरुष के साथ पुनर्विवाह करने का अधिकार नहीं है।" डाक्टर सेल का यह भी कथन है कि—'स्त्रियों के मासिक-धर्म समय की अशौचता, दासियों को स्त्री बनाना

तथा किन्हीं निश्चित सम्बन्धों में विवाह-वर्जन आदि विषय में भी मुहम्मद साहब के आदेशों की हजरत मूसा के विचारों से समानता कुछ कम नहीं है।

७-कुछ साधारण समानताएँ—

१—सप्ताह का एक दिन ईश्वर की विशेष उपासना के लिये पृथक् रखना भी यहूदियों की ही प्रथा है। वे शनिवार को पवित्र मानते हैं। ईसाई लोगो ने अपना 'विश्राम दिवस' रविवार निश्चित किया। मुहम्मद साहब ने इस सम्बन्ध में इन मतों का अनुकरण किया है। परन्तु कुछ अन्तर रखने के विचार से उन्होंने अपने अनुयायियों को शनिवार और रविवार के स्थान में शुक्रवार को पवित्र दिन मानने की आज्ञा दी।

२—कुरान का प्रसिद्ध मूलसिद्धान्त "ला इलाह इल्लिल्लाह" (खुदा के अतिरिक्त कोई खुदा नहीं) जरदुश्तियों के "नेस्तेजद मगर यजदा" का उल्था मात्र है।

३—इस बात का भी लिखना उचित है कि केवल नवें अध्याय को छोड़ कर कुरान के शेष सब अध्याय "बिस्मिल्लांह अर्रहमाने रहीम" इन शब्दों से प्रारम्भ होते हैं। यह जरदुश्तियों के इस सूत्र का रूपान्तर है जिसको वे अपनी पुस्तकों के आरम्भ में लिखते हैं। 'बनाम यजदां बखशिशगरदादार' (साथ नाम यजदां के जो बखिशिश करने वाला और देने वाला है)।

८—सारांश :

उपर्युक्त बातें यह सिद्ध करने के लिये पर्याप्त हैं कि मुसलमानी मत ने प्रायः समस्त धार्मिक विचार और शिक्षाएँ अधिकांश में यहूदियों और किसी अंश में जरदुश्तियों से ग्रहण की हैं। अतएव कुरान का धर्म कोई नवीन ईश्वरीय ज्ञान अथवा ईश्वर की किसी विशेष आज्ञा के प्रचार का दावा नहीं कर सकता। हमारे मुसलमान भाई कदाचित

यहाँ यह कहेंगे कि "कुरान का एक ईश्वरवाद यहूदी और ईसाईमत से भी पवित्र और उत्तम है। और जरदुश्ती मत के विषय में तो कुछ कहना ही नहीं, क्योंकि वह दो ईश्वरों में विश्वास रखने के कारण कदापि एक ईश्वरवादी नहीं हो सकता"। इसमें सन्देह नहीं कि ईसाइयों का ईश्वर विषयक विचार कई बातों में मुसलमानी विचारों से बढ़ कर है। ईसाई लोग 'कुरान के खुदा' की अपेक्षा अपने ईश्वर को अधिक धर्म-प्रिय, अधिक दयालु, अधिक पवित्र और अधिक प्रेम करने वाला वर्णन करते हैं। दूसरी बातों में निस्सन्देह ईसाइयों का ईश्वरवाद कुरान की आस्तिकता से घटिया है। ईसाईमत ईश्वरत्व में तीन आत्माओं (Trinity) की शिक्षा देता है, जिसको वास्तव में तीन ईश्वरों में विश्वास करना समझना चाहिये। इस बात में ईसाईमत की अपेक्षा कुरान एक ईश्वर की उपासना करने का अधिक दृढ़ता पूर्वक उपदेश देता है, परन्तु यह समझना कठिन है कि यहूदियों की अपेक्षा मुसलमानी मत की ईश्वर विषयक शिक्षा क्यों कर उत्तम है। क्योंकि यह दोनों मत समान रूप से एक ईश्वरवादी वा दो शक्तिवादी हैं। दोनों ही शैतान को प्रायः ईश्वर के समान मान कर अपने अद्वैतवाद की शुद्धता को कलंकित करते हैं। दोनों के ईश्वर विषयक एक से ही विचार हैं। यहूदियों का 'जैहोवा' (Jehova) जो मनुष्यों के से गुण वाला, चलचित्त, बदला लेने वाला, कुरान के अल्लाह से पूर्ण सादृश्य रखता है, जो एक असहिष्णु और स्वेच्छाचारी सम्राट् के समान वर्णित है, जो अपने पूजकों को 'काफिरों' के साथ धर्मयुद्ध करने और उनका संहार करने की आज्ञा देता है।

रहा जरदुश्ती मत का ईश्वर विषयक विश्वास, वह यहूदियों वा मुसलमानों के आस्तिकवाद से किसी प्रकार भी घटकर नहीं है। पादरी ऐल० ऐच० मिल्स का कथन है कि "अब तक जितने शुद्ध-से-शुद्ध विचार उपस्थित किये गये हैं उनमें 'अहुरमजदा' का विचार भी है*।

* जन्दावास्ता भाग ३ पृ० ३८ (S. B. E. Series)

हम यह भी कह सकते हैं कि निःसन्देह वह कुरान और बाइबिल के ईश्वर का वास्तविक मूल रूप है। हम इस विषय पर आगे चल कर विस्तार पूर्वक विचार करेंगे*। एक ईश्वरवाद के विषय में मोहम्मद साहब की शिक्षा का गौरव इसलिये अवश्य है कि उन्होंने उस समय के बिगड़े हुए ईसाईमत वा उन अरब निवासियों की बहुदेव पूजा का विरोध किया कि जिनमें वे स्वयं रहते थे। मुहम्मद साहब के समकालीनों के विचारों से उनकी शिक्षा कितनी ही उत्तम क्यों न समझी जावे परन्तु कुरान का 'ईश्वरवाद' यहूदियों के ईश्वरवाद से अधिक श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता। अतएव यह प्रतिज्ञा कि कुरान की ईश्वर विषयक शिक्षा यहूदी और जरदुश्ती ईश्वरवाद से (जिनसे वह निकली है) अधिक उत्तम है और इसलिये कुरान ईश्वर का विशेष वा स्वतन्त्र ज्ञान है, सिद्ध नहीं हो सकता।

०००

* देखो अध्याय ४ अं० ३। ४ और अध्याय ५ अं० ५।

द्वितीय अध्याय

ईसाईमत का आधार विशेषतः यहूदी मत और अंशतः बौद्धधर्म है

—:०:—

"जो अब ईसाई धर्म कहा जाता है वह प्राचीन लोगों में भी था, और वह मानव जाति के आरम्भ काल से लेकर ईसामसीह के शरीर धारण करने तक बराबर उपस्थित रहा। हजरत ईसा के उत्पन्न होने के समय से उस पूर्ववर्ती धर्म का नाम ईसाई मत पड़ा"

(सैन्ट औगस्टाइन)

१—यहूदीमत और ईसाईमत :

ख्रीष्ट मत के समस्त सिद्धान्त, जैसा कि स्वयम् उसके अनुयायी भी स्वीकार करते हैं, यहूदीमत से लिये गये। ईसाई लोग "पुरानी धर्म पुस्तक" को यहूदियों के सदृश ही ईश्वरीय वाक्य मानते हैं। हजरत ईसा ने-जो जन्म के यहूदी थे—यहूदीमत को लुप्त करके अपना नवीन धर्म स्थापित करने की कभी इच्छा नहीं की। ईसामसीह ने अपने पर्वत उपदेश' में प्राचीन धर्मों के सम्बन्ध में अपने विचारों को स्पष्ट रूप से प्रकट किया है—"यह मत समझो कि मैं तौरेत अथवा नबियों को नष्ट करने आया हूँ। नष्ट करने को नहीं प्रत्युत उन्हें पूर्ण करने के लिये मेरा आगमन हुआ है। मैं तुमसे सच कहता हूँ कि जब तक पृथ्वी और आकाश स्थित है तब तक तौरेत से एक बिन्दु या कण भी दूर न होगा, जब तक कि वह सर्वांग सम्पन्न न हो जावे। सुतराम, जो व्यक्ति छोटी-छोटी भी आज्ञाओं को भङ्ग कर लोगों को तदनुसार ही उपदेश देगा वह स्वर्ग साम्राज्य में महातुच्छ

कहलावेगा और जो उन्हें स्वयम् कर्त्तव्य में परिणित करता हुआ दूसरों से भी वैसा ही करावेगा वह महान् कहा जायगा"। (मत्ती की इंजील अ० ५ आ० १७-१९)

यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है "तो क्या यहूदी और ईसाईमत में कुछ अन्तर ही नहीं? क्या इन दोनों की शिक्षा एक ही है? क्या इन दोनों के मध्य भेद प्रकट करने की कोई बात नहीं?" इन सब प्रश्नों का हम यह उत्तर देंगे कि ईसाइयों के आध्यात्मिक सिद्धान्त निश्चय रूप से वही हैं जो यहूदियों के हैं, लेकिन उसके सदाचारिक उपदेश यहूदीमत के आचार्य्यों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ एवं उच्चतर हैं। इन दोनों मतों का भेद स्वयम् ईसामसीह ने अपने उस आत्मोन्नायक 'पर्वती व्याख्यान' में बड़ी स्पष्ट रीति से दिखाया है जिसके कुछ वचन हम पूर्व भी उद्धृत कर चुके हैं।

"मैं तुमसे कहे देता हूँ कि यदि तुम्हारी सत्यनिष्ठा धर्म व्याख्याताओं (Scribes) और फारसी लोगों की सत्यनिष्ठा से बढ़कर न होगी तो तुम किसी दशा में भी 'स्वर्गसदन' में प्रवेश न कर सकोगे।".

"तुम श्रवण कर चुके हो कि पूर्व पुरुषाओं से कहा गया था कि हिंसा मत करना, जो कोई हिंसा करेगा उसे न्याय व्यवस्था का दण्ड भोगना पड़ेगा, परन्तु मैं तुमसे कहता हूँ कि जो कोई अकारण हीं अपने भाई से रुष्ट रहेगा वह दण्ड पाने का योग्य समझा जायगा, जो कोई अपने भाई को विक्षिप्त कहेगा वह 'विचार-सभा' से दण्ड पावेगा। परन्तु जो कोई उसे मूर्ख बतावेगा वह नरक में डाला जावेगा। इसलिये यदि तू यज्ञ वेदी पर अर्पण करने को कुछ भेंट लावे और वहाँ तुझको स्मृति हो कि मेरा भाई मुझसे कुछ अप्रसन्न है तो तू भेंट वहीं छोड़कर पहले उससे प्रेम कर और पीछे भेंट को वेदी पर चढ़ा। जब तू मार्ग में अपने शत्रु के साथ हो तो उससे तुरन्त मेल करले, ऐसा न हो कि किसी समय शत्रु तुझे न्यायाधीश को सौंप दे और वह तुझे अफसर के हवाले

करदे जिससे तुझे कारागार भोगना पड़े। तुझसे निश्चय रूप से कहता हूँ कि जब तक तू कौड़ी-कौड़ी का भुगतान न कर देगा तब तक उस बन्धन से कदापि मुक्त न होगा!"

"तुमने सुना है कि प्राचीन लोगों से कहा गया था कि व्यभिचार न करना, परन्तु मैं तुमसे कहता हूँ कि यदि किसी ने पर स्त्री की ओर कुदृष्टि से देखा तो समझना चाहिये कि वह उसके साथ मानसिक व्यभिचार कर चुका। यदि तेरी सीधी आँख तुझे खिझाती हैं तो उसे पृथक् करदे क्योंकि तेरे लिये यह लाभदायक है कि तेरे शरीर के अवयवों में से एक नष्ट हो जाय और सारा शरीर नरक में पड़ने से बच जावे। और यदि तेरा सीधा हाथ कुचेष्टा करे तो उसे काट कर फेंक दे क्योंकि तेरे लिये यही उपयोगी है कि सारा शरीर नरक गामी न बना कर केवल एक अवयव को पृथक् करदे। यह भी बताया गया था कि यदि कोई अपनी स्त्री को छोड़ दे तो उसे 'त्याग-पत्र' लिखदे। परन्तु मैं तुमसे यह कहता हूँ कि जो कोई दुराचारिणी होने के अतिरिक्त अन्य किसी कारण वश स्त्रीत्यागन करता है वह उसे व्यभिचारिणी बनाने की भागी है, और जो कोई उस त्यक्त स्त्री से विवाह करता है वह उसके साथ व्यभिचार करता है।"

"फिर तुम सुन चुके हो कि पूर्वजों से कहा गया था कि तुम स्वार्थवश शपथ न खाना प्रत्युत ईश्वर के निमित्त उनकी पूर्ति करना। मैं तुमसे यह कहता हूँ कि तुम शपथ ही न खाओ। न तो आसमान की कसम खाना क्योंकि वह ईश्वर का सिंहासन है, न पृथ्वी की क्योंकि वह ईश्वर की पादुका स्वरूप है और न यरूसलम की क्योंकि वह बड़े राजा का नगर है। तुम सिर की भी शपथ न खाओ क्योंकि तुम एक बाल तक को स्याह या सफेद नहीं कर सकते। तुम्हारे सन्देश में 'हाँ-हाँ' और 'नहीं-नहीं', होने चाहिये, क्योंकि जो बात इनसे अधिक होती है उसका दूषणों में परिगणन किया जाता है।"

"तुम इस बात को सुन चुके हो कि "आँखों में बदले आँख, और दाँतों के बदले दान्त।" परन्तु मैं तुमसे कहता हूँ कि दुष्ट का सामना न करना। जो कोई तुम्हारे सीधे गाल पर थप्पड़ मारे तो दूसरा भी उसी की ओर कर दो। और यदि कोई कानून के अनुसार नालिश करके तुम्हारा कोट लेना चाहे तो चोगा भी उसे दे दो। यदि तुम्हें कोई एक मील चलने के लिये बाध्य करे तो तुम उसके साथ दो मील तक चले जाओ। जो कुछ वह तुझ से माँगे उसे दे और जो तुझसे ऋण-याचना करे उससे मुँह मत फेर ले।"

"तुम इस बात को श्रवण कर चुके हो कि 'तू अपने पार्श्ववर्त्तियों से प्रेम और शत्रुओं से घृणा कर, लेकिन मैं तुमसे यह कहता हूँ कि शत्रुओं पर प्यार करो। जो तुमको कोसें उन्हें आशीर्वाद दो। जो तुम से घृणा करें उनसे प्रेम करो, जो तुमसे द्वेष करें या कष्ट पहुँचावें उनके लिये ईश्वर से प्रार्थना करो जिससे तुम अपने स्वर्गीय पिता के प्यारे पुत्र बनो, क्योंकि वह भले-बुरे दोनों पर सूर्य्य की किरणें पहुँचाता है। सच्चे और झूंठे दोनों पर जल-वृष्टि करता है। जो लोग तुम पर प्रेम करते हैं उन्हीं पर तुम भी प्रेम करो तो तुम्हारे लिये क्या लाभ होगा? क्या कर-ग्राही लोग ऐसा ही नहीं करते? यदि तुम अपने भाइयों को ही अभिवादन करते हो तो अन्यों की अपेक्षा कौन-सा बड़ा कार्य करते हो? तुमको अपने स्वर्गीय पिता के समान पूर्ण बनना चाहिये"। (मत्ती रचित इंजील अ० ५ आ० २०-४८)

उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि सदाचारिक शिक्षाओं के सम्बन्ध में यहूदियों की अपेक्षा ख्रीष्टमत अधिक उन्नत है। आत्मनम्रता, सच्चरित्रता, शुद्धता, क्षमाशीलता, लौकिक वासनाओं में अश्रद्धा, शान्ति, दान, सज्जनता, सहिष्णुता, प्रेम-निदान मनुष्य जीवन का उच्चतम आदर्श और सदाचार का श्रेयस्कर शास्त्र—ये ही बातें हैं जिनसे यहूदियों के प्राचीन-तर धर्म व ख्रीष्टमत के बीच भेद जाना

जाता है। परन्तु ये बातें ईसाईमत की मौलिक बातें नहीं प्रत्युत बौद्धधर्म के प्रभाव से हैं।

ईसाईमत पर बौद्धधर्म का प्रभाव

२—सम्बन्ध का मार्ग :

महाशय रमेशचन्द्रदत्त लिखते हैं कि बौद्धधर्म के सदाचारिक सिद्धान्त और शिक्षाएँ ईसाईमत के सिद्धान्तों से इतने मिलते-जुलते हैं कि बहुत दिनों से इन दोनों धर्मों के मध्य कोई सम्बन्ध होने का सन्देह किया जा रहा है। * यूनान में बुद्ध की शिक्षा ईसामसीह के जन्म से बहुत पूर्व प्रवेश कर चुकी थी। महाराजा अशोक के गिरनार के शिला लेखों से पता चलता है कि उनके राज्य काल में बौद्ध प्रचारक, सीरियादेश में अपना धर्म फैलाने के लिये गये थे। प्लिनी (Pliny the naturalist) नामक तत्त्ववेत्ता (प्रथम शताब्दी का प्रसिद्ध रोमन इतिहास वेत्ता) पैलस्टाइन में ईसा से कोई एक शताब्दी पूर्व ऐसेनस (Essenes) + नामक सम्प्रदाय का उल्लेख करता है। अर्वाचीन खोज से सिद्ध हुआ है कि वह सम्प्रदाय बौद्धधर्म की एक शाखा रूप था। मिश्रदेश में भी इसी प्रकार का थेरापेटे (Thera pautae) नामक एक सम्प्रदाय विद्यमान था। इस बात को ईसा-चरित्र (Life of Jesus) के सुप्रसिद्ध लेखक पादरी रेनन साहब जैसे विद्वान् भी स्वीकार करते हैं कि उक्त सम्प्रदाय ऐसेनेस या दूसरे शब्दों में बौद्धधर्म की शाखा स्वरूप था। वे लिखते हैं कि "फीलो के थेरापेटे ऐसेनैस की शाखा है। उनका नाम यूनानी भाषा में ऐसेनैस का उल्था मात्र जान पड़ता है। ● इस प्रकार हमें पता लगता है कि ईसा के जन्म

---

* Civilisation in Ancient India, vol. 11. p, 328.

+ देखो Historia Naturalis vol. V, 17, quoted, in R. L. C. Dutt's Ancient India, vol. 11. p, 337.

● Quoted in Ancient India, vol. 11. p, 337.

से पूर्व पैलस्टाइन सीरिया और मिश्र में बौद्धधर्म पूरा प्रचार पा चुका था। और पैलेस्टाइन के ऐसेनेसों में बौद्धधर्म के सिद्धान्त साधारण घरेलू कहावत बने हुये थे। श्रीयुत रमेशचन्द्रदत्त का कथन है कि कुछ नरम ईसाई इस बात को मानते हैं कि सीरिया में बौद्धधर्म (प्रोफेसर महाफी के शब्दों में) उस मत का सहायक अग्रगन्ता बना जिसका प्रचार ईसामसीह ने दो शताब्दियों से भी अधिक समय के पश्चात् किया *"। हम यह जानते हैं कि ईसा का अग्रगन्ता बपतिस्मा देने वाला 'जौन' ऐसेनेस की शिक्षाओं से भलीभाँति अभिज्ञ था। कुछ ग्रन्थकारों की सम्मति है कि वह स्वयं भी ऐसेनैस अर्थात् बौद्ध था। अतएव अब यह स्पष्ट है कि हजरत ईसा मसीह ने बपतिस्मा देने वाले से बौद्धधर्म की शिक्षा और संस्कारों के सम्बन्ध में बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त किया। उपरोक्त घटनाएँ बौद्ध और ईसाई धर्म के बीच परस्पर सम्बन्ध का मार्ग वा द्वार दिखलाने के लिये पर्य्याप्त हैं।

३—उपदेशों की समानता

परस्पर सम्बन्ध की सम्भावना को दिखलाने के उपरान्त अब हम बुद्ध और ईसा के कुछ उपदेशों को बराबर-बराबर रखते हैं, जिनसे यह ज्ञात होगा कि वे भाव और भाषा में एक दूसरे से किस घनिष्टता के साथ समता रखते हैं :—

बुद्ध	ईसा
१—अरे मूर्ख! इन जटाओं और मृगछाला धारण से क्या लाभ है? तेरा अन्तःकरण मलीन हैं पर बाहर से स्वच्छता का आडम्बर बनाये हुये हैं। (धम्मपद ३९४)	१—धर्मग्रन्थ लेखक और फैरसियो! तुम पर शोक होता है, क्योंकि तुम सुफेदी से पुती हुई उस कब्र के अनुसार हो जो बाहर तो सुन्दर दिखाई देती है परन्तु भीतर मृतकों की अस्थियों तथा अन्य मलिन

* Ancient India, Vol, 11, 329.

—

वस्तुओं से परिपूर्ण हैं।

(मत्ती की इंजिल २३। २७)

प्रभु ने उससे कहा कि एफेरिसी ! तुम प्याले और तश्तरियों को तो बाहर से साफ करते हो परन्तु तुम्हारा अन्तःकरण लूट खसोट और धूर्त्तताओं से भरा हुआ है।

(लूक की इंजील ११। ३९)

२—द्वेष, द्वेष से कदापि दूर नहीं होता प्रत्युत वह प्रेम से दूर होता है। उसका यही स्वभाव है। हमें आनन्द पूर्वक रहना चाहिये, जो हमसे विरोध करें, हमें उनसे विरोध न करना चाहिये। जो हम से द्वेष करते हैं उनके मध्य रहते हुये भी हमें द्वेष से दूर रहना चाहिये। क्रोध पर प्रेम से और बुराई पर भलाई से विजय प्राप्त करना चाहिये।

(धम्मपद, ५।१९७,२२३)

२—परन्तु मैं तुम से कहता हूँ कि तुम अपने शत्रुओं से प्रेम करो और अशुभ चिन्तकों को आशीर्वाद दो जो तुम से घृणा करें उनके साथ भलाई करो, जो तुम से बैर करें या कष्ट पहुँचावें उनके लिये प्रार्थना करो।

(मत्ती ५। ४४)

३—जीव हिंसा, हत्या करना, काटना, बान्धना, चोरी, करना, असत्य भाषण, छल, कपट, निरर्थक पुस्तकों का पाठ, पर स्त्रीगमन आदि पाप मनुष्य को पतित करते हैं।

३—क्योंकि कुविचार, हत्याकाण्ड, व्यभिचार, लम्पटता, चौर कर्म, असत्य साक्षी तथा ईश्वर के प्रति कुवाक्य आदि बातें हृदय से ही उत्पन्न होती हैं और यही बातें मनुष्य को पतित करती हैं।

बुद्ध

(सुत्त निपात अनिगन्धसुत्त S. B. E. Series)

४—जो मनुष्य तदनुसार कार्य नहीं करता उसकी चिकनी-चुपड़ी निरर्थक बातें गन्धहीन सुन्दर रंग वाले पुष्प के समान हैं।

(धम्मपद, ५१)

ईसा

(मत्ती १५ । १६-२०)

४—तुम्हारे लिये वे जो कुछ आदेश करें उसे मानते हुये तदनुसार कार्य करो, परन्तु तुम उनके से कर्म न करो क्योंकि वह कहते तो हैं परन्तु करते नहीं।

(मत्ती २३ । ३)

बुद्ध

५—सब मनुष्य दण्ड से काँपते हैं और जीवन से प्रेम करते हैं, स्मरण रखो तुम भी उन्हीं के सदृश हो। न तुम स्वयम् हिंसा करो न हत्या कराओ।

(धम्मपद, १३०*)

ईसा

५—जो व्यवहार अन्यों से तुम अपने लिये कराना चाहते हो वैसा ही उनके साथ तुम भी करो।

(लूक ६ । ३१)

बुद्ध

६—दूसरों का दोष सहज ही में दीख पड़ता है। परन्तु अपने दूषण देखना कठिन है। आदमी अपने पड़ोसियों के अवगुणों को भूसी की तरह छान फटक डालता है परन्तु

ईसा

६—अपने भाई की आँखों के तृण को तो देखता है लेकिन स्वयम् अपने नेत्रों की शहतीर की ओर क्यों विचार नहीं करता।

(मत्ती ७ । ३)

* इसी प्रकार महाभारत में कहा :

श्रूयतां धर्म सर्वस्वं श्रुत्वाचैवावधार्य्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषाम्न समाचरेत् ॥

धर्म का सार श्रवण करो और सुनकर उसे धारण करो। जो बात तुम अपने लिये पसन्द नहीं करते उसे दूसरों के लिये भी मत करो।

बुद्ध	ईसा
अपने दोषों को इस प्रकार छिपाता है जैसे ठग झूठे पाँसों को ज्वारी से छिपाता है । (धम्मपद)*	

इस प्रकार हम देखते हैं कि आन्तरिक पवित्रता, मृदुता, क्षमा, शीलता, अपकार के बदले उपकार करना आदि बातें बौद्धधर्म के ऐसे ही स्पष्ट चिह्न हैं जैसे कि ईसाईधर्म के।

'नवीन धर्म पुस्तक' (अर्थात् इंजील) की कथाएँ भी बौद्धधर्म की कथाओं से बहुत कुछ समता रखती हैं और सम्भवतः उन्हीं से नकल की गई हैं। श्रीयुत रमेशचन्द्र दत्त लिखते हैं कि "रैनन (Renan) भी जो ईसाई मत की रचना में बौद्धधर्म का प्रभाव स्वीकार करने का विरोधी है—लिखता है कि यहूदीमत में ऐसी कोई बात नहीं थी जो ईसामसीह की कथाओं की शैली का निदर्शन होता। दूसरी ओर बौद्ध-धर्म के ग्रन्थों में हमें ठीक उसी रंग-ढंग की दृष्टान्त कथाएं मिलती हैं जैसी कि इंजील में हैं।" (रेनन-कृत ईसामसीह की जीवनी का अनुवाद पृ० ३६)

समानता दिखाने वाली कुछ दृष्टान्त-कथाओं को उद्धृत करने के लिये हमारे पास स्थान नहीं है। उदाहरणार्थ हम पाठकों से 'बोने वाले की कथा' का संकेत करते हैं जो "भरद्वाज श्रुत" में है और जिसकी तुलना युहन्ना के पंचम अध्याय की १४ आयत से होती है,

---

* इसी प्रकार नीति में कहा है :—

खलः सर्षप मात्राणि परच्छिद्राणि पश्यति।
आत्मनो बिल्व मात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति॥

दुष्ट आदमी दूसरों के सरसों-भर दोष को भी देखता है, परन्तु अपने बेल के बराबर दोषों को भी जान-बूझ कर नहीं देखता।

और "धनिया सुत्त" में 'धनिया की कथा' लूका के १२ वें अध्याय की १६ आयत के बिल्कुल समान हैं।

४—विहार वा साधुआश्रम और कर्म काण्ड सम्बन्धी समानता—

डाक्टर फ़रगुसन साहब जिनकी सम्मति भारतीय भवन-निर्माण-कला विषय पर अत्यन्त प्रामाणिक समझी जाती है 'कारली' के बौद्ध गुहा मन्दिर का समय सन् ईसवी से ७८ वर्ष पूर्व का निश्चित करते हुये उसके सम्बन्ध में लिखते हैं कि "यह भवन प्राचीन ईसाई गिरजों से बहुत कुछ समानता रखता है क्योंकि इसके भी मध्य में लम्बा कमरा और उसके दोनों ओर मार्ग हैं, जिनके अन्त में गुम्बद हैं और उसके चारों ओर रास्ते बने हैं। तुलना के विचार से यह कहा जा सकता है कि उसका रचना क्रम और विस्तार नौरविच, कैथेड्रल और केन के Abbayeaux Hommes नामक गिर्जा के गायन-भवनों से बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं यदि पिछले भवन वाह्य मार्गों को दूर कर दिया जावे। गुम्बज के ठीक नीचे और जहाँ ईसाई गिरजों में प्रायः यज्ञवेदी बनी होती हैं 'दागोपा'* स्थित है।

श्रीयुत रमेशचन्द्रदत्त लिखते हैं कि "बौद्ध और रोमन कैथेलिक ईसाइयों के धार्मिक कृत्यों की समानता के सामने यह भवन-कला सम्बन्धी समानता कुछ भी नहीं है। ऐव्वे ह्यू नामक रोमन कैथेलिक पादरी ने तिब्बत में जा दृश्य देखा उससे वह बहुत ही आश्चर्य में हुआ, उसने लिखा है कि "हमारे और बौद्धों के बीच इतनी समानताएँ हैं— पोप के जैसा, दण्ड, टोपी, ढीला चोगा और सेली जिनको बड़े लामा यात्रा करते या विदा होते समय, अथवा मन्दिर के बाहर किसी

---

* बौद्ध मन्दिरों में जहाँ बुद्धदेव की वा अन्य किसी महात्मा की अस्थि वा अन्य कोई चिन्ह स्थापित किया जाता है उसको 'दागोपा' वा 'दागोबा' कहते हैं। यह शब्द संस्कृत धातु गर्भ से बना है।

धार्मिककृत्य में पहनते हैं, प्रार्थना करते समय भजन गाने वालों का दो पंक्तियों में खड़ा होना; भजन-गान, भूत निकालने की झाड़ फूंक, पाँच शृंखलाओं में लटके हुये दीपक जो स्वयं बन्द हो जाते और स्वयम् खुल जाते हैं, लामाओं का अपने अनुयायियों के सिर पर सीधा हाथ रख कर उन्हें आशीर्वाद देना; सिर पर लपेटने का फूलों का हार, साधुओं का विवाह न करना, व्रत के दिनों में सांसारिक कार्यों से उपरामता, सन्त-सेवा, उपवास, जलूस मन्त्र जाप, पवित्र जल।" मिस्टर आर्थर लिली (Mr. Arthur Lilie) जिनकी पुस्तक से दत्त महाशय ने उपर्युक्त वाक्य उद्धृत किये हैं—लिखते हैं कि "योग्य पादरी अब्वे ने समानताओं की सूची को किसी प्रकार समाप्त नहीं किया है किन्तु उसमें इन बातों को भी समावेषित कर सकते थे—अपराध स्वीकार करना, सिर मुण्डित करना, चिन्ह वा प्रतीक—पूजा, पूजा स्थानों वा समाधि स्थानों के सामने फूल, बत्ती और प्रतिमाओं का उपयोग; क्रूस वा स्वस्तिक का चिन्ह, अद्वैत में त्रैत विश्वास, देवी की पूजा, धार्मिक ग्रन्थों का ऐसी भाषा में उपयोग जिसे पूजा करने वालों की बहुत संख्या न समझ सके; बुद्ध तथा अन्य सन्तों की मूर्त्तियों पर मुकुट और मुख के चारों ओर मंडल, देव दूतों के पंख, तप, पाप दण्ड, मोर छल, पोप विशेष आदि अनेक दर्जे के पादरी, ईसाई गिरजों की विविध प्रकार की रचना सम्बन्धी समानताएँ।" इस सूची में मिस्टर बालफूर साहब Mr Balfour अपनी पुस्तक Cyclopedia of India में इतनी बातें और बढ़ाते हैं—ताबीज, औषध, चमकते हुये लेख। और मिस्टर टामसन साहब Thomson अपने Illustrator of China, Vol II, p. 18 में इन बातों को और जोड़ते हैं—बपतिस्मा, त्यौहार और मृतकों की आत्मा के लिये पिण्ड दान।*

* Buddhism and Christindom, p. 202, quoted in Ancient India, Vol. II, p. 335.

बपतिस्मा जो ऊपर की सूची में आचुका है, बौद्ध एवं ईसाई दोनों धर्मों में समान है। वस्तुतः यह पहले बौद्धों ही का 'अभिषेक' नामक संस्कार था और ऐसा प्रतीत होता हैं कि 'बपतिस्मा देनेवाले' यूहन्न ने पैलस्टाइन के बौद्ध या ऐसैनेस लोगों से इसको ग्रहण किया था। जब हजरत ईसा का 'बपतिस्मा' देने वाले, यूहन्ना से संग हुआ तो उन्होंने उस कृत्य को उनसे ग्रहण कर लिया और तभी से वह ईसाईधर्म का प्रधान संस्कार बन गया। दोक्षा (बपतिस्मा) लेते समय जिस भाँति एक ईसाई को पिता, पुत्र और पवित्रात्मा पर विश्वास लाना होता है, उसी प्रकार अभिषेक समय बौद्ध को 'बुद्ध', धर्म और संघ' इन तोन को स्वोकार करना होता है।

दत्त महाशय लिखते हैं कि इनकी समानता इतनी दृढ़ है कि ईसाईधर्म के प्रारम्भिक प्रचारकों ने जब तिब्बत और चीन की यात्रा की तो उन्होंने अपने इस विश्वास को लेख बद्ध कर दिया कि बौद्ध लोगों ने अपने धार्मिक संस्कार और कृत्यों के ग्रहण करने में रोमन कैथोलिक गिरजों का अनुकरण किया है। हम अपनी अगली पुस्तक में यह सिद्ध करेंगे कि बौद्ध लोग ईसा के जन्म से पूर्व ही पर्वतों को फोड़कर अपने विशाल मन्दिरों का निर्माण कर चुके थे; पटना के निकट नालन्दा स्थान पर एक बहुत बड़ा बौद्ध भिक्षुकों का बिहार, धन सम्पन्न प्रचारक समूह और विद्वत्पूर्ण विश्वविद्यालय उस समय उपस्थित थे जब यूरोप में इस प्रकार का बातों का कहीं प्रादुर्भाव तक न हुआ था। बौद्धधर्म की भारत में अवनति होते हुए उसकी उच्च रीति, नीति और संस्थाओं का तिब्बत, चोन एवम् दूसरे देशों के निवासियो ने नालन्द तथा अन्य स्थानों से उस समय अनुकरण कर लिया था जब योरोप असभ्य जातियों के आक्रमणों से उभरने भी न पाया था। अपनी जागीरदारी सभ्यता वा धार्मिक व्यवस्था और रीति नीतियों को स्थिर भी न कर सका था। विद्वान् ग्रन्थकर्त्ता इतने कथन के पश्चात् इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि "जहाँ तक दोनों मतों के मध्य समानता

स्थिर होती है वहाँ तक सम्पूर्ण धर्म सम्बन्धी शासन और धार्मिक संस्थाओ की नक़ल पश्चिम ने पूर्व से की है न कि पूर्व ने पश्चिम से" ।*

महात्मा बुद्ध और हजरतईसा की जीवन सम्बन्धी घटनाओं में समानता

यह कुछ कम आश्चर्य की बात नहीं हैं कि जो विचित्र समानता हमने बौद्धधर्म और ईसाईमत के मध्य दिखाई है। वह इन दोनों धर्मों के प्रवर्त्तकों के जीवनचरित्रों में भी मिलती है। गौतमबुद्ध और ईसा-मसीह दोनों के जन्म, विलक्षण वा असाधारण रीति से होना कहा गया है। दोनों के जन्म समय अद्भुत शकुन हुए थे तथा एक नक्षत्र विशेष का उदय हुआ था। गौतमबुद्ध के जन्म से जिस नक्षत्र का सम्बन्ध था वह सुप्रसिद्ध 'पुष्य नक्षत्र' है।

गौतम की जीवनी में लिखा है कि जब वे उत्पन्न हुये तो उनके दर्शन करने को असित नामक एक ऋषि महाराज शुद्धोदन के समीप आये। ऐसे ही इंजील में लिखा है कि "राजा हैरड के समय में यहूदिया (देश) के बैथलेहम (नगर) में जब ईसा का जन्म हुआ तो यरुसलम के पूर्व से बुद्धिमान् पुरुष यह कहते हुये आये कि यहूदियों का जो राजा पैदा हुआ है वह कहाँ है? हमने उसका नक्षत्र पूर्व में देखा है अतएव हम उसकी पूजा के लिए आये हैं।" (मत्ती, अ० २ आ० १-२)

गौतम के "बुद्ध" होने के पूर्व मार (अर्थात् कामदेव) द्वारा प्रलोभित होने की गाथा उस कथा से बहुत समानता रखती है जिसमें हजरत ईसा को शैतान द्वारा फुसलाये जाने का वर्णन है**। गौतम और ईसा दोनों के बारह-बारह शिष्य वर्णन किये गये हैं। दोनों के हृदय में एक ही सा विश्वव्यापी और मङ्गलमय प्रेम था जिसके कारण दोनों ने जातपांत

* Ancient India Vol. 11, Pp 335-6

** देखो मत्ती की इंजील अ० ४ आ० १-११

के भेद भाव को छोड़कर मनुष्यमात्र को समान रूप से अपने-अपने मतानुसार सत्य का उपदेश किया। ये विचित्र समानतायें इस बात को सिद्ध करती हैं कि ईसाईमत की गाथा तथा वार्त्ताएँ भी धार्मिक शिक्षा और रीति रिवाजों के समान अधिकांश में बौद्धधर्म से ग्रहण की गई।

६—सारांश :

हमने यह सिद्ध किया है कि ईसा के जन्म काल से पूर्व पैलस्टाइन में बौद्धधर्म प्रचार पा चुका था दोक्षादाता, जोहन्ना John the Baptist द्वारा स्वयम् हजरत ईसा का भी उससे संसर्ग हुआ। हमने यह बात भी सिद्ध की है कि ईसाई और बौद्धधर्म के उपदेश, संस्कार, कृत्य, मन्दिर-निर्माण विधि आदि विषयों में ही नहीं प्रत्युत उनके संस्थापकों की जीवन सम्बन्धिनी घटनाओं तक में विचित्र सदृशता मौजूद है। क्या ये सब आकस्मिक समानताएँ हैं? मिस्टर राइस डेविड्स (Mr. Rhys davids) का कथन है कि "यदि ये आकस्मिक हैं तो इन घटनाओं का संघट्ट एक बहुत ही बड़ा चमत्कार Miracle है, वह वास्तव में १० सहस्र चमत्कारों के बराबर हैं।"—Hibbert Lactures- 188, p. 193, हमारे सामने जो घटनाएँ मौजूद हैं उनके होते हुये इस परिणाम पर न पहुँचना असम्भव है कि ईसाईमत बौद्धधर्म का ऋणी है। प्रो० मोक्षमूलर जैसे ईसाई ग्रन्थकार भी यह बात स्वीकार करने को वाध्य हुये हैं। जब यह सिद्ध करने के लिये प्रमाण-पर-प्रमाण दिये जाते हैं कि ईसाईमत की सच्चाइयां उससे पूर्ववर्त्ती धर्मों में मौजूद थीं तो प्रोफेसर साहब लिखते हैं कि "सब सच्चाइयां ईसाईमत से ही क्यों ली जायँ? ईसाईमत भी अन्य धर्मों से क्यों न ले?" * प्रोफेसर मोक्ष मूलर ने "Chips from a German Workshop" नामक अपनी पुस्तक में,—जिससे

* Gifford Lacturs, pp 10-11

हम पूर्व भी एक वाक्य उद्धृत कर आये हैं—एक स्थल पर स्वीकार किया है कि "संसार के प्रारम्भ से ऐसा कोई धर्म नहीं हुआ जो सर्वथा मौलिक वा नवीन कहा जा सके। यदि हम इसे एक बार स्पष्ट रूप से समझलें तो सन्त औगस्टाइन के नीचे लिखे शब्द जिन्होंने बहुत से मित्रों को चकित कर दिया, सर्वथा विस्पष्ट और बोधगम्य हो जाते हैं। जो अब ईसाई धर्म कहा जाता है वह प्राचीन लोगों में भी विद्यमान था और वह मनुष्य जाति के आरम्भ काल से हजरत ईसा के शरीर धारण करने तक बराबर रहा। ईसा के जन्म के समय से उस पूर्व प्रचलित सद्धर्म का नाम ईसाई मत पड़ा"। (August Rep. 1, 13) इस विचार से ईसा के वे शब्द भी जो उन्होंने कोपर नाम के सेनाधिपति से कहे और जिनसे यहूदी चकित हो गये थे, अपने वास्तविक अर्थ को ग्रहण कर लेते हैं। (वे शब्द ये हैं)—"पूर्व और पश्चिम से बहुत से मनुष्य आवेंगे और स्वर्ग साम्राज्य में अब्राहम, इसराईल व याकूब के साथ बैठेंगे।

यह स्वीकृति स्पष्ट है और सिद्ध करती है कि पाश्चात्य लोग पूर्व के लोगों के उपकारों को क्रमशः कृतज्ञता पूर्वक मानते जाते हैं। श्रीयुत रमेशचन्द्रदत्त कहते हैं कि बनसेन (Bunsen) सीडिल (Seydil) और लिली (Lillie) जैसे कुछ ग्रन्थकार तो ऐसा मानते हैं कि ईसाई मत सीधा बौद्धधर्म से निकला है, परन्तु जैसा कि विद्वान् ग्रन्थकार (श्रीयुत रमेशचन्द्रदत्त) का विचार है—यह सम्मति सत्य की सीमा से बढ़ जाती है। ईसाईमत के ज्ञान-काण्ड सम्बन्धी सिद्धान्तों का बौद्धधर्म से बहुत कम सम्बन्ध है और उनका निकास यहूदीमत से है। परन्तु इस बात का खण्डन नहीं हो सकता कि ईसाईधर्म के वे उच्च सदाचारिक सिद्धान्त जिनके कारण वह यहूदीमत से उत्कृष्ट समझा जाता है, बौद्धधर्म से ग्रहण किये गये हैं। अथवा दत्त महाशय के शब्दों में यों कह सकते हैं कि "प्राचीन धर्मों पर ईसाईमत को सदाचारिक

सिद्धान्त सम्बन्धी उत्कृष्टता निस्सन्देह एक मात्र बौद्धधर्म पर अवलम्बित है जिसकी शिक्षा ईसा के जन्म काल के समय ऐसैनेस लोग पैलस्टाइन में दे रहे थे* ।"

हम इस अध्याय को जर्मनी देश के प्रसिद्ध तत्त्वज्ञ शूपनहार Sehoupenhaur के विचार प्रकट करके समाप्त करते हैं—

"जैसे कोई बेल सहारे के लिये किसी अनगढ़ या खुरदरे स्तम्भ पर चढ़ती है और हर जगह उसके तिर्छे व टेढ़े रूप के अनुकूल चलती है परन्तु साथ ही उनको जीवन और सुन्दरता से ढक देती है, जिससे वह आँखों को प्यारा लगने लगता है, उसी प्रकार ईसाईधर्म जो भारतवर्ष के विज्ञान से निकला, यहूदी मतरूपी विदेशी वृक्ष पर लगाया गया पुराने वृक्ष का असली रूप कुछ अंश तक बना रहा, परन्तु उसमें बहुत कुछ परिवर्तन होकर वह जीवन और सत्य से हरा-भरा हो गया। वह देखने में वही वृक्ष प्रतीत होता है, परन्तु वास्तव में उसका स्वरूप दूसरा है" ।**

ooo

* Ancient India, Vol, 11, p. 340

** देखो Sehoupenhaur "Religion and other Easays" p. 116

तृतीय अध्याय

—:o:—

बौद्धधर्म का आधार वैदिकधर्म है

१—महात्मा बुद्ध की शिक्षा का उद्देश्य किसी नवीन धर्म की स्थापना करना नहीं था।

—:o:—

पिछले अध्याय में हमने ईसाईमत के निकास का पता लगाया है। हमने यह बात सिद्ध की है कि उसके धार्मिक सिद्धान्त यहूदीमत पर और सदाचारिक उपदेश बौद्धधर्म पर निर्भर हैं। अन्त के दो अध्यायों में इस बात का उल्लेख किया जायगा कि जरदुश्ती मत के द्वारा यहूदीधर्म की उत्पत्ति वेद से है। इस अध्याय में ये बात सिद्ध की जायगी कि बौद्धधर्म या सदाचार सम्बन्धी उन उपदेशों का संग्रह—जिनका महात्मा बुद्ध ने प्रचार किया और जो ईसाईमत के अभ्युत्थान में बहुत कुछ सहायक हुये—सीधा वेदों से निकला है। यह बात कदाचित उन वेदानुयायियों को आश्चर्य का कारण होगी जो बौद्धधर्म को वैदिकधर्म का विरोधी मानते हैं। यह निश्चित है कि बुद्धदेव ने कभी नवीनधर्म की स्थापना का विचार तक नहीं किया। श्रीयुत रमेशचन्द्रदत्त, जो महात्मा बुद्ध की प्रशंसा करने में किसी से कम नहीं हैं, स्वीकार करते हैं कि बुद्ध भगवान ने कोई नवीन आविष्कार या नई ज्ञानोपलब्धि नहीं की थी*। वे फिर लिखते हैं कि "यह कल्पना करना एक ऐतिहासिक भूल होगी कि बुद्ध भगवान ने जान बूझकर किसी धर्म विशेष का

* Ancient India Vol. 11 p, 206.

प्रवर्त्तक या आचार्य्य बनना चाहा। इसके विरुद्ध उनका तो अन्त समय तक यह विश्वास रहा कि वे उस प्राचीन पवित्र धर्म के सुन्दर स्वरूप का प्रकाश कर रहे हैं जो हिन्दू ब्राह्मण, श्रमण और अन्य लोगों में प्रचलित था, परन्तु पीछे से बिगड़ गया था। यह बात यथार्थ है कि हिन्दूधर्म में ऐसे परिव्राजक, साधु-संन्यासी उपस्थित थे जो संसार को त्याग कर और वेदोक्त यज्ञादि न करते हुये केवल ध्यान में अपना समय व्यतीत करते थे। हिन्दूधर्मशास्त्रों में ऐसे साधुओं को 'भिक्षु' संज्ञा थी और साधारणतया उन्हें 'श्रमण' कहते थे। उस काल की अनेक श्रमणशाखाओं में से गौतमबुद्ध ने केवल एक श्रमणशाखा की स्थापना की थी, जो औरों से पहचान के लिये "शाक्यपुत्रीय श्रमण" के नाम से पुकारी जाती थी। बुद्ध ने उनको संसारत्याग, विशुद्धजीवन, पवित्र धार्मिक विचार आदि उन्हीं बातों की शिक्षा दी जिनका उस समय के समस्त श्रमण लोग उपदेश और अनुष्ठान करते थे ‡।"

२—बौद्धधर्म के पृथक् धर्म बन जाने का कारण :

अब यह प्रश्न हो सकता है कि महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं ने नवीन अथवा पृथक् धर्म का रूप क्यों धारण कर लिया? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें उस समय के वैदिकधर्म की अवस्था जानने की आवश्यकता है जब बुद्ध भगवान विद्यमान थे और अपने सिद्धान्तों का प्रचार कर रहे थे।

बुद्ध के प्रादुर्भाव से कुछ पूर्व वैदिकधर्म के इतिहास में घोर अन्धकार का समय था। वेद और उपनिषदों का पवित्र और प्रशस्तधर्म अवनत होकर निरर्थक कृत्य और हिंसापूर्ण "यज्ञादि" का स्वरूप ग्रहण कर चुका था। वैदिक वर्णव्यवस्था (जो आरम्भ में गुण कर्मानुसार थी) विगड़ कर वंश परम्परागत जातिभेद में परिवर्त्तित हो गई थी। इसका यह परिणाम हुआ कि ब्राह्मण लोगों ने केवल 'जन्म से' अपने को बड़ा

‡ Ancient India Vol. 11, pp. 181-182.

मान कर वेदाध्ययन तथा उन सद्गुणों को त्याग दिया जिनके कारण उनके पूर्वजों को समुचित प्रतिष्ठा की जाती थो। यह सदाचारिक और धार्मिक अधःपतन केवल ब्राह्मणों तक ही परिमित न रह सका, संन्यासी लोग भी धार्मिक ज्ञान, आन्तरिक पवित्रता, मधुर शीलता आदि बातें छोड़कर तपस्या का केवल बाहरी आडम्बर दिखलाने को रखते थे। साधारण लोग भी वैसे सीधे, सच्चे, पवित्र और सद्गुण सम्पन्न न रहे जैसे कि वैदिक काल में थे। वे लकीर के फकीर और विलासप्रियता के चेले बन गये। प्राचीन आर्यों के सात्विक भोजन का स्थान आमिषाहार ने छीन लिया। उसे शास्त्रोक्त सिद्ध करने के अभिप्राय से यज्ञों में पशुओं का बध किया जाता था और उसके मांस से आहुति दो जातो थी।

बुद्ध के प्रादुर्भाव के समय वैदिकधर्म या यों कहिये कि आर्यों की सामाजिक स्थिति इस प्रकार की हो गई थी। बुद्धदेव के हृदय पर पशु बलिदान और जाति भेद इन दो बुराइयों का बड़ा प्रभाव पड़ा। उनका कोमल और प्रेम पूर्ण हृदय धर्म के नाम पर इतने निरपराध पशुओं के रक्त प्रवाह को न सह सका। उनका पवित्र आत्मा इस निकृष्ट और अन्याय पूर्ण जाति भेद के विरुद्ध संग्राम करने को उद्यत हो गया। और इसमें उन्होंने मनुष्यमात्र के लिये सच्चा प्रेम और उनके सुधार के लिये विशेष उत्साह दिखलाया। वस्तुतः यह बुराई इतनी अधिक हो गई थी कि बुद्धभगवान् के पूर्ववर्त्ती अनेक ग्रन्थकारों ने भी उसे बुरा कहा था। सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक सब बातों में इस जातिभेद की व्यापकता हो गई थी। यहाँ तक कि देश के कानून पर भी उसका प्रभाव पड़ चुका था। उस समय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के लिये पृथक्-पृथक् कानून बन गये थे। ब्राह्मणों के ऊपर अनुचित दया और शूद्रों के साथ अनुचित कठोरता का व्यवहार किया जाता था, ये बातें बहुत दिनों तक नहीं ठहर सकती थीं। शूद्र कितने ही धार्मिक और गुणवान् क्यों न हों परन्तु न तो उन्हें धार्मिक शिक्षा देने का ही कहीं प्रबन्ध था और न उनकी समाज में ही कुछ प्रतिष्ठा थी। वे लोग

इन बेड़ियों को तो तोड़ फेंकने के अवसर को ताक में बैठे थे। वे उस निर्दय प्रथा के पंजे में फँसे हुये थे जिसने उन्हें उच्च सोसाइटी के संसर्ग से बुरी तरह वहिष्कृत कर रक्खा था, उनकी लालसा थी कि इस स्थिति में परिवर्त्तन हो। द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों में भी ऐसे अनेक उच्चाशय उदार प्रकृति पुरुष थे जो उनकी इस लालसा से सहानुभूति रखते थे। अतएव 'क्रान्ति' का समय आ गया था और इस विचार के लिये असाधारण दूरदर्शिता की आवश्यकता न थी कि समय आवेगा जब लोग इस हानिकर प्रथा के विरुद्ध युद्ध मचा कर अपनी बेड़ियों को तोड़ डालेंगे। वह अवसर आ गया। राज कुलोत्पन्न एक क्षत्रिय ने घोषणा की, कि समाज में मनुष्य की स्थिति जन्म से नहीं प्रत्युत गुणों से होती है। असंख्यमनुष्य उसके चारों ओर एकत्रित हो गये। ऐसी दशा में हम सहज ही में इस बात का अनुमान कर सकते हैं कि अत्याचार के भार से दबे हुये शूद्र लोग किस उत्साह से उनकी बातें सुनते होंगें। बहुत से द्विजन्मे आर्य लोग भी उनके पवित्र धार्मिक उद्देश्य से सहमत हो गये और बौद्धधर्म देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैल गया।

महात्मा बुद्ध की सफलता तथा विना इच्छा के भी उनके एक नवीन धर्म का प्रवर्त्तक बन जाने का ठीक कारण ऊपर कहा गया है। समाज संशोधक अन्य महापुरुषों के समान बुद्ध भी बहुत अंश तक अपने समय के सुधारक थे। अविवेक पूर्ण और निर्दय पशुबध तथा कृत्रिम और अपवित्र जातिभेद का साहस पूर्वक खंडन करने में बुद्धदेव ने ऐसे तार को खींचा जिससे उनके समकालीनों के हृदय उनकी ओर आकर्षित हो गये। यदि उनका जन्म ऐसे समय में हुआ होता जब वे बुराइयाँ न होतीं तो उनका बहुत ही कम प्रभाव पड़ता और सच तो यह है कि उन्हें अपने सुधार सम्बन्धी कामों के लिये अवसर ही न मिलता। परन्तु जिन दिनों उनका जन्म हुआ उन दिनों उन्होंने सहज में बहुसंख्य लोगों

को अपनी ओर खींच लिया, और इस प्रकार धीरे-धीरे वे एक नवीन धर्म के संस्थापक समझे जाने लगे।

४—बौद्धधर्म का विनाशक अथवा निषेधात्मक अंग।

महात्मा बुद्ध की शिक्षा के निषेधात्मक भाग के सम्बन्ध में केवल इतना ही कहने की आवश्यकता है। उन्होंने विशेषतः दो अत्याचारों पर प्रबल रूप से आक्रमण किया। दत्त महाशय लिखते हैं कि—"गोतम अविचार पूर्वक खण्डन करने वाले न थे और न सब प्राचीन प्रचलित प्रथाओं के अचेत और कट्टर विरोधी ही थे। उन्होंने उस समय तक किसी प्रथा या विश्वास के विरुद्ध हाथ नहीं उठाया जब तक कि उसको अनुपयोगी अथवा प्राचीन धर्म में पीछे का मिलाव न समझ लिया हो। उन्होंने जाति पाँति का विरोध इस कारण किया कि वे उसको हानिकारक और प्राचीन ब्राह्मण धर्म के पश्चात् का बिगड़ा हुआ रूपान्तर समझते थे। उन्होंने वैदिक [यज्ञादि] कृत्यों की निरर्थकता इसलिये प्रकट की कि उस समय उनकी विधि बहुत ही मूर्खता पूर्ण निरर्थक और निकृष्ट रूप में थी और उनमें अनावश्यक निर्दयता पूवक पशुओं के प्राणहरण किये जाते थे *।

यह प्रश्न हो सकता है कि क्या महात्मा बुद्ध ईश्वर का अस्तित्व अथवा वेदों को ईश्वरीय ज्ञान या प्रामाणिक पुस्तक मानते थे। ईश्वर विश्वास के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि वे नास्तिक नहीं थे, शायद अज्ञेयवादी Agnostic थे। ईश्वर या ईश्वरीय ज्ञान का न मानना बौद्धधर्म का कोई आवश्यक सिद्धान्त नहीं है। ऐसा ज्ञात होता है कि उन्होंने आत्मसुधार और आत्म संयम आदि के उपदेश करने पर ही सन्तोष किया और सृष्टि सम्बन्धी ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर सोचने की चेष्टा ही नहीं की कि "क्या यह संसार अनादि और अनन्त है ? यदि नहीं तो उसकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई" ? कदाचित् उनका

* (Ancient India Vol. II.)

यह विचार हो कि इन प्रश्नों के उत्तर कदापि सन्तोष जनक नहीं मिल सकते। उनके शिष्यों ने इस विषय में जानने के लिये अनेक बार उनसे आग्रह पूर्वक ‡ जिज्ञासा की परन्तु उन्होंने कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया।

निश्चय ही बौद्ध ग्रन्थों में ऐसे अनेक स्थल * हैं जिनसे प्रकट होता है कि उन्होंने अपने शिष्यों को इस प्रकार की जिज्ञासा और शास्त्रार्थ करने के लिये उत्साह ही नहीं दिया।

सब्बासबसुत्त में ऐसे विषयों पर विवाद करने का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

"वह मूर्खता से ऐसे विचार करता है मैं भूतकालों में था या नहीं? मैं भूतकाल में क्या था? मैं भविष्यतकाल में रहूँगा या नहीं? भविष्यतकाल में मेरा क्या स्वरूप होगा? या वर्त्तमान के लिये भी अपने मन में ऐसे विचार करता है मेरा अस्तित्त्व वास्तव में है या नहीं? मैं क्या कहूँ? यदि मेरा अस्तित्त्व है तो कहाँ से आया और कहाँ जायगा?"

उनके विचार से भलाई करना ही धर्म था, या यों कहिये कि उन्होंने धर्म के कर्म-काण्ड सम्बन्धी भाग की ओर ही दृष्टि रक्खी, और ज्ञान-काण्ड तथा आध्यात्मिक भाग की ओर से सर्वथा उदासीन रहे।

---

‡ उदाहरणार्थः—एक समय मलयूक्य पुत्त नामक किसी व्यक्ति ने महात्मा गौतम से यह प्रश्न किया, परन्तु उन्होंने उत्तर दिया कि "क्या मैंने यह कहा है कि हे मलयूक्य पुत्त तुम आओ और मेरे शिष्य बन जाओ, मैं तुमको इस बात की शिक्षा दूंगा कि संसार नित्य है या नहीं।" मलयूक्य पुत्त ने कहा "महाराज आपने ऐसा नहीं कहा।" बुद्धजी बोले कि 'तो फिर इस प्रश्न को पूछने में आग्रह मत करो।' (देखो मज्झम निकाय कुल मलूक्य वाद Quoted in ancient India, Vol. 11, p. 239.

* देखो सुत्त निपात, पशु सुत्त, और सुत्त निपात, महा मोह सुत्त।

प्रारम्भिक बौद्धधर्म में यह बड़ी भारी निर्बलता थी। इस प्रकार के प्रश्न उठते ही हैं और उनके उत्तर किसी न किसी रूप में देने ही चाहियें। जो धर्म इन बातों को टालना चाहता वा उनकी उपेक्षा करता है वह मनुष्य के आत्मा की भूख को नहीं बुझा सकता। परन्तु पिछले समय के बौद्धों ने इस त्रुटि की यह कह कर पूर्त्ति कर दी कि संसार जैसा कि अब है वैसा ही अनादि काल से चला आता है, अतएव इसके लिये किसी रचने वाले की आवश्यकता नहीं। इस प्रकार उन्होंने अपने धर्म को विशुद्ध नास्तिक बना दिया। परन्तु महात्मा बुद्ध का यह मन्तव्य न था, वे न तो संसार को नित्य ही कहते थे और न अनित्य। यद्यपि बौद्धधर्म आरम्भ में अज्ञेयवादी था परन्तु अन्य अज्ञेयवादी मतों के सदृश वह अन्त में नास्तिकमत हो गया। जैसा कि हम पूर्व कह चुके हैं कि उनकी सदाचारिक शिक्षा कैसी ही उत्तम क्यों न हो परन्तु धर्म की दृष्टि से वह एक बहुत बड़ा दूषण था। इस दोष के कारण ही अन्ततः भारतवर्ष में उसके भाग्य का अन्त हो गया। बौद्धधर्म प्रारम्भ में अत्याचार पूर्ण जाति-भेद, और निर्दयपशुबध के विपरीत, पवित्र के विपरीत पवित्र विरोध करने तथा सदाचार और भलाई का सर्वसाधारण को उपदेश देने के कारण ही इस देश में फैल गया था। परन्तु नास्तिक मत बन जाने के कारण वह इस देश से बहिर्गत कर दिया गया।

ईश्वर की सत्ता और वेदों के ईश्वरकृत होने के विषय पर महात्मा बुद्ध के विचार तेविज्ज सुत्त से जाने जाते हैं, जिसके सम्बन्ध में महाशय राईसडेविड्स् Rhys Davids अपने अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका में इस प्रकार लिखते हैं—"इस सुत्त का नाम तेविज्ज सुत्त केवल इसलिये हैं कि इसमें गौतम का वर्णन तेविज्ज उपनाम से किया गया है। तेविज्ज का अर्थ है वेदों का ज्ञाता, और यह पाली शब्द त्रैविद्य या त्रयीविज्ञ शब्द का अपभ्रंश है।

इस सुत्त का आरम्भ दो ब्राह्मण युवक वसिष्ठ और भरद्वाज के विवाद से होता है। विषय यह है कि ब्रह्म प्राप्ति का सच्चा मार्ग क्या है। वे दोनों गौतम बुद्ध के पास जाते हैं, जो ये बतलाते हैं कि यदि कोई ब्राह्मण वेदों को अच्छी तरह पढ़ा हो परन्तु सदाचारी न हो तो वह ब्रह्म को प्राप्त नहीं कर सकता। इस सुत्त के कुछ वचन नीचे दिये जाते हैं—

२५—'हे वसिष्ठ! इस प्रकार के ब्राह्मण जो तीनों वेदों को पढ़कर भी उन गुणों का तिरस्कार करते हैं जिनसे मनुष्य ब्राह्मण बनता है और उन गुणों को धारण करते हैं जिससे मनुष्य ब्राह्मण बनता है, वे ऐसा पाठ करते हैं—हम इन्द्र को पुकारते हैं, सोम को पुकारते हैं, वरुण को पुकारते हैं, ईशान को पुकारते हैं, प्रजापति को पुकारते हैं, ब्रह्मा को पुकारते हैं, महिद्धि को पुकारते हैं, यम को पुकारते हैं। वसिष्ठ ये कभी सम्भव नहीं है कि वे ब्राह्मण जो वेद पढ़े हुये हैं परन्तु उन गुणों का तिरस्कार करते हैं जिनसे मनुष्य वास्तव में ब्राह्मण बनता है और उन गुणों को धारण करते हैं जिनसे मनुष्य अब्राह्मण बनता है वह केवल स्तुति और प्रार्थना के कारण मृत्यु के पश्चात् जब शरीर छूट जाता है ब्रह्म को प्राप्त हो सके।

२७—"हे वसिष्ठ! इसी प्रकार पाँच पदार्थ काम की ओर ले जाने वाले हैं जो आर्य्य संयम में बन्धन कहलाते हैं।

प्रश्न—वे पाँच पदार्थ क्या हैं?

उत्तर—रूप जो आँख का प्रिय, रोचक और आनन्ददायक होते हैं परन्तु काम और मद को उत्पन्न करते हैं, 'इसी प्रकार के शब्द जो कान से सुने जाते हैं, इसी प्रकार की गन्ध जिनको नासिका ग्रहण करती है, इसी प्रकार का रस जिनको जिह्वा ग्रहण करती है; इसी प्रकार के अन्य पदार्थ जिनका शरीर को स्पर्श से अनुभव होता है। इन पाँचों पदार्थों से काम की उत्पत्ति होती है और ये आर्य्य संयम में बन्धन

कहलाते हैं। और हे वसिष्ठ वे ब्राह्मण जो वेद पढ़े हैं परन्तु इन पाँचों पदार्थों के दास हैं, जिनसे काम उत्पन्न होता है ये इनमें उन्मत्त हो जाते हैं, पतित हो जाते हैं और यह नहीं समझते कि ये कैसे भयंकर पदार्थ हैं और उनमें आनन्द मानते हैं।

३८—"हे वसिष्ठ! यह सम्भव नहीं कि वे ब्राह्मण जो वेद पढ़े हैं परन्तु उन गुणों का तिरस्कार करते हैं जिनसे मनुष्य वास्तव में ब्राह्मण बनता है और उन गुणों को धारण करते हैं जिनसे मनुष्य वास्तव में अब्राह्मण बनता है और इन पाँच पदार्थों के दास हैं जिनसे काम उत्पन्न होता है, उनमें उन्मत्त होते हैं, पतित होते हैं। और उनके भयंकर स्वरूप को न समझते हुये उनमें आनन्द मानते हैं, ये ब्राह्मण मरने के पीछे शरीर छूटने पर ब्रह्म को प्राप्त कर सके, यह सम्भव नहीं।"

इसके आगे महात्मा बुद्ध वसिष्ठ से ब्रह्म के गुणों के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न करके ऊपर कहे हुये नामधारी ब्राह्मणों के गुणों से अन्तर दिखलाते हैं, और इस प्रकार उपदेश करते हैं—

३७—"अच्छा, वसिष्ठ! तुम यह मानते हो कि ऐसे ब्राह्मण जिनके हृदय क्रोध और द्वेष से रहित और संयम स्वरूप और पाप रहित है तो फिर क्या ऐसे ब्राह्मणों में और ब्रह्म में कोई समानता वा स्वरूपता हो सकती है?"

हे गौतम, नहीं हो सकती है।

३८—"अच्छा वसिष्ठ! यह सम्भव नहीं कि ये ब्राह्मण जो वेद पढ़े होने पर भी अपने हृदय में क्रोध और द्वेष को धारण किये हैं, जो पापी और असंयमी हैं मरने के पीछे शरीर छोड़ने पर उस ब्रह्म को प्राप्त कर सके जो क्रोध और द्वेष रहित पाप रहित और संयम स्वरूप है।"*

इसके पश्चात् एक सच्चे भिक्षु के शुद्ध जीवन का वर्णन करके महात्मा बुद्ध इस प्रकार उपदेश करते हैं—

* देखो "बौद्ध सुत्त" Buddhist Suttas (Sacred Books of the East series) पृ० १८०-१८५

८—अच्छा वसिष्ठ तुम मानते हो कि यह भिक्खु क्रोध और द्वेष से रहित हैं शुद्ध चित्त वाला और संयमी हैं, और ब्रह्म भी क्रोध और द्वेष से रहित, शुद्ध स्वरूप और संयम स्वरूप है तो हे वसिष्ठ, यह हर प्रकार सम्भव है कि वह भिक्षु जो क्रोध और द्वेष से रहित है शुद्ध चित्तवाला और संयमी है मरने के पीछे शरीर छोड़ने पर ब्रह्म को प्राप्त कर सके जिसका वैसा ही स्वरूप है।"+

यह स्पष्ट है कि इस सुत्त में महात्मा बुद्ध ने वेदों की निन्दा नहीं की किन्तु अपने समय के उन ब्राह्मणों की निन्दा की है जो वेदों के जानने का अभिमान करते हुये ब्राह्मणों के गुणों से रहित थे। महाशय राईसडेबिड ने उनकी तुलना बाइबिल के फारसियों और लेखकों Phorisees and Scribes से की है।

यदि महात्मा बुद्ध ईश्वर के विषय में संन्दिग्ध थे तो ईश्वरीय ज्ञान पर भी विश्वास न कर सकते थे। वेदों से उनका विरोध नहीं था किन्तु उदासीनता थी। इस उदासीनता का कुछ तो यह कारण था कि वे वेदों से अनभिज्ञ थे और कुछ उस समय का यह विश्वास कि वेद पशुबध और जातिभेद की आज्ञा देते हैं। यदि वे वेद वेत्ता होते, यदि उन्होंने प्रेमभाव और समानता के उपदेशों का वेदों के विशुद्धार्थों की प्रामाणिकता के आधार पर प्रचार किया होता तो वे नये धर्म के संचालक न होकर हमारे ही समय के स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे वैदिक सुधारक बन जाते। यदि उस समय के लोग कुछ कम संकुचित विचारों के होते, वेद की वास्तविक शिक्षा का अधिक ज्ञान रखते तथा दूसरे को ग्रहण करने की अपेक्षा अपने ही धर्म का संशोधन करते, तो प्राचीन धर्म के होते हुए देश में नवीनमत स्थापित होने की दुर्घटना न हो पाती और इस प्रकार भारतवर्ष में फूट न फैलती जिसके कारण चिरकाल तक दोनों मतों के अनुयायियों के मध्य भीषण युद्ध की अग्नि जलती रही।

+ देखो "बौद्ध सुत्त" पृ० २०३

बौद्ध धर्म का विधायक अथवा विध्यात्मक अंग

महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं के विधायक भाग के सम्बन्ध में हमें अधिक कुछ नहो कहना। उन्होंने वैदिक धर्म विहित बातों का उपदेश किया अर्थात् आत्मसुधार, आत्म संयम, मनुष्य जाति और प्राणी मात्र के प्रति मैत्रो भाव, शुभ कर्म और आन्तरिक पवित्रता का प्रचार किया। बुद्ध ने जिन चार प्रधान बातों का उपदेश दिया वे निम्नलिखित हैं :—

१—जोवन दुःखमय है, २—दुःख का कारण इच्छा वा तृष्णा है। ३—तृष्णा के नाश से दुःख को निवृत्ति होती है। ४—तृष्णा के नाश के नीचे लिखे आठ प्रकार के मार्ग हैं :—

१ सत्य विश्वास
२ सत्य कामना
३ सत्य भाषण
४ सत्याचरण
५ सत्य जोविका साधन
६ सदुद्योग
७ सत्य संकल्प
और
८ सत्य विचार

(देखो महावाग्य १। ६ Quoted in Ancient India Vol. II P, 231.) हमें यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उपर्युक्त बातों का वैदिक धर्म और दर्शन-शास्त्र सम्बन्धी विविध पुस्तकों में अनेक बार वर्णन आया है। उदाहरणार्थ हम न्याय दर्शन का दूसरा सूत्र उद्धृत करते हैं :—

दुःख जन्म प्रवृत्ति दोष मिथ्या ज्ञाननामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः। न्या; १।२

दुःख जन्म, प्रवृत्ति, दोष और मिथ्या ज्ञान इनमें से एक के नाश से उससे पूर्व वर्णित नष्ट हो जाता है और दुःख का निवारण ही मुक्ति है।

इसका भावार्थ यह है कि मिथ्या ज्ञान से दोष वा बुरी इच्छाएँ होती हैं उनसे जन्म की प्रवृत्ति होती है और जन्म ग्रहण करना पड़ता है और यह जन्म ही दुःखों की जड़ है। इसी क्रम से एक की निवृत्ति होने से दूसरे की निवृत्ति होती चली जाती है। अर्थात् जन्म व जीवन के साथ दुःख का सम्बन्ध अवश्य है (बुद्ध का प्रथम उपदेश) दु.ख और जन्म का कारण जीवन की इच्छा या तृष्णा है (दूसरा उपदेश) इच्छा और जन्म प्रवृत्ति नष्ट होने पर दुःखों की निवृत्ति हो जाती है (तीसरा उपदेश) इच्छा और जन्म प्रवृत्ति का नाश सत्य का ज्ञान द्वारा होता है (चौथे उपदेश का भाग)

निम्नलिखित पाँच आज्ञाओं का पालन करना समस्त बौद्धों का, चाहें भिक्षु हों वा गृहस्थ, परम कर्त्तव्य है।

१—किसी प्राणी की हिंसा न करे।

२—उस वस्तु को ग्रहण न करे जो उसे नहीं दी गयी।

३—मिथ्या भाषण न करे।

४—मादक द्रव्यों का सेवन न करे।

५—व्यभिचार न करे।

दत्त महाशय लिखते हैं कि 'ये निस्सन्देह वसिष्ठ के पंच महापातकों से सूझी है।*

---

* गुरु वसिष्ठजी के बताए पाँच महापातक ये हैं:—"गुरु-पत्नी से व्यभिचार, मादक द्रव्यों का पान, हत्या करना, चोरी करना, पतित लोगों से आत्मिक या वैवाहिक सम्बन्ध रखना।"

(१।१९ से २१ तक Quoted in Ancient India Vol. II. p. 103.)

परन्तु हम इन पाँचों बातों का सम्बन्ध महर्षि पतञ्जलि रचित योगसूत्र के पाँच यमों से समझते हैं।

'अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्य्यापरिग्रहायमा :

योग अ० १। पा० २ सूत्र ३०॥

जीवों की हिंसा न करना, असत्य भाषण न करना, चोरी न करना, व्यभिचार न करना, विषय भोग अथवा इन्द्रिय लोलुपता में अधिक न फँसना ये पाँच यम हैं।

बौद्ध धर्म जिसका महात्मा बुद्ध ने प्रचार किया केवल सदाचरण का उपदेश हैं अन्य कुछ नहीं। बौद्ध धर्म के सदाचारिक उपदेशों का पता वैदिक धर्म की पुस्तकों से सहज ही में लगाया जा सकता है। दत्त महाशय लिखते हैं कि "बौद्ध धर्म ने यह पवित्र पैतृक सम्पत्ति प्राचीन हिन्दुओं से प्राप्त की और अपने पवित्र साहित्य में सुरक्षित कर ली। महात्मा गौतम द्वारा निर्धारित धर्मों में वे समस्त बातें पाई जाती हैं जो धर्म सूत्रों में सर्वोत्कृष्ट और सर्वोत्तम है। *

प्रोफेसर मोक्षमूलर महात्मा बुद्ध के सम्बन्ध में लिखते हैं—"ब्राह्मणों की ओर उनके विरोध की बहुत कुछ अत्युक्ति की गई है और अब हम इस बात को जान गए हैं कि गौतमबुद्ध के बहुत से उपदेश वास्तव में उपनिषदों के ही उपदेश थे।"‡

हमने यह सिद्ध किया कि महात्माबुद्ध ने किसी नवीन धर्म या नवीन ज्ञान का प्रचार नहीं किया। उन्होंने कुछेक उन दूषणों का खण्डन किया जो सत्य वैदिक धर्म के अंग नहीं थे पर जो पीछे से उसमें मिल गए थे। अन्य बातों में उन्होंने वैदिक धर्म के उपदेशों का प्रचार किया। अतएव बौद्ध धर्म जिससे हमारा अभिप्राय गौतम की उत्कृष्ट शिक्षा है, वैदिक धर्म पर अवलम्बित है।

---

* Ancient India Vol, II Page, 268.

‡ देखो मोक्षमूलर कृत Three Lectures on Vedanta Philosophy P. 113.

चतुर्थ अध्याय

यहूदी मत का आधार जरदुश्ती मत है

१—प्रारम्भिक।

—: ० :—

अब हम यहूदी मत की ओर आते हैं यद्यपि उसके अनुयायियों की संख्या सम्प्रति बहुत ही थोड़ी है तथापि उससे संसार के जो प्रधान धर्म अर्थात् ईसाई और मुसलमान मत निकले हैं। चाहे अब यहूदी मत थोड़े से तिरस्कृत लोगों का धर्म रह गया है परन्तु तो भी इससे यह न समझना चाहिये कि उसके समर्थकों की संख्या कम है। मुसलमान लोग स्वीकार करते हैं और स्वयम् कुरान में भी इस विषय का स्पष्ट उल्लेख है कि उनके धर्म की नींव प्रायः एक मात्र यहूदी मत पर रक्खी गयी है, यद्यपि मुसलमान लोग यहूदियों पर अपने ग्रन्थों में कुछ मिलावट करने का दोष रखते हैं, यद्यपि उनका यह विश्वास है कि उन्होंने मुहम्मद साहब के सम्बन्ध की कुछ भविष्यत् वाणियों को जो उनमें मौजूद थी, निकाल दिया। तथापि वे हजरत मूसा और पुरानी धर्म पुस्तक के अन्य ग्रन्थकारों को ईश्वर के भेजे हुये दूत (पैगम्बर) मानते हैं। इस बात की सिद्धि का उद्योग उन्हें सम्भवतः अरुचिकर होगा कि यहूदी पैगम्बरों ने अपना ईश्वरीय ज्ञान पारसियों से प्राप्त किया। इसी प्रकार ईसाई लोग भी जिनकी धार्मिक शिक्षा स्वयम् हजरत ईसा के कथनानुसार यहूदी मत पर अवलम्बित है यहूदी मत को ईश्वरीय ज्ञान सिद्ध करने की चिन्ता में ग्रस्त होंगे। वर्तमान काल में प्राचीन समय की बड़ी-बड़ी अन्वेषणाओंके लिये हमें जिनका विशेष रूप से कृतज्ञ होना चाहिये वे अधिकतर ईसाई लोग हैं। इसलिए यदि यहूदी मत की उत्पत्ति के

के विषय पर कुछ अधिक आलोचनात्मक अन्वेषण हमको न मिले तो आश्चर्य की बात नहीं है। बहुत कम ईसाई विद्वान् यहूदी मत को जरदुश्तियों का ऋणी ठहराने के लिये तय्यार हैं। हम उदाहरणार्थ प्रो० मोक्षमूलर साहब के उस लेख को दिखलाते हैं जो उन्होंने डाक्टर स्पीगल (Dr. Spiegle) की इस सम्मति के विषय में लिखा है कि बाइबिल में "उत्पत्ति की पुस्तक" के धार्मिक विचार अवस्ता से लिये गये। जहाँ तक हमें ज्ञात है डाक्टर स्पीगल की पुस्तक का अभी तक अङ्गरेजी अनुवाद नहीं हुआ। हमें इस पुस्तक के सम्बन्ध में जो जानकारी है वह प्रो० मोक्षमूलर की उस आलोचना से प्राप्त हुई है जो उनके Chips from a German Workshop नामक ग्रन्थ के प्रथम भाग में है। प्रो० मोक्षमूलर की सम्मति में डाक्टर स्पीगल ने अपने दावे को सिद्ध नहीं किया। प्रोफेसर साहब अपनी इस पुस्तक के प्रथम वाक्य में लिखते हैं—"क्या ही अच्छा होता यदि विद्वान् लोग थोड़ी कानूनी शिक्षा प्राप्त करने का लाभ उठाते अथवा कम से कम यही जान लेते कि सम्भव और सिद्ध बात में कितना अन्तर है।"। वे आगे चल कर लिखते हैं कि हमको यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि अवस्ता के सुयोग्य सम्पादक और अनुवादक डाक्टर स्पीगल ने अपनी अन्तिम पुस्तक Erandas land zwischen dim Indus and Tigris का एक अध्याय इस प्रश्न के अर्पण किया है। हमने उस Avesta die Genesis oderdie Begihomgen der Eranier zu den semiten. नामक अध्याय को बड़ी अभिरुचि के साथ पढ़ा और जब हम पुस्तक को समाप्त कर चुके तो हमारे मुख से वह वाक्य निकला जिसके साथ कि इस लेख को प्रारम्भ किया है।* प्रो० मोक्षमूलर अपने प्रतियोगी की विद्वत्ता अथवा योग्यता में किसी प्रकार का दोष नहीं निकाल सकते। वे कहते हैं कि "हमारा अभिप्राय प्रो० स्पीगल के सम्बन्ध में कोई अप्रतिष्ठा

---

* Chips from a German Workshop Vol. 1, pp. 146-147

सूचक शब्द कहना नहीं है, क्योंकि वे पूर्ण विद्वान् होने के अतिरिक्त उन दो या तीन पुरुषों में से एक हैं जिन्हें अवस्ता कण्ठस्थ है। वे सैमिटिक भाषा के भी अच्छे विद्वान् हैं। उन्हें 'प्राचीन धर्म पुस्तक' सम्बन्धी विविध पुस्तकों की भाषा, निबन्ध रचना और लेख पर स्वतन्त्र सम्मति देने के लिये हिब्रू भाषा की भी पर्य्याप्त योग्यता है।" परन्तु तो भी वे डाक्टर स्पीगल के दिये हुए प्रमाणों को यथेष्ट न मान कर विद्वान् डाक्टर को अपने परिणाम पर पहुंचने के लिये समुचित रूप से सावधान होने का उपदेश देते हैं। प्रो० मोक्षमूलर का लेख इस प्रकार है :—

"परन्तु ऐसे विषय में नितान्त आवश्यकता है कि नवीन साक्षी एड़ी से चोटी तक शस्त्रों से सुसज्जित रहे। अपने आप को किसी प्रकार के आक्रमणों का लक्ष्य न बनने दे, अपने वचनों को ठीक-ठीक तोल कर बोले और जिस स्थान पर पहुँचना है उसकी ओर सीधी रेखा में क्रमशः पग बढ़ावे। डाक्टर स्पीगल सरीखे लेखकों को समझ लेना चाहिये कि वे किसी दया की आशा नहीं कर सकते; प्रत्युत वे अपनी बहती हुई तोपों के विरोध में जो उन्होंने बाइबिल की समीक्षा के क्षुब्ध सागर में छोड़ दी हैं, भारी से भारी तोपखाने को आह्वान कर रहे हैं*।"

विद्वान् प्रोफेसर मोक्षमूलर की सब भाँति प्रतिष्ठा करते हुए भी हम यह अवश्य कहेंगे कि उनके अन्य लेखों में उच्चाशय पूर्ण उदारता, विचार विस्तीर्णता और अकृत्रिम सत्य कामना होते हुए भी इस स्थल पर उनके लेख में अपने धर्म की आलोचना न सहन कर सकने का गन्ध आ गया है।

———

* Chips from a German Workshop, Vol. 1. pp. 116-117.

२—सम्बन्ध का मार्ग

—: :o: :—

हमारी सम्मति में इस बात को सिद्ध करने के लिये कि यहूदी मत विशेषतः जरदुश्ती मत पर अवलम्बित हैं, यथेष्ट प्रमाण उपस्थित हैं। दोनों मतों के मध्य इतनी अधिक और विलक्षण समानताएँ मौजूद हैं जिनके कारण इस परिणाम पर पहुंचना आवश्यक हो जाता है कि एक के विचार दूसरे में पहुंचे। प्रोफेसर मोक्षमूलर भी इससे इन्कार नहीं करते। यदि करते, तो आश्चर्य की बात होती। परन्तु वे यह कहते हैं कि "इस प्रकार के विचारों की ओर दृष्टिपात करने से पूर्व उस मार्ग को दिखलाना आवश्यक हैं जिसके द्वारा उन समान विचारों का अवस्ता से 'पैदायश की किताब' में अथवा 'पैदायश की किताब' से अवस्ता में पहुंचना सम्भव हो सकता है *।"

ऐसा मार्ग सुलभता पूर्वक दिखलाया जा सकता है। डाक्टर स्पीगल ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि जरदुश्ती और इबराहीम Σ दोनों एक ही काल और एक ही स्थान में हुए। (बाइबिल के अनुसार ईसा से लगभग १९२० वर्ष पूर्व)। बाइबिल बतलाता है कि हजरत इबराहीम हैरन के निवासी थे, और जिन्दावस्ता से ज्ञात होता हैं कि जरदुश्त का जन्म 'आर्यानां बीज' Aryanam Veiga अर्थात् (आर्यों का बीज) नामक स्थान में हुआ। प्रो० मोक्षमूलर ही नहीं, प्रत्युत अनेक शब्द शास्त्र वेत्ताओं की भी सम्मति है कि "आर्य्यानां बीज' 'ऑक्सस और जैक्सरटीज नदियों के मध्य फारिस के पश्चिमीय भाग में होना चाहिये और उसका उक्त नाम पड़ने का कारण यह था कि वह आर्यों का निवास स्थान था जिससे आर्य्यावर्त्तीय और ईरानी दोनों आर्य आये। डाक्टर स्पीगल का विचार है कि फारसी ऐरन पुराने 'आर्यानां बीज'

* Chips from a German Workshop Vol. I. p.149.

Σ यहूदियों के सबसे पहले पैगम्बर जिनका वर्णन तौरेत में है इबराहीम Abraham थे।

नाम का केवल संक्षिप्त रूप है। प्रो० मोक्षमूलर इस अनुमान को सम्भवतः ठीक मानते हुये कहते हैं—"डाक्टर स्पीगल का कथन है कि ज़रदुश्त का जन्म ऐरन में हुआ। मध्य कालिक मुसलमान ग्रन्थकारों ने यह नाम उस स्थान का रक्खा है जिसमें अरक्सस (Araxes) नदी बहती है। ऐनक्वेटिल डुपैरन (Anquetil Duperron) ने उसे 'आर्य्यानां बीज' ही सिद्ध किया है, जो नाम जिन्दावस्ता ने उस देश को दिया है जिसको ईश्वर ने सबसे पूर्व पैदा किया था। हमारी सम्मति में डाक्टर स्पीगल ने आर्य्यानां बीज की भौगोलिक स्थिति को परम्परागत कथाओं के अनुकूल समर्थन किया है सो ठीक किया है। इस बात को मान लेने में भी हमें कोई संकोच नहीं कि 'आर्य्यान बीज' का अपभ्रंश ऐरन हो गया होगा + ।' परन्तु प्रो० मोक्षमूलर डाक्टर स्पीगल से इस में सहमत नहीं हैं कि हैरन और ऐरन एक ही हैं। वे शंका करते हैं। "फिर हैरन (Haran) में हकार और ऐर्रन (Arran) में दो रकार कैसे हो गये ?" प्रो० साहब की विद्वत्ता को समुचित प्रतिष्ठा पूर्वक हमें कहना पड़ता है कि यह उनका बहुत ही निर्बल आक्षेप है। द्वित्व रकार के सम्बन्ध में यह ध्यान रखने की बात है कि वह फारसी ऐरन (Arran) में हुआ है न कि इबरानी हैरन (Haran) शब्द में। यह एक प्रसिद्ध नियम है कि जब एक भाषा के शब्द दूसरी भाषा में जाते हैं तो साधारणतः उनका उच्चारण कुछ सरल हो जाता है, और उनके संयुक्त व्यञ्जनों में से किसी एक का लोप हो जाता है। निम्नलिखित उदाहरण इस बात को प्रकट करेंगे।

संस्कृत	प्राकृत या पाली	हिन्दी
सर्व	सब्ब	सब
सत्य	सच्च	सच
क्षेत्र	खेत्त	खेत

+ Chips from a German Workshop. Vol. 1. p. 149.

आक्षेप का दूसरा भाग अर्थात् हैरन में हकार कहाँ से आ गया, कदाचित् भारी आक्षेप प्रतीत हो। परन्तु ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनसे प्रकट होगा कि एक भाषा से दूसरी भाषा में जाते समय हकार बढ़ जाता है वा अल्प-प्राण अक्षर का महा प्राण हो जाता है। यथा जन्द भाषा में सात के लिये हप्त (संस्कृत सप्त) शब्द है जो फारसी में बदल कर हफ्त हो जाता है। जन्द का क्सुर शब्द (संस्कृत श्वशुर) फारसी में खुसर से बदल जाता है। यह कहा जा सकता है कि हैरन (Haran) में प्रथम अक्षर हकार कैसे हुआ? परन्तु इस प्रकार के परिवर्त्तनों के भी उदाहरण मौजूद हैं जैसे—जन्द भाषा का अष्ट (संस्कृत अष्ट अर्थात् आठ) फारसी में 'हश्त' से बदल जाता है। जन्द का अष्टैति शब्द (संस्कृत अष्टि अर्थात् अस्सी) फारसी के हश्ताद से बदल जाता है। इसी प्रकार जन्द का अस्ति (संस्कृत अस्ति अर्थात् है) फारसी में हस्त या अस्त दोनों रूप से आता है। इसमें सन्देह नहीं हो सकता है कि अर्वाचीन फारसी भाषा प्राचीन ज़न्द भाषा से निकली है तो क्या हम यह पूछ सकेंगे कि इन शब्दों में हकार कहाँ से आया? क्या हम इस आक्षेप के बल पर इस बात को स्वीकार कर सकेंगे कि फारसी हश्त जन्द के अष्ट और फारसी हश्ताद जन्द के अष्टैति से निकला है? अतएव प्रो० मोक्षमूलर का आक्षेप ठहर नहीं सकता और उससे डाक्टर स्पीगल की इस सम्मति का खण्डन नहीं हो सकता कि ऐरन और हैरन दोनों एक ही हैं।

स्वयम् प्रोफेसर मोक्षमूलर ही दोनों मतों के बीच सम्बन्ध का दूसरा मार्ग बताते हैं। वे कहते हैं कि "डाक्टर स्पीगल अपने विश्वासानुसार इबराहीम और जरदुश्त के प्राचीन मिलने के स्थान को निश्चित करके यह युक्ति देते हैं कि जो विचार पैदायश की किताब और अवस्ता में समान हैं उनका सम्बन्ध उसी प्राचीन काल से होना चाहिये जिसमें यहूदी और पारसियों के धर्माचार्य्य इबराहीम व जरदुश्त के मध्य परस्पर भेंट होने की सम्भावना थी।……यह प्रसिद्ध है कि लगभग एकही

समय और एक ही सिकन्दरिया * नामक स्थान पर जहाँ 'पुरानो धर्म पुस्तक' का यूनानी भाषा में अनुवाद हुआ, 'अवस्ता' का भी उसी भाषा में उल्था किया गया। इस प्रकार हमारे पास सन् ईस्वी से पूर्व तीसरी शताब्दी में सिकन्दरिया स्थान पर पैदायश की किताब और अवस्ता के मानने वालों में परस्पर संसर्ग होने का ऐतिहासिक प्रमाण है। यह उस विचार परिवर्त्तन का सुलभ मार्ग है जिसका डाक्टर स्पीगल के मतानुसार इबराहीम और जरदुश्त के समय में ऐरन के अतिरिक्त अन्य किसी स्थान पर होना सम्भव नहीं ‡।

यह एक नया प्रमाण इस बात का माना जा सकता है कि पिछले समय में भी दोनों मतों के मध्य विचार परिवर्त्तन हुआ, परन्तु हमारी तुच्छ सम्मति में इससे डाक्टर स्पीगल की उस सम्मति का खण्डन नहीं होता कि उस प्राचीन समय में भी विचार परिवर्त्तन हुआ कि जब जरदुश्त और इबराहीम की विद्यमानता थी। वास्तव में यह समझना कठिन है कि प्रोफेसर साहब की सम्मति से 'पैदायश की किताब' और 'अवस्ता' के समान विचारों का समाधान किस प्रकार हो सकता है। क्योंकि प्रो॰ मोक्षमूलर की सम्मति के अनुसार सन् ईसवी से पूर्व तीसरी शताब्दी में सिकन्दरिया स्थान पर उक्त दोनों पुस्तकों का अनुवादमात्र किया गया था—रचना नहीं हुई। डाक्टर स्पीगल के इस विचार का समर्थन कि इबराहीम और जरदुश्त समकालीन थे, उनकी आचार सम्बन्धी समानता से भी बहुत कुछ होता है। स्वयम् प्रोफेसर मोक्षमूलर स्वीकार करते हैं कि "हम डाक्टर स्पीगल से इस बात में सहमत हैं कि जरदुश्त के आचार यहूदी धर्माचार्यों से बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। वे उर मुज़्द (ईश्वर) से भेंट करने योग्य समझे गये। उन्होंने उर-मुज़्द से डाक्टर स्पीगल के कथनानुसार ईश्वरीय ज्ञान का एक-एक अक्षर नहीं तो एक-एक शब्द अवश्य ग्रहण किया **।"

---

* मिश्रदेश Egypt की राजधानी सिकन्दरिया नगर है।

‡ Chips, Vol, 1, p. p. 150-151

** Chips Vol 1. p. 158.

वस्तुतः उनमें इतनी घनिष्ठ समानता है कि डाक्टर हौग (Dr. Haug) लिखते हैं—"कई मुसलमानी किताबों में, विशेष कर फारसी भाषा के कोषों में, जरदुश्त और इबराहीम पैगम्बर को एक ही व्यक्ति बताया गया है।+

यहूदीमत में जरदुश्ती विचारों के प्रवाह का दूसरा मार्ग उस ऐतिहासिक घटना से जाना जाता है जो बेबीलन के बन्धन के नाम से प्रसिद्ध है। ईसा से ५८७ वर्ष पूर्व बेबिलन के सम्राट नबूशद नजर ने पैलस्टाइन पर आक्रमण किया और यरुसलम को जीतकर बहुत से यहूदियों को अपनी राजधानी में ले गया। उसने उनका साहित्य विनष्ट कर उनको अपना बँधुआ बना लिया। इससे कई सौ वर्ष के पश्चात् फारसी सम्राट खुसरो ने बेबीलन के साम्राज्य को छिन्न-भिन्न कर डाला, और कुछेक यहूदियों को यरुसलम में इस अभिप्राय से जाने की आज्ञा देदी कि वे वहाँ जाकर इबरानी यहूदी साहित्य की पुनः स्थापना करें। यरुसलम वापिस आने पर सन् ईसवी से ४५० वर्ष पूर्व एजरा और नेहमिया ने 'पुराने धर्म पुस्तक' का सम्पादन और संकलन किया। जो पुरुष हजरत मूसा को पंजनामे का कर्त्ता नहीं मानते, उनका मत है कि एजरा और नेहमिया ने इसी समय उसकी रचना की। इस प्रकार यहूदियों की परम प्राचीन पुस्तकें उस समय लिखी गईं या नये सिरे से संकलित की गई जब वे लोग जरदुश्तियों के मध्य चिरकाल तक रह चुके थे।

मैडम ब्लैवट्स्की (Madame Blavatsky) इस विचार की केवल पुष्टि ही नहीं प्रत्युत इससे बढ़कर ऐसा मानती हैं कि हजरत मूसा की समस्त कहानी कल्पित है और बेबीलन के राजा सरगन की कथा की नकल मात्र है। "एजरा ने सारे पंजनामे को नवीन रूप में ढाला। फरयून की पुत्री नीलनदी और उसमें नागरमोथा की नाव में बालक

+ Dr, Haug'sEssays on the sacred language, writing and religion of the Parsis p. 16.

के तैरते हुये पाये जाने की कथा आरम्भ में हजरत मूसा ने न तो स्वयम बनाई और न उनके लिये किसी और ने बनाई। यह कथा बेबिलन के खण्डहरों की खपरैलों पर राजा सरगन की कहानी में जो मूसा से बहुत पूर्व हुए, मौजूद थी। अब तर्क दृष्टि से विचार करने पर क्या परिणाम निकलता है? निस्सन्देह यही जिससे हमें यह कहने का अधिकार होता है कि जिस कथा का एजरा ने मूसा के सम्बन्ध में वर्णन किया है उसको उन्होंने बैबीलन में सीखा था, और उन्होंने उस अलङ्कार को जो सरगन के विषय में था, यहूदी आचार्य्य (मूसा) से सम्बन्धित कर दिया। सारांश यह है कि 'यात्रा की पुस्तक' * मूसा को रची कदापि नहीं प्रत्युत एजरा ने पुरानी सामग्री से उसकी दुबारा रचना की थी ‡। इसके पीछे एक फुट नोट वा टिप्पणी में मिस्टर जार्ज स्मिथ के (Assyrian Antiquitics) नामक ग्रन्थ से अवतरण देती हुई उक्त मैडम लिखती हैं:—

"बैबीलन के 'मूसा' अर्थात् सरगन की राजधानी अगदी नामक विशाल नगर था जिसे सैमैटिक लोग अक्कद के नाम से पुकारते हैं और जिसको 'पैदायश की किताब' के दशम् अध्याय आ० १० में नीमरद की राजधानी कहा है। अक्कद सिप्पोरा नगर के निकट बैबिलन के उत्तर और फरात नदी पर स्थित है। दूसरी आश्चर्य्यजनक समानता उस बात से ज्ञात होती हैं कि समीपवर्त्ती नगर का सिप्पोरा (Sippora) का वही नाम है जो हजरत मूसा की स्त्री का था अर्थात् जिप्पोरा (Zipporah)। वस्तुतः इजरा ने यह कथा चालाकी से बढ़ा दी है जो इससे अनभिज्ञ नहीं हो सकते थे। यह विचित्र कहानी कन्यूंजिक (Kanyunjik) से प्राप्त हुये पट्टियों के टुकड़ों पर मिली हैं और नीचे दी जाती हैं:—

---

* बाइबिल में 'पुराने धर्म पुस्तक' के एक भाग का नाम है और पंजनामे की पाँच पुस्तकों में से एक है।

‡ Secret doctrine Vol. 1. pp. 319-320.

१—मैं शक्तिसम्पन्न राजा सरगन अक्कद का अधिपति हूँ।

२—मेरी माता राजकुमारी थी, अपने पिता को मैं नहीं जानता। मेरे बाप का एक भाई देश पर शासन करता था।

३—अजुपिरन के नगर में जो फरात नदी के तट पर स्थित है।

४—मेरी माता राजकुमारी ने मुझे अपने गर्भ में धारण किया और कठिन समय में जना।

५—उसने मुझे नागरमोथे की डोंगी में रख दिया और निकलने के मार्ग को मटियातेल से बन्द कर दिया।

६—उसने मुझे नदी में फेंक दिया, जिसने मुझे डुबोया नहीं।

७—नदी मुझे अक्की जलवाहक के पास भगा ले गई।

८—जलवाहक अक्की ने हार्दिक प्रेम से मुझे उठाया इत्यादि ....

अब 'यात्रा की पुस्तक' अध्याय २ को देखिये—

और जब वह (मूसा की माँ) अधिक काल तक उसे न छिपा सकी तो उसने उसके लिये नागरमोथा की एक डोंगी ली। और उस पर कीचड़ व राल लगाई फिर उसमें बालक को रखकर उसे नदी किनारे नरसलों में छोड़ दिया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उस मार्ग के बताने में जिसके द्वारा यहूदियों ने पारसियों से अपने धार्मिक विचार ग्रहण किये, कोई कठिनता नहीं है। अब हम दोनों मतों के मध्य सिद्धान्त सम्बन्धी अनेक समानता दिखाने के लिये आगे बढ़ते हैं। ईसाई ग्रन्थकारों को भी बहुत दिनों से यह प्रतीत होता आया है कि सिद्धान्त सम्बन्धी अनेक समानताएँ हैं। डाक्टर हॉग जिनके लेख पारसीमत के सम्बन्ध में बड़े प्रामाणिक हैं इस बात को स्वीकार करते हैं। पहले यह लिख कर कि जरदुश्तीमत, यहूदीमत से उतना विरुद्ध नहीं है जितने की अन्य प्राचीनतम हैं। वे लिखते हैं कि—"जरदुश्तीमत यहूदी और ईसाईमतों के साथ अनेक महत्वपूर्ण विषयों पर बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध अथवा समानता दिखाता

है। जैसे शैतान का व्यक्तित्व और उसके गुण, और मुरदों का उठना, इन दोनों का सम्बन्ध पारसीमत से हैं, और वास्तव में यह पारसियों के वर्त्तमान धर्म-ग्रन्थों में पाये जाते हैं * ।"

अब हम इन समान सिद्धान्तों की यथाक्रम विवेचना करेंगे।

ईश्वर विषयक विचारः—

डाक्टर हॉग साहब ने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में इस बात को स्वीकार किया है कि बाइबिल और जन्दावस्ता ईश्वर सम्बन्धी बातों में प्रायः एक ही प्रकार की शिक्षा देते हैं। वे कहते हैं—स्पितामा जरदुश्त का विचार अहुर मजदा** को ईश्वर मानने के सम्बन्ध में पुराने अहदनामे की पुस्तकों में वर्णित जाहोवा + ऐलोहिम (ईश्वर) विषयक विचारों से पूर्णरूपेण समता रखता है। वह अहुरमजदा को आधिभौतिक और आध्यात्मिक जीवन का उत्पादक तथा अखिल विश्व का स्वामी बताते हैं, जिसके आधीन सारे प्राणी रहते हैं। वह प्रकाश स्वरूप और प्रकाश का मूल स्थान है वह बुद्ध और ज्ञान स्वरूप है ‡ ।

यह कम आश्चर्य की बात नहीं है कि समानता बाइबिल और जन्दावस्ता में प्रयुक्त ईश्वर के नामों तक में पाई जाती है। जन्दावस्ता के हरमजद यष्ट में, अहुरमजदा अपने २० नामों की गणना करता है। पहला नाम 'अह्मि' (संस्कृत अस्मि) अर्थात् 'मैं हूँ' और पिछला 'अह्मि यद अह्मि' (संस्कृत अस्मि यद अस्मि) अर्थात् 'मै हूँ जो मैं हूँ' हैं। यदि दोनों वाक्य बाइबिल में जोहोवा के भी नाम हैं और ईश्वर ने मूसा से कहाः—'मैं हूँ जो मैं हूँ' Ehyeh asher Ehyeh, और उसने

---

* Haug's Essays p. 4.

** जन्दावस्ता में ईश्वर का मुख्य नाम 'अहुरमजदा' है जो वैदिक 'असुरमेधा' का रूपान्तर देखो अ० ५ अं० १।

+ बाइबिल में ईश्वर का मुख्य नाम जेहोवा है।

‡ Haug's Essays p. 30.

कहा कि उसी प्रकार तू इसराईल की सन्तान से कहेगा कि मुझे तुम्हारे पास 'मैं हूँ' ने भेजा है *।" इन नामों में इतनी अधिक समानता है कि उसे आकस्मिक नहीं कह सकते।

डाक्टर स्पीगल की सम्मति है (यद्यपि प्रोफेसर मोक्षमूलर उसे संदिग्ध बताते हैं) कि "अहुर शब्द (जो जन्दावस्ता में ईश्वर का मुख्य नाम है) यहूवा वा जेहोवा शब्द से अर्थ में समानता रखता है। डाक्टर स्पीगल कहते हैं कि अहुर और अहु के अर्थ ईश्वर के हैं। वह अवश्य अह धातु (संस्कृत अस) से बना है, जिसके अर्थ होने के हैं इसलिये अहुर के वही अर्थ हैं जो यहूवा के हैं अर्थात् 'वह जो हैं।"+

महाशय बाल गंगाधर तिलक ने अपने ग्रन्थ 'वेद और वेदांग ज्योतिष का समय" में जेहोवा या यह्व शब्द का सम्बन्ध सीधा वैदिक साहित्य से दिखलाया है। वे लिखते हैं—"इसमें सन्देह नहीं कि जहोवा शब्द वही है जो काल्डियन भाषा में यह्वे है। ऋग्वेद में यहु (जन्दयजु) यह्वत और स्त्री लिंगरूप यह्वी और यह्वती शब्द कई बार आये हैं और ग्रासमन साहब ने उनकी व्युत्पत्ति यह धातु से की है जिसका अर्थ वेग से चलाना है। निघण्टु में यह शब्द जल के अर्थ में (नि० १। १२) और बल के अर्थ में (नि० २-९) में आया है और गुणवाचक यह्व (नि० ३-३, निरुक्त ८-८) का अर्थ महान् है। इस अर्थ में यह्व शब्द ऋग्वेद में सोम के लिये (ऋ० ९। ७५। १ में) अग्नि के लिये (ऋ० ३। १। १२ में) इन्द्र के लिये (ऋ० ८। १३। २४) में आया है। अधिक प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं। एक मन्त्र (ऋ० १०। ११०। ३) में यह सम्बोधन में आया है और अग्नि के लिये कहा गया है हे यह्व"। (पृष्ठ १३७-१३८)

तिलक महाशय ने इस प्रकार यह सिद्ध किया है कि यह्व आरम्भ में वैदिक शब्द था, और चाहे मूसा ने इस शब्द को काल्डियन भाषा

* यात्रा की पुस्क ३। १४

+ Chips Vol. 1. p. 158.

से लिया हो परन्तु ये शब्द उस भाषा का नहीं क्योंकि उसमें इस शब्द के और कोई रूप नहीं मिलते। तिलक महाशय का विचार है कि काल्डियन भाषा में यह शब्द भारतवर्ष से गया।

पारसी लोग अग्नि की बड़ी प्रतिष्ठा करते हैं यह प्रसिद्ध बात है। वे दिन गये जब पारसियों पर अग्नि पूजक होने का लाँछन लगाया जाता था। परन्तु यह बात स्वीकार करनी पड़ती कि वे लोग अग्नि में ईश्वर व उसकी शक्ति का सर्वोच्च प्रादुर्भाव वा प्रकाश मानते हैं। यसन ३२०-१ का शीर्षक है कि "अग्नि अहुरमजदा का चिन्ह है जो उसकी प्रज्वलित शिखा में प्रकट होता है।" इसकी अग्नि पूजा से तुलना करना न्याय नहीं है। यदि यह अग्नि पूजा है तो, जैसा ब्लेवटस्की ने ठीक लिखा हैं कि जो ईसाई ईश्वर को सजीव अग्नि बताता है और जो पवित्रात्मा के उतरते समय 'अग्नि की जिह्वा' व मूसा की 'जलती हुई झाड़ियों' की बात कहता है वह भी वैसा ही अग्नि उपासक है जितना कि कोई अन्य जो ईसाई नहीं है।* पुराने अहदनामे में यह वर्णन किया गया है कि तेरा प्रभु ईश्वर क्षय करने वाला अग्नि है।+ इस प्रकार जन्दावस्ता के अनुसार ही बाइबिल भी ईश्वर को अग्नि रूप में वर्णन करता है। वस्तुतः पंजनामे में साधारणतया परमेश्वर अग्नि रूप में अथवा अग्नि के बीच में प्रकट होता है। हम यात्रा की पुस्तक' का उदाहरण देते हैं "ईश्वर ने हजरत मूसा से कहा, देख मैं तुझ तक घने बादलों में आता हूँ जिससे जब मैं तुझ से बोलूँ तो सब लोग सुनें और सदैव तेरा विश्वास करें। मूसा ने लागों की बातं ईश्वर से कहीं और तीसरे दिन प्रातःकाल ऐसा हुआ कि मेघ गर्जने लगे और बिजली चमकने लगी और एक घना बादल पर्वत के ऊपर आ गया। नरसिंघा के स्वर से अधिक तीव्र शब्द हुआ कि लश्कर के समस्त लोग काँपने लगे और

* Secret doctrine Vol. I.p. 121.

+ Diutemiony अ० ४।४ 'यात्री की पुस्तक' १९-९-१६-१८,

सिनाइ पर्वत धूम्राच्छादित हो गया क्योंकि ईश्वर अग्नि रूप में उस के ऊपर उतरता था और उसका धुआँ भट्ठी के धुए के समान ऊँचा चढ़ा और सारा पर्वत वेग से हिलने लगा।"

और भी बाइबिल में लिखा है :

इसराईल के सन्तान की दृष्टि में पर्वत की चोटी पर ईश्वर के तेज का दृश्य विकराल अग्नि के समान था *। इन वाक्यों को अपनी आँखों के सामने रखकर ऐसा कौन होगा जो बाइबिल के जेहोवा को जरदुश्त के अहुर मजदा की नकल न कहे।

ईश्वर और शैतान, दो शक्तियों का विश्वास

जरदुश्तियों का यह विश्वास, यहूदी ईसाई और मुसलमानी मतों का आवश्यक सिद्धान्त बन गया है। प्रो० डारमेस्टेटर Prof. Darmesteter उसे इस प्रकार संक्षेप से वर्णन करते हैं—"संसार जैसा कि वह अब है दो प्रकार का है। उसकी रचना अहुर मजदा शुभकारी और अंगिरा मन्यू अशुभकारी इन दो परस्पर विरोधी शक्तियों द्वारा हुई है—संसार का इतिहास इन शक्तियों के विरोध का इतिहास है। अङ्गरामन्यु ने अहुर-मजदा के जगत् पर किस प्रकार आक्रमण किया और उसे बिगाड़ा तथा अन्त में किस प्रकार वह उससे निकाला जायगा।"+

यह वही विश्वास है जैसा ईसाई लोग अपने ईश्वर और शैतान के सम्बन्ध में रखते हैं। इस बात के प्रकट करने की आवश्यकता नहीं कि जिस प्रकार अहुरमजदा जेहोवा का मूलादर्श है ठीक उसी प्रकार अङ्गरा-मन्यु बाइबिल के शैतान का है।

दोनों विचार एक ही हैं इस बात को डाक्टर हॉग साहब ने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है। वे कहते हैं कि "उनके अङ्गरा-मन्यु विषयक विचार, साधारण ईसाइयों के शैतान सम्बन्धी विचारों से

* यात्रा की पुस्तक २४।१७

+ Zend Avesta part 1st introduction p. LVI.

किसी अंश में भी भेद नहीं रखते प्रतीत होते*।" वे आगे कहते हैं कि—"पारसियों के शैतान और नरक विषयक विचार ईसाई सिद्धांतों से सर्वांश में समानता रखते हैं। बाइबिल और जन्दावस्ता दोनों के मतानुसार शैतान हिंसक और असत्य का पिता है।"+

बाइबिल में शैतान सर्प के रूप में प्रकट होता है। जिन्दावस्ता में भी 'अजिद हक' अर्थात् जलता हुआ साँप, कहा गया है। (फारसी का अजदाह इसी शब्द से निकला ज्ञात होता है, जिसका अर्थ विकराल सर्प अथवा पंख युक्त सर्प है।)

अगले अध्याय में हम यह बात सिद्ध करने का यत्न करेंगे कि जन्दावस्ता का मत वेदों से निकला है। परन्तु इस स्थल पर हम यह दिखाना चाहते हैं कि संसार में दो प्रतियोगिनी शक्तियों के विचार का पता चाहे वह प्रकट रूप से जरदुश्ती विचार प्रतीत होता हो,—वेदों के एक सुन्दर अलङ्कार अर्थात् इन्द्र और वृत्रासुर युद्ध से चलता है। यह अलंकार वैदिक साहित्य में बहुत प्रसिद्ध है, और वेद के अनेक भागों को भाँति दो अर्थ रखता है,—एक वाह्य और दूसरा आभ्यान्तरिक अथवा जैसा कि यास्कमुनि रचित निरुक्त में समुचित रीति से वर्णन किया गया है। एक 'आधिदैविक' और दूसरा 'आध्यात्मिक'। आधिदैविक अर्थ की व्याख्या के अनुसार इन्द्र सूर्य है। वृत्र के अर्थ ढाँपने वाले के हैं, (वृ आच्छादने धातु से) और वह बादल का नाम है जो सूर्य्य को ढक लेता है। सूर्य्य अपने प्रदीप्त प्रकाश और सुखमयी ऊष्मा को इस पृथ्वी पर फेंकता है तथा समस्त जीवधारी और वनस्पतियों को जीवन देता है। वृत्र सूर्य को छिपाकर उसके प्रकाश और ऊष्मा को हमारे पास तक आने से रोकता है जिससे चाहे थोड़ी देर को ही सही अन्धकार फैल जाता है। इस प्रकार संसार में प्रकाश के मूल इन्द्र और अन्धकारकारी वृत्र के मध्य निरन्तर युद्ध होता रहता है। जब वृत्र प्रबल हो जाता है तो

---

* Haug's Essays p. 53.

+Ilied p. 309

सूर्य छिप जाता है और संसार अन्धकारमय हो जाता है। परन्तु अन्त में इन्द्र के विजयी होने पर वृत्र का नाश हो जाता है और वह वर्षा के रूप में पृथ्वी पर गिर पड़ता है। इन्द्र फिर अपने प्रचण्ड प्रताप से प्रकट होता हैं और अपने पूर्ण तेज से चमकने लग जाता है। अपने शत्रु का संहार करके उसकी आभा पहले से भी अधिक बढ़ जाती है। यही प्राकृतिक दृश्य है जो इस अलंकार का वाह्य अथवा आधिदैविक व्याख्यान है।

अध्यात्मिक अर्थानुसार इन्द्र ईश्वर है, जो प्रकाश और जीवन का दाता है, समस्त प्रकार के ज्ञान, धर्म उत्तमता और आनन्दों का मूल है, सारांश यह कि सब भलाई उसी से निकली है। अतएव वृत्र उसके प्रतिकूल अर्थात् पाप और अन्धकार की शक्ति है। जिस प्रकार भौतिक संसार में प्रकाश और अन्धकार के मध्य निरन्तर युद्ध होता रहता है, उसी प्रकार आत्मिक संसार में धर्म और अधर्म्म के बीच आन्तरिक संग्राम होता रहता हैं। जिस प्रकार इस संसार को सूर्य्य प्रकाशित करता है उसी प्रकार वह ईश्वर जो श्रेष्ठ पवित्र और आत्मिक ज्योति का मूल है, हमारी बुद्धि व अन्तःकरण को प्रकाशित करता तथा हमारे हृदय में पवित्र भाव उत्पन्न करता है। परन्तु जैसे कभी सूर्य के बादलों से ढक जाने पर पृथ्वी पर अन्धकार छा जाता है उसी प्रकार धर्म के सूर्य्य को बहुधा पाप रूपी बादलों का ग्रहण लग जाता है, जिसके कारण आत्मा में अन्धकार छा जाता है। काम, क्रोध, लोभ ईर्ष्या, द्वेष और संसार के असंख्य प्रलोभन वृत्र की सेना रूप हैं जो हमारे आत्मा को घेर कर उसके भीतर विद्यमान ईश्वरीय ज्योति को नष्ट करने का प्रयत्न करते हैं, इस प्रकार इन्द्र और वृत्र के मध्य युद्ध आरम्भ होता है। मनुष्य का आत्मा युद्ध क्षेत्र बनता है, जहाँ इन्द्र और वृत्र की सेनाएँ आमने-सामने खड़ी होती हैं। कभी-कभी आत्मा स्वेच्छापूर्वक, धूर्त्त, कपटी, प्रच्छन्नचारी सर्प सदृश वृत्र के अधीन हो जाता है, जिस का परिणाम यह होता है कि उस आत्मा में धर्म्म का साम्राज्य उठ जाता है और अधर्म शासन करने लग जाता है। इन्द्र की सेना अर्थात् भलाई

और अधर्म के भाव आत्मा को त्याग जाते हैं क्योंकि उस समय वह उनके लिये उचित निवास स्थान नहीं रहता। आत्मा पाप की उन सेनाओं का आखेट बन जाता है जिन की अधीनता उसने शीघ्रता पूर्वक स्वीकार कर ली थी। इन्द्र का प्रकाश उस आत्मा को प्रकाशित नहीं करता। एक प्रकार का आत्मिक अन्धकार उत्पन्न हो जाता है, जिसमें आत्मा को भलाई-बुराई का विवेक नहीं रहता और वह अपने आपको पाप व दुःख के गर्त में गिरा देती है। जब वह अपनी कुवासनाओं के फलों का आस्वादन कर चुकता है तब परमेश्वर की कल्याणकारिणी शक्ति उसका अधमावस्था से उद्धार करती है।

धर्म और अधर्म का यही युद्ध है जो संसार में सदैव होता रहता है। यही आत्मिक संग्राम है, जिसे हम अपने जीवन के पल पल पर अनुभव करते रहते हैं। इसी के कारण ससार में धर्म पर चलना कठिन है। इसी का उपर्युक्त अलङ्कार में सुन्दरता पूर्वक चित्र खींचा गया है।

वृत्र के अनेक वेदोक्त नामों में से एक नाम "अहि" * है जिसके अर्थ संस्कृत साहित्य में सर्प ‡ के भी हैं। यही नाम जन्दावस्ता में "अज्हि" या 'अजहिदहक' (संस्कृत अहिदाहक) के रूप में प्रयुक्त होता है।

प्रोफेसर मोक्षमूलर ने अपनी पुस्तक (Sciencc of language) में 'अहि' शब्द और उससे मिलते हुये अन्य आर्य भाषाओं के शब्दों के विषय में इस प्रकार लिखा मैं :—

"परन्तु संस्कृत में अहि शब्द का अर्थ साँप भी है ऐसे ही यूनानी भाषा में Echis और लैटिन भाषा में Anguis...... इनका धातु संस्कृत में अह या अंह है जिसके अर्थ दबाने या गला घोटने के हैं ...... लेटिन भाषा में इस धातु का रूप Ang၁, Anctum गला घोटने के अर्थ में है,

---

* उदाहरणार्थ देखो ऋग्वेद मं० १ सूत्र ३२ मन्त्र ', २, ३, ५, निघण्टु १—१० भी द्रष्टव्य है।

‡ देखो अमरकोश १।७।६

उससे Angar संज्ञा रूप होता है परन्तु Angar शब्द के अर्थ केवल गला घोटने या गले के रोग के ही नहीं उससे धार्मिक भाव भी हैं, और Anguish, anxiety का अर्थ भी हैं।"

अहि शब्द के इन दोनों अर्थ का सम्बन्ध दिखलाते हुये प्रो० मोक्षमूलर इस प्रकार लिखते हैं।

"संस्कृत में यह शब्द पाप के अर्थ में आता है जो बहुत युक्त है। पाप मनुष्य के मन के सामने में भिन्न-भिन्न रूपों में आता है और उसके अनेक नाम हैं परन्तु ऐसा उपयुक्त कोई और नाम नहीं जैसा अंह धातु से निकले हुये शब्द हैं।

अंह का अर्थ संस्कृत में पाप केवल इसलिये हैं क्योंकि उसका यौगिक अर्थ गला घोटना है और पाप का भाव आत्मा के लिये ऐसा ही होता है जैसा कोई घातक किसी का गला घोटे ....यूनानी भाषा में Agas शब्द जो पाप का वाचक है अंह का ही रूपान्तर है गौथिक भाषा में उसी धातु से Agis शब्द भय के अर्थ में बनता है और अंग्रेजी के शब्द Awe और Ugly शब्द का Ug भाग भी इसी धातु से निकले हैं और इसी प्रकार अंग्रेजी शब्द Anguish फ्रैंच शब्द Angoisse इटैलियन Angoscia जो लैटिन शब्द Angustia का अपभ्रंश है।"

वैदिक शब्द 'अहि' के दो अर्थों में परस्पर थोड़ा ही सम्बन्ध था, परन्तु जन्दावस्ता में वे सर्वथा मिला दिये गये हैं। अंगरामन्यु अथवा पाप की शक्ति का बहुधा स्थलों पर सर्प के नाम से वर्णन आया है। जरदुश्ती मत ने यह सिद्धान्त यहूदियों को दिया जिन्होंने फिर उसे ईसाई और मुसलमानों को दिया। यही कारण है कि तीनों सैमेटिकमत शैतान का रूप सर्प जैसा वर्णन करते हैं। प्रो० मोक्षमूलर इन बातों के इनकार करने में असमर्थ होते हुये भी इस युक्ति के विरुद्ध निम्नलिखित आक्षेप करते हैं:—

"क्योंकि अवस्ता में पाप की शक्ति को सर्प या अजदहा कहा गया है तो क्या उससे यह परिणाम निकलना आवश्यकीय है कि जिस सर्प

का उल्लेख 'पैदायश की किताब' के तृतीय अध्याय में किया गया है वह पारसियों से लिया गया ? वेद और जन्दावस्ता किसी में भी सर्प ने ऐसा कपट युक्त और धूर्त्ततापूर्ण स्वरूप धारण नहीं किया जैसा कि 'पैदायश की किताब' में किया है *। यह आक्षेप ऐसा ही है जैसा कि यह कहना कि पिता और पुत्र बिलकुल एक से ही होने चाहिये अथवा असल और नकल में किसी प्रकार का भी भेद न होने चाहियें, परन्तु आगे चलकर विद्वान् प्रोफेसर पूर्वोक्त युक्ति की युक्तता को स्वीकार करते हुये प्रतीत होते हैं। (पुराने अहदनामे की) पिछली पुस्तकों, जैसे 'इतिहास की पुस्तक में' जहाँ यह वर्णन है कि शैतान ने डेविड को इसराईल की हत्या करने के लिये उत्तेजित किया, (यह वही उत्तेजना है जिसका समुअल के अध्याय २४। २ में ईश्वर के उस क्रोध से सम्बन्ध कहा गया है जो इसराईल और यहूदा को नाश करने के लिये था) और नये अहदनामे के उन समस्त स्थलों में जिनमें पाप की शक्ति को पुरुषवत् वर्णन किया गया है, हम पारसी विचार पारसी वाक्यों का प्रभाव मान सकते हैं, यद्यपि यहाँ भी सुदृढ़ प्रमाण मिलना किसी प्रकार सहज नहीं है।...........रहा स्वर्ग में सर्प सम्बन्धी विचार, सो यहूदीमत और ब्राह्मण दोनों में उत्पन्न होना सम्भव है +।"

अन्य ईसाई लेखकों ने भी स्वीकार किया है कि इस सिद्धान्त को यहूदियों ने पारसियों से लिया है। हम रेवरेन्ड हार्लीवाकर Rev. E. T. Harley Walker M. A. के लेख में से उद्धृत करते हैं जो उन्होंने अप्रैल सन् १९१४ के Inter. Pretor पत्र में "बाइबिल के मत पर पारसियों का प्रभाव" शीर्षक से दिया था—"यहूदी मत के पिछले समय में पारसियों के द्वैत के चिन्ह और भी स्पष्ट पाये जाते हैं। जरदुस्त के अनुयायियों के मत में संसार का सारा इतिहास एक लगातार युद्ध है जो अहुरमजदा अर्थात् परमेश्वर और ९९९९ रोग और आपत्तियों

---

* Chips Vol 1. p. 155.

+ Chips Vol 1. p. 155.

के कर्त्ता अंगरामैन्यु के बीच, अथवा सत्य और असत्य के बीच, वा प्रकाश और अन्धकार के बीच चला आता है। यहूदीमत ने उन नामों और कहानियों को दृढ़ नहीं किया जिनमें यह मत प्रकट किया गया था परन्तु उसके प्रभाव से इसराइल का शत्रु, शैतान बुराई के राज्य का अधिपति हो जाता है"।

हम इस विषय पर जर्मनी के प्रसिद्ध, तत्त्वज्ञ शूपनहार Schoupen-haure का भो प्रमाण देते हैं:—

"इससे यह बात जो दूसरी प्रकार भी सिद्ध है, पुष्ट हो जाती है कि जहोवा अहुरमजदा का रूपान्तर है और शैतान अंगरामैन्यु का, जो उसके साथ-साथ रहता है। अहुरमजदा इन्द्र का रूपान्तर है। *

तो क्या वैदिकधर्म में भी कुरान, बाइबिल और जन्दावस्ता के समान दो शक्तियों का सिद्धान्त है? नहीं, इस कारण वैदिक ईश्वर वाद इन मतों से वढ़ चढ़ कर है।

यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि वैदिक वृत्र अथवा अहि कोई वास्तविक अथवा पृथक् व्यक्ति नहीं है। जो ईश्वर के समान अलग अस्तित्व रखता हो। वह केवल निषेध परक और कल्पनात्मक विचार है, अर्थात् धर्म अथवा ईश्वरीयता के अभाव का नाम है। आत्मिक संग्राम के अलङ्कार युक्त वर्णन के लिये आवश्यकता थी कि जिस प्रकार धर्म का मूल एक शक्तिवान् (ईश्वर) है, उसी प्रकार अधर्म की शक्ति का भी पुरुषवत् वर्णन किया जावे। परन्तु जन्दावस्ता में 'अज्ही' ने कुछ-कुछ व्यक्तित्व धारण कर लिया और बाइबिल और कुरान में तो शैतान को प्रायः ईश्वर के सदृश ही व्यक्तित्व देकर उसे उससे सर्वथा पृथक् मान लिया है।

ईश्वर और शैतान के द्वैतवाद की जड़ में निम्नलिखित तर्क प्रतीत होता है—"इस संसार में हम भलाई-बुराई दोनों पाते हैं। जिस

* Religion and other Essxys p. 111.

प्रकार कि भलाई की उत्पत्ति ईश्वर से हैं उसी प्रकार बुराई पैदा करने वाला कोई दूसरा व्यक्ति होना चाहिये। यह दूसरा व्यक्ति शैतान है। परन्तु यह तर्क सर्वथा अयुक्त है। इसी प्रकार कोई पुरुष यह तर्क उठा सकता है कि प्रकाश और अन्धकार दो विरोधी पदार्थ हैं। सूर्य्य प्रकाश का मूल है एतएव अन्धकार को पैदा करने वाला भी कोई गोला आकाश में अवश्य होगा। इस तर्काभास में दोष यह है कि प्रकाश और अन्धकार को दो प्रथक् वस्तु मान लिया है। वस्तुतः प्रकाश ही एक वस्तु है और अन्धकार उसके अभाव का नाम है। इसी प्रकार भलाई एक वास्तविक पदार्थ है और बुराई उसका अभाव मात्र है। जहाँ सूर्य्य चमकता हैं वहीं प्रकाश होता है, जहाँ सूर्य्य की रश्मियाँ नहीं पहुँचतीं, वहाँ अन्धकार रहता है। इसी प्रकार जिस आत्मा में ईश्वरीय ज्योति प्राप्त या ग्रहण करने की शक्ति नहीं वहाँ अधर्म वा पाप है अथवा यों कहिये कि वहाँ आत्मिक अन्धकार है।

जन्दावस्ता में भी शैतान का व्यक्तित्व सन्देह युक्त है। प्रो० डारमेस्टेटर एल० एच० मिल्स तथा अन्य अनेक विद्वान् इस बात की पुष्टि करते हैं। परन्तु डाक्टर हॉग उसे इन स्पष्ट शब्दों में अस्वीकार करते हैं:—'एक ऐसी पृथक् पापात्मा जो अहुरमजदा के समान शक्तिमान हो तथा उससे विरोध रखती हो, जरदुश्ती धर्म के प्रतिकूल है। यद्यपि प्राचीन जरदुश्तियों में इस प्रकार के विचार का होना वेन्दीदाद जैसे पिछले ग्रन्थों से अनुमान किया जा सकता है।" *

इस प्रकार डाक्टर हॉग के अनुसार अंगरामन्यु कोई पृथक् व्यक्ति नहीं हैं। परन्तु कुरान और इंजील के शैतान के सम्बन्ध में किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता। इससे सिद्ध होता है कि वेदों के सत्य अलंकार को समझने में प्रथम कुछ भ्रम होकर उसका कुछ रूपान्तर किया गया। और अन्त में उसे किस प्रकार बिगाड़ा गया जिससे वह केवल हास्यजनक वार्ता और अयुक्त गाथा के रूप में अवनत

* Haug's Essays' p. 303.

हो गया। इससे यह भी प्रकट होता है कि संसार के अन्य धर्मों के सिद्धान्त जो उन्हें अपने निज के जान पड़ते हैं वास्तव में वेदोक्त सत्य मत के बिगड़े हुए रूपान्तर मात्र हैं।

५—फ़रिश्ते

यह बात हम द्वितीय अध्याय में बता चुके हैं कि फरिश्तों का विश्वास जो यहूदियों ने मुसलमानों को दिया है वह जरुदुश्त के 'यजत' सम्बन्धी विचार से समानता रखता है।

डाक्टर सेल लिखते हैं कि यहूदियों ने फरिश्तों के नाम तथा काम की शिक्षा पारसियों से ग्रहण की, जैसा कि वे स्वयम् स्वीकार करते हैं (देखो Talmud Hieros in Rosthashan)। प्राचीन समय के पारसी फरिश्तों के धर्म सम्बन्धी कार्य और उनके सांसारिक कार्यों के संरक्षक पर पूरा विश्वास रखते थे (जैसा कि उस धर्म वाले अब तक करते हैं) और इसीलिये उन्होंने फरिश्तों के कार्य और अधिकारों को अलग-अलग नियत किया था और अपने महीनो के दिवसों के नाम उनके नाम पर रक्खे थे। जबराईल को वे सरूश और रवां बख्श अथवा आत्मदाता कहते थे। उसके विरुद्ध कार्य वाले अर्थात् मौत के फरिश्तों को वे अन्य नामों के अतिरिक्त अन्य मरदाद अर्थात् 'मारक' के नाम से पुकारते थे। मैकाईल को वे वेष्टर कहते थे जो उनकी सम्मति में मानवजाति के लिये अन्न प्रदान करता है। यहूदियों की शिक्षा है फरिश्ते अग्नि से उत्पन्न हुए। उनके अनेक प्रकार के कार्य हैं और वे मनुष्यों की सिफारिश करते तथा उनके साथ रहते हैं। मौत के फरिश्ते को वे 'दूमा" के नाम से पुकारते हैं और कहते हैं कि वह मरते हुए मनुष्यों को उनके अन्त समय पर नाम ले लेकर पुकारता है। *

पारसी लोग भी सात बड़े फरिश्तों पर विश्वास रखते है अर्थात् वहुमनु, अशावहिश्त, क्षत्रवैर्य्य, स्पन्ता अर्मैति, हौर्वताद, अमर्ताद और

* सेल साहब का कुरान भूमिका पृ० ५६।

उनका अधिदेव अहुर मजदा) जिन को‡ अमेशस्पन्त कहते हैं। पादरी एल० एच० मिल्स कहते हैं कि अमेशस्पन्तों को आत्मा की पदवी देने का विचार (बाईबिल के *) सात आत्माओं का मूल कारण हो सकता है। जो ईश्वर के सिंहासन के सन्मुख रहते हैं।**

६—सृष्टि की उत्पत्ति

जन्दावस्ता के अनुसार संसार छः कालों में बना है। जिस क्रम से सृष्टि के विविध भाग रचे गये वह वही क्रम हैं जो बाईबिल में वर्णित है।

---

‡ डॉ० हॉग के अनुसार यदि अमेशस्पन्त को यथार्थ रूप में समझा जाय तो वह कोई भिन्न व्यक्तियाँ नहीं हैं किन्तु वे अहुर मजदा की उन विभूतियों के नाम हैं जिन्हें वह अपने सच्चे उपासकों को प्रदान करता है। वे लिखते हैं :

वे नाम कि जिनसे अमेशस्पन्त पुकारे जाते हैं अर्थात्—बहुमनु अशा वहिश्त, क्षत्रवेर्य्य, स्पन्ताअर्मैति, हैर्वताद, अमर्ताद, गाथाओं में बहुधा आते हैं। परन्तु जैसा कि पाठकों को उन स्थलों से (देखो यास ४७) और उनके पूर्वापर प्रसंग से ज्ञात होगा। वे केवल उन गुण वा विभूतियों के नाम हैं जिन्हें ईश्वर उन लोगों को प्रदान करता है जो सत्यभाषण और शुभ कर्म द्वारा उसकी सत्हृदय से पूजा करते हैं। जरदुश्त की दृष्टि में वे कोई व्यक्ति न थे, किन्तु यह विचार उस महात्मा के कथन में उसके कतिपय उत्तराधिकारियों ने मिला दिया (Haug's Essays, p. p. 305-306)

उपर्युक्त छः नामों के अर्थ इस प्रकार हैं।—वहुमनों = पवित्र मन। अशावहिश्त = सर्वोच्च धर्म। क्षत्रवेर्य्य = सांसारिक सम्पत्ति की प्रचूरता। स्पन्ता अर्मैति = भक्ति और पवित्रता। हौर्वतादि = स्वास्थ्य। अमर्ताद = अमरत्व।

* देखो ईश्वरीय ज्ञान ८। २।

** जन्दाबस्ता भाग ३ पृ० १४५।

उन दोनों का वर्णन हम नीचे बराबर लिखते हैं जिससे पाठकों को एतद्विषयक सादृश्य समझने में अधिक सुगमता हो।

जरदुश्तियों का वर्णन-

पहले समय में आसमान पैदा किया गया; दूसरे में पानी; तीसरे में पृथ्वी; चौथे में वृक्ष; पाँचवें में पशु और छठे में मनुष्य उत्पन्न हुए।

यहूदियों का वर्णन

पहिले दिन आसमान और पृथ्वी पैदा किये गये; दूसरे में आकाश और पानी, तीसरे दिन सूखी भूमि, घास, पक्षी और फल; चौथे दिन प्रकाश, सूर्य्य, चन्द्रमा, नक्षत्र; पांचवें दिन चलने वाले जीव, पंखयुक्त पखेरु विशाल-काय हेल; छठे दिन जीवित प्राणी पशु-लताएँ, चौपाये और मनुष्य।

प्रो० मोक्षमूलर डा० स्पीगल रचित पुस्तक की आलोचना करते हुए इस समानता के सम्बन्घ में इस प्रकार लिखते हैं :—"हम दूसरे विषय अर्थात् "पैदायश की किताब" और 'जन्दाबस्ता' में वर्णित सृष्टिउत्पत्ति की ओर आते हैं। हमें यहाँ अवश्य ही कुछ अद्‌भुत समानताएँ जान पड़ती हैं। पैदायश की किताब में सृष्टि छः दिनों में और अवस्तो में वह छः कालों में उत्पन्न की गई। ये छः काल मिल कर एक वर्ष के बराबर होते हैं। पैदायश की किताब और अवस्ता दोनों में ही सृष्टि रचना का कार्य मनुष्य की उत्पत्ति होने पर समाप्त हो जाता है। डा० स्पीगल दोनों वर्णनों की अन्य बातों में भेद स्वीकार करते हैं परन्तु कहते हैं कि मनुष्य के प्रलोभन और पतन में फिर एकता है। डा० स्पीगल ने अवस्ता से प्रलोभन और पतन का सविस्तार वर्णन नहीं किया अतएव हम इस बात का निर्णय नहीं कर सकते कि उनकी सम्मति में कौन सी बातें यहूदियों ने पारसियों से ग्रहण कीं।" *

* देखो (Chips Vol. 1 page 154.)

यदि हम प्रलोभन और पतन की विवादास्पद बात को जाने भी दें तब भी हमारे विचार में उपर्युक्त सृष्टि उत्पत्ति-सम्बन्धी दोनों वर्णनों में इतना घनिष्ट सादृश्य है जिसे आकस्मिक नहीं कर सकते।

यह प्रगट होगा कि जरदुश्तियों का सृष्टिउत्पत्ति सम्बन्धी वर्णन वस्तुतः भौतिक विज्ञान की अन्वेषणा के अनुकूल हैं, जिसने यह सिद्ध कर दिया है कि सृष्टि उत्पत्ति अथवा यों कहिये कि विश्व विकास का प्रथम रूप एक प्रदीप्त पिंड ... Nebulous Mass का प्रगट होना था। उसका दूसरा रूप हमारे भूमण्डल का समस्त पिंड से वियुक्त होकर अलग पृथ्वी के रूप में आना था। इसके पश्चात् फिर क्रमशः वनस्पति, पशु और मनुष्य एक दूसरे के बाद प्रकट हुये।

यजुर्वेद सृष्टि उत्पत्ति का इसी क्रम से वर्णन करता है—

ततो विराडजायत विराजो अधिपूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथोपुरः॥
तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम्।
पशूँस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये॥
तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।
तेनदेवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये॥

—यजु० अ० ३१ मं० ५, ८, ९

अर्थ :—तब एक प्रदीप्त * पिंड उत्पन्न हुआ उसका अधिपति पुरुष वा सर्वव्यापक परमात्मा था तत्पश्चात् इस प्रदीप्त पिंड से पृथ्वी तथा अन्य शरीर पृथक् हुये। इस सर्वपूज्य परमेश्वर ने वनस्पति पैदा की जो भोजनादि के काम आती है। उसने पशु बनाये जो हवा, जंगल और बस्ती में रहते हैं, उसने मनुष्यों को उत्पन्न किया जिसमें विद्वान

* विराट्-वि उपसर्ग और राज धातु से (जिसका अर्थ चमकता है) बना है अतएव उसका अर्थ प्रदीप्त पिंड किया गया।

और ऋषि लोग भी हुये और जिन्होंने उस अनादि और उपास्य परमात्मा की पूजा की।

यह ध्यान करने की बात कि जरदुश्ती वर्णन वैदिक वर्णन से अधिक मिलता है। यथार्थ बात यह है कि जरदुश्तियों का वर्णन। जिसका यहूदी वर्णन एक प्रकार की नकल है, वैदिक सृष्टि उत्पत्तिवाद पर अवलम्बित है। *

७ मृतोत्थान

डाक्टर हॉग कहते हैं कि "मुर्दों का पुनः जीवित होना वास्तव में जरदुश्तियों का विचार है।"+ वे फिर लिखते हैं कि "अन्तिम न्याय व्यवस्था के दिन मृतकों का जी उठना भी जरदुश्तियों का एक सिद्धान्त है।"‡

जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है कि यहूदियों ने इस सिद्धान्त को पारसियों से ग्रहण करके ईसाई और मूसलमानों को उसकी शिक्षा दी। हम जन्दावस्ता से प्रमाण देते हैं:—"यह तेज उस वीर का है जो सओश्यन्तों में से उठेगा" जिससे उस समय जबकि मृतक दुबारा उठेंगे और अविनाशी जीवन का आरम्भ होगा, जीवन स्थायी, अक्षय, अमर, निर्दोष, बलिष्ट और शक्ति सम्पन्न बन जावे और सदैव अपने आप ही (बिना किसी सहायता के) स्थिर रह सके। समस्त संसार अनन्त काल पर्य्यन्त भलाई की दशा में रहेगा। शैतान उन स्थानों से भाग जावेगा जहाँ से वह धर्मात्मा पुरुष पर उसे हनन करने की इच्छा से

---

* वैदिक सृष्टि उत्पत्ति का जरदुश्तो सृष्टि उत्पत्ति से सम्बन्ध देखने के लिये पाठकों को पंचम अध्याय का सातवाँ अंश अवलोकन करना चाहिए।

\+ Haug's Essays p. 216.

‡ Ibid p. 311.

आक्रमण किया करता था और उसके सब सन्तान और प्रजा नाश हो जावेंगे। ‡

यहाँ हम मसीह (जिसे पारसी धर्म ग्रन्थों में सओश्यन्त कहा गया है) के पुनरागमन, स्वर्गीय जीवन और मृतोत्थान की शिक्षा को ठीक वैसा ही पाते हैं जैसा कि उसका वर्णन बाइबिल में किया है।

इस सिद्धान्त सम्बन्धी बहुत सी बातों के लिये भी यहूदी लोग पारसियों के ऋणी हैं। उदाहरणार्थ उनका तराजू वाला विचार जिसमें न्याय व्यवस्था के दिन प्रत्येक मनुष्य के कार्यों की तुलना की जायेगी वास्तव में जरदुश्तियों का विचार है। प्रो० डारमेस्टेटर अपनी टिप्पणी में जो पृष्ठ १२ पर की है लिखते हैं :—

"रशमी रजिस्ता" सच्चों का सच्चा सत्य का फरिश्ता है। वह मिथु और सिरोश के अतिरिक्त मृतकों के तीन न्यायाधीशों में से एक है। वह उस तुला को पकड़ता है जिसमें मृत्यु के उपरान्त मनुष्य के कर्मों की तुलना की जाती है। वह अन्याय पूर्वक नहीं तोलता ¨ ¨ धर्मात्मा और शासकों के लिये भी नहीं (अन्याय पूर्वक तोलता)। वह तराजू में बाल भर भी अन्तर नहीं पड़ने देता, और न किसी का पक्ष करता है। (मीनोखिरद २, १२०-१२१)* जैसा कि अध्याय २ अंश २ (३) में पहले ही कहा गया हैं नरक के पुल का विचार जिस पर कि मृतोत्थान के पश्चात् मनुष्यों को पार उतारना होगा वह भी जरदुश्तियों से लिया गया है।

बेलग्रेड के मुख्य रब्बी डाक्टर ए कोहट A. Kohut ने Zeitschrift Der Deutschen Morgenlandischen Gesellschaft. में **

‡ जमयाद पृष्ठ १६,८६-६०

* जन्दावस्ता भाग २, रोश यश्त पृ० १६८

** The part taken by the Parsi Religion in the formation of Chritianity and Judaism बैलग्रेड के प्रधान रब्बी स्व० डा० कोहट के जर्मन पुस्तक से अङ्गरेजी अनुवाद होकर फोर्ट प्रिंटिंग प्रेस पारसी बाजार स्ट्रीट बम्बई में १८९६ में छपा।

प्रकाशित अपने निबन्ध में यह स्वीकार किया है कि इस विषय की कई और छोटी-छोटी बातों के लिये भी यहूदी लोग पारसियों के ऋणी हैं उनमें से हम कई बातों का यहाँ उल्लेख करते हैं।

इस बात को दोनों मत मानते हैं कि मृत्यु के पश्चात् ३ दिवस तक आत्मा शरीर के चारों घूमता रहता है। विद्वान् रब्बी 'सदर बन्देश' नामक एक पारसी पुस्तक का प्रमाण देते हैं "आत्मा ३ दिवस तक उसी स्थान पर रहता है जहाँ कि उसने शरीर का त्यागन किया था। वह शरीर को खोजता रहता है तथा फिर शरीर धारण की आशा करता है।"+ (देखो वेन्दीवाद २१, ६१-६६ जहाँ पर भी यही शिक्षा दी गई है)। डाक्टर कोहट समानता दिखलाने को निम्नलिखित प्रमाण Jerus Berach से देते हैं—"आत्मा ३ दिवस तक शरीर के चारों ओर घूमता रहता है क्योंकि वह उससे पृथक् होना नहीं चाहता।"*

२ –जामास्पनामा नामक एक पारसी धर्म पुस्तक के अनुसार "सृष्टि के अन्तिम दिनों में मनुष्य के ऊपर बड़ी आपत्तियाँ आवेंगी। महामारी और रोग फैलेंगे। यूनान, अरब और रोम की सेनाओं के मध्य फरात नदी के तट पर महायुद्ध होगा" + डाक्टर कोहट ऐसे ही संग्रामों की यहूदी पुस्तकों में भविष्यदवाणी होना बताते हुए लिखते हैं—'ये लड़ाइयाँ मसीह के आगमन समय की घोषणा करेंगी। और यह कहावत हो जायगी कि जब राज्यों में परस्पर युद्ध होने लगे तो मसीह के प्रादुर्भाव की आशा करनी चाहिए।" (देखो Genes Rabba ch. 42) मिदराश (Jalkut 359) भी फारसी, अरब और रोमन लोगों की लड़ाइयाँ जामास्पनामें के अनुसार बतलाता है।‡

३--डा० कोहटा आगे चलकर कहते हैं—"जैसी कि पारसियों की

+ देखो पृ० ७

* देखो पृ० १३

+ डा० कोहट का पुस्तक पृ० २२।

‡ पृ० २४।

परम्परागत कथा है कि 'सोश्यन्त' से पूर्व दो नबी आकार मसीह के आगमन समय की घोषणा देते हुए उसके लिये मार्ग ठीक करेंगे, उसी प्रकार मिदराश (Jalk Jesaj.) ‡ 305, 318 में वर्णन है—कि "इस लिये वास्तविक मुक्तिदाता से पूर्व यूसफ मसीह और मसीह एफरेम के पुत्र ये दो अग्रगामी बनकर आवेंगे।"*

४— अनेक बार आया हुआ वर्णन (Midrasch Gen. R. C. 98, Midr. Jalk Ps. 682 Midr. Ps. C. 21) कि मसीह ३ आदेश लावेंगे। पारसियों के उसी प्रकार के विश्वास का स्मरण दिलाता है कि प्रत्येक मुक्तिदाता एक आदेश लावेगा जो अभी तक प्रकट नहीं हुआ है।" *

५—बन्देहेश के ३१वें अध्याय में यह प्रश्न उठाया गया है कि जो शरीर हवा में मिट्टी होकर उड़ गया वा जल तरंगों में डूब गया वह फिर कैसे उत्पन्न होगा। मृतक शरीर फिर किस प्रकार जी उठेंगे? इसका उत्तर ओरमज्द ने इस प्रकार दिया है कि जिस प्रकार मेरे द्वारा पृथ्वी में डाला हुआ अन्न उग कर फिर एक बार जीवन ग्रहण करता है—जिस प्रकार मैंने वृक्षों में उनके भेद के अनुसार नस नाड़ी दी हैं—जिस प्रकार मैंने बालक को माता के गर्भ में रक्खा है,—जिस प्रकार मैंने पानी को पैर दिये हैं जिनके द्वारा वह दौड़ता है,—जिस प्रकार मैंने बादलों को उत्पन्न किया जो पृथ्वी से पानी को ले जाते हैं और जहाँ मैं चाहता हूँ वहाँ मेघ के रूप में उसे बरसाते हैं,—जिस प्रकार मैंने इन समस्त वस्तुओं को उत्पन्न किया हैं उसी प्रकार मृतकों को पुनः जीवित कर देना मेरे लिये कौनसी कठिन बात होगी। स्मरण रक्खो ये सब एक बार हो चुका है, मैंने उन्हें उत्पन्न किया तो क्या मैं उसको जो पूर्व था पुनः उत्पन्न नहीं कर सकता?"

‡ पृ० ४।

** डा० कोहट का पुस्तक पृ० २६।

डाक्टर कोहट कहते हैं कि ये सब बातें यहूदियों के पुस्तक Talmud और Midrasch में आती हैं।

मृतोत्थान की सिद्धि में बहुधा अनाज के उस दाने का दृष्टान्त दिया जाता है जो प्रथम पृथ्वी माता की गोद में रक्खा जाता है और पीछे अगणित पन्तियों के रूप में फूट निकलता है। (Cf. Synh. 90b, Ketub I11 b: Pirke D. R. Fbzia C, 33) "पृथ्वी में वोया हुआ नग्न बीज पत्तियों के अनेक पत्तों के साथ उग आता है तो फिर धर्मात्मा पुरुष जो अपने कपड़ों सहित भूमि में दफन किये जाते हैं क्यों न उठेंगे ?" जिस प्रकार बन्देहेश मृतोत्थान के चमत्कार की जन्म और वर्षा के चमत्कार से समानता करते हैं, ठीक उसी प्रकार यहूदियों के पुस्तक Talmud Taanith 2a.:Synh. 113 a: करते हैं। "तीन कुंजियाँ केवल ईश्वर के हाथ में हैं और किसी प्रतिनिधि को नहीं सौंपी जातीं। वे यह हैं—१—वर्षा की कुञ्जी, २—जन्म की कुञ्जी, ३—मृतोत्थान की कुञ्जी।" यही बात Midraseh Deuter c. और Gcnes Rabbi C. 13. में वर्णित है। जिसमें मृतोत्थान के चमत्मारों के साथ ठीक वैसे ही समता की गई है, जैसी कि बन्देहेश में, और उसका पूर्ण होना उन दोनों की अपेक्षा कम कठिन कार्य्य बतलाया गया।*

८—भविष्य जीवन स्वर्ग और नरक

भविष्य जीवन, स्वर्ग और नरक के सम्बन्ध में यहूदियों का जो विश्वास है वह समस्त विवरण सहित जन्दावस्ता के बयान से मिलता है और अवश्य उसी से लिया गया है। डाक्टर हॉग लिखते हैं:—

भविष्य जीवन और आत्मा के अमरत्व का विचार पूर्व ही गाथाओं में स्पष्ट रूप से वर्णित किया है, तथा अवस्था के पिछले साहित्य में भी फैला हुआ है। भविष्य जीवन का विश्वास जन्दावस्ता के मुख्य

* डाक्टर कोहट का पुस्तक पृष्ठ २७-८

सिद्धान्तों में से हैं + डाक्टर साहब फिर कहते हैं—"इसी विचार से बहुत कुछ मिलता जुलता स्वर्ग और नरक का विश्वास है जिसका स्वयं स्पितामा जरदुश्त ने अपनी गाथा में स्पष्टतया वर्णन किया है। स्वर्ग का नाम गरोदिमान (फारसी में गरातमन) अर्थात् भजनों का घर है क्योंकि ऐसा विश्वास है कि फरिश्ते वहाँ स्तुतिगान किया करते हैं। यह वर्णन ईसाइयों के उस विचार से सर्वथा समता रखता है जो (बाइबिल में) इसाया ६ और योहन्ना की पुस्तक में आया है। *

यहूदी और पारसो पुस्तक में वर्णित स्वर्ग के आनन्दों में जो समानता है उस पर पूर्व ही अध्याय २ अंश २ (४) में लिखा जा चुका है। डाक्टर कोहट ने एक दूसरे सादृश्य का वर्णन किया है उसको भी हम लिखते हैं। वे कहते हैं:—"मुझे दृढ़ विश्वास है कि अदन के रत्न जटित स्वर्ग का विचार पारसियों से लिया गया है इसी का बन्देहेश के ३१वें अध्याय के प्रारम्भ में उल्लेख है जहाँ कहा गया है कि—जब मेरे द्वारा स्वर्ग आध्यात्मिक स्थिति में बिना स्तूपों के स्थिर हैं और रत्नो सहित जगमगाते हैं।"

मनोखिरद के १३६वें पृष्ठ के अनुसार स्वर्ग एक इस्पात लोहे की धातु के जिसे हीरा भी कहते हैं बने हुये हैं। (Spiegel's Commentor Uberdas Avesta p. 449) स्वर्ग के सुन्दर पत्थरों से बने होने का विचार इतना अधिक प्रचलित था कि जन्द भाषा में स्वर्ग और पाषाण के लिये एक ही शब्द 'आसमान' आता है। **

स्वर्ग के ७ विभागों के सम्बन्ध में डाक्टर कोहट कहते है—"जैसे पिछली पारसी पुस्तकों में वैसे ही यहूदियों की पुस्तक Talmud (अध्याय

+ Haug's Esays P. 321.

* Haug's Essays p. 31.

** डाक्टर कोहट का पुस्तक पृ० ३६

१२८) में हमें ७ स्वर्गों के नाम मिलते हैं, जिनमें से ६ नाम बाइबिल में वर्णित नामों के समान हैं *

नरक और उसके ७ विभागों के सम्बन्ध में पारसी और यहूदी विचारों की समानता हम इस पुस्तक के द्वितीय अध्याय में दिखला चुके है।

अनन्त समय तक स्वर्ग वा नरक में उपहार वा दण्ड की शिक्षा भी कदाचित् जन्दावस्ता से ग्रहण की गई है। उदाहरणार्थ उश्तवेती गाथा में लिखा है कि "धर्मात्माओं के आत्मा अमरत्व को प्राप्त होते हैं, और पापियों के आत्मा अनन्त काल तक दण्ड भोगते रहते हैं। अहुरमजदा जिसके सब जीव हैं उसका ऐसा ही नियम है।Σ

विश्वास लाने पर मुक्ति होने का ईसाई विचार जन्दावस्ता में भी पाया जाता है "विश्वासपात्र लाने वाले लोग आनन्द और अमरत्व का उपभोग करेंगे ΣΣ

९—बलिदान

बलिदान की प्रथा जो यहूदियों में सामान्यतः प्रचलित है, जरदुश्ती प्रथा का अनुकरण है, जो वैदिक यज्ञ अथवा अग्निहोत्र का रूपान्तर मात्र है। वैदिक कर्मकाण्ड में अग्निहोत्र का स्थान बहुत ऊंचा है, उसके साहित्य के बड़े भाग में इसका विशेष रूप से वर्णन है। यह आर्यों के पंच महायज्ञों में से एक है। वैदिक कालके आर्य लोग प्रतिदिन प्रातः काल और संध्यासमय ईश्वर-प्रार्थना किया करते थे, और जलवायु की शुद्धि के लिये घृत वा अन्य सुगन्धित द्रव्यों की आहुतियाँ अग्नि में डाला करते थे जिससे समस्त प्राणियों का उपकार होता था। इस

---

* वही कोहट पुस्तक पृ० १६।

Σ गाथा उश्तवेती यस्म ४५—७।

ΣΣ जन्द वस्ता भाग ३ पृ० २१ यस्म ३१।

दैनिक अग्निहोत्र के अतिरिक्त विशेष अवसरों और त्यौहारों पर विशेष यज्ञ हुआ करते थे जैसे चातुर्मास्येष्टि यज्ञ वर्षा ऋतु में किया जाता था।

जिस प्रकार पारसियों ने अपने मत के अन्य कृत्य और सिद्धान्त वैदिक आर्यों से सीखे थे उसी भाँति इस कृत्य की भी शिक्षा ग्रहण की थी और वे उसे उतना ही आवश्यकीय समझते थे कि जितना कि यहाँ के आर्यलोग समझते थे। इस कृत्य का उन्होंने ठीक-ठीक अर्थ समझा हो इसमें कुछ संदेह है और इस क्रिया का पारसियों में उसी प्रकार रूप बिगड़ गया जिस प्रकार कि हमारे देश में महात्मा बुद्ध के समय में उसका निरर्थक रूप हो गया था परन्तु तो भी वे लोग दृढ़ता से उसमें लगे रहे और नियमानुकूल उसका अनुष्ठान करते हैं। कदाचित् यही मुख्य कारण है कि वे "अग्नि पूजक" कहे जाने लगे। पारसियों ने यह यज्ञ क्रिया यहूदियों को सिखाई जिनके हाथों में उसका रूप और भी अधिक दूषित हो गया। माँस भोजी होने के कारण यहूदियों ने माँस की आहुतियाँ दीं परन्तु वलिदान अग्नि में होता था यह इस बात का पुष्ट प्रमाण है कि इस यज्ञ क्रिया को उन्होंने जरदुश्तियों से ग्रहण किया। इस विषय पर बाइबिल में विस्पष्ट प्रमाण हैं जिनमें से उदाहरणार्थ दो एक दिये जाते हैं, ईश्वर मूसा से कहता है :—"मेरे लिये तू मृत्तिका की एक वेदी बनावेगा, और उस पर जलती हुई शान्ति की आहुतियां देगा। अपनी भेड़ों और बैलों को चढ़ावेगा सब स्थलों पर जहाँ पर मैं अपना नाम लिखूं तेरे पास आऊँगा और तुझे आशीर्वाद दूँगा।" *

फिर 'पैदायश की किताब' में लिखा है—"और नूह ने ईश्वर के लिए एक वेदी बनाई और उसने प्रत्येक पवित्र पशु-पक्षी को लेकर प्रज्वलित अग्नि में वेदी पर आहुतियाँ दीं।' Σ

मुसलमान लोग, जिन्होंने यह कृत्य सीधा जरदुश्तियों से न लेकर यहूदियों से ग्रहण किया उसमें अग्नि का उपयोग न समझ सके। इसी

* यात्रा की पुस्तक १५—२४

Σ उत्पत्ति की पुस्तक ८—२०

कारण उन्होंने अपने बलिदानों से अग्नि को दूर कर दिया। केवल पशुओं का वध रह गया। कैसा शोक जनक परिवर्त्तन है कि पवित्र और लाभदायक यज्ञ क्रिया के स्थान में केवल निर्दोष पशुओं का वध होने लगा।

१०—कुछ साधारण समानताएँ

धार्मिक कृत्य और मन्तव्यों की उपर्युक्त समानताओं के अतिरिक्त कुछ अन्य छोटी-छोटी बातों में भी सादृश्य हैं। उनका भी हम अब वर्णन करते हैं:—

१—बाइबिल में हमें बतलाया गया है कि ईश्वर ने सिनाई पर्वत पर हजरत मूसा को १० आदेश दिये। बाइबिल में लिखा है—"और मूसा खुदा के पास गया खुदा ने मूसा को पहाड़ पर बुलाया और कहा कि याकूब के घराने से इस प्रकार कहेगा और इसराईल के बालकों को बतावेगा।" *

"मूसा पहाड़ पर गया और बादल ने पहाड़ को ढक लिया।"Σ

इसी प्रकार हम जन्दावस्ता में देखते हैं कि अहुरमजदा 'पवित्र प्रश्नों के पर्वत' पर जरदुश्त से वार्तालाप करता है। "अब वह 'पवित्र प्रश्नों के पर्वत' पर अहुर से बात चीत करता है।" ΣΣ

२—हजरत नूह की नौका सम्बन्धी कथा जन्दावस्ता के यिम के वर की कथा से बहुत सदृशता रखती है। बाइबिल में लिखा है—"ईश्वर ने देखा कि पृथ्वी पर मनुष्य की अशिष्टता बहुत ही कुछ बढ़ गई······और इसके कारण उसे पश्चात्ताप हुआ कि उसने मनुष्य को पृथ्वी पर वृथा पैदा किया इस बात ने उसके हृदय को बहुत दुखित किया और ईश्वर ने कहा कि मैं मनुष्य का जिसको मैंने पैदा किया है

---

* यात्रा की पुस्तक अ० १६—३।

Σ वही पुस्तक १२—१५।

ΣΣ फरगर्द १२—१६।

भूतल से संहार करूंगा। मनुष्य और पशु, रेंगने वाले जीव और वायु में उड़ने वाले सब पक्षियों को मिटा दूंगा, क्योंकि मुझे पश्चात्ताप होता है कि मैंने उन्हें बनाया। परन्तु नूह ने ईश्वर की दृष्टि में दया का स्थान प्राप्त किया। ईश्वर ने नूह से कहा कि समस्त जीवधारियों का अन्त मेरे सामने आ गया है। तू एक सनोवर की लकड़ी की एक नाव बना, तू इस नाव में कोठरियाँ बना और देख ! मैं स्वयम् इन सब जीवधारियों का जितने में जीवन का श्वास है आसमान के नीचे से नाश करने के लिये जल-प्रलय करूंगा। इससे पृथ्वी की समस्त वस्तुएँ नष्ट हो जावेंगीं। परन्तु तुझसे प्रतिज्ञा करता हूँ कि तू नाव में आवेगा और अपने बेटे, स्त्री और पुत्र वधू को साथ लावेगा। सब प्रकार के प्राणियों में से दो-दो अपने साथ जीवित रखने के लिए लावेगा। उनमें एक नर और दूसरी मादा होगी। प्रत्येक प्रकार के पक्षियों, पशुओं और पृथ्वी पर रेंगने वाले जीवों में से दो-दो को जीवित रखने लियेतू अपने साथ आवेगा। *

इसी प्रकार जन्दावस्ता में अहुरमजदा उस यिम को सूचित करता है "जो आदि पुरुष, आदि राजा और सभ्यता का संस्थापक है।" ** कि "भयानक शीत Σ द्वारा संसार नष्ट होने वाला हैं। "और अहुरमजदा ने यिम से कहा हे विवंघत के पुत्र सुन्दर यिम प्राकृतिक संसार पर संहारकारी शीत पतन होने वाला है जो भयंकर और बुरे पाले को अपने साथ लावेगा। भौतिक संसार पर विनाशक शीत का पतन होने वाला है, जिससे उच्चतम पर्वतों तक पर घुटनों के बराबर गहरे हिम के पर्त गिरेंगे। × × × × और तीनों प्रकार के पशुओं का नाश हो जायगा।"

---

* उत्पत्ति की पुस्तक ६। ५-८, १३-२०

** देखो जन्दावस्ता भाग १ पृष्ठ १०।

Σ कुछ विद्वान् अनुवाद करते हुए भयानक शीत के स्थान में वर्षा, लिखते हैं। देखो जन्दावस्ता भाग १ पृ० १६ का फुट नोट।

तब अहुरमज़दा यिम को परामर्श देता है कि ऐसा वर बनाया जावे जिसमें वह अन्य जीवित प्राणियों के जोड़े के साथ शरण पा सके—

"२५—इसलिये एक लम्बा वर बना जैसा कि घोड़ा दौड़ाने का मैदान चारों ओर होता है। उसमें भेड़, बैल, मनुष्य, श्वान, पक्षी और लाल प्रज्वलित अग्नि का बीज रख।

"२७—उसमें तू प्रत्येक प्रकार के वृक्षों के बीज, प्रत्येक प्रकार के फलों के बीज ला जिनमें सबसे अधिक अन्न और सुगन्धि हो। प्रत्येक प्रकार की वस्तुओं में से दो-दो ला जिससे वह उस समय तक जब तक कि आदमी उस वर में रहे नष्ट न होने पावे।" *

ये समानताएं स्पष्ट हैं। प्रो० डारमेस्टेटर साहब लिखते हैं कि "यम का वर नूह की नौका से अधिक कुछ नहीं हुआ।"Σ

इस जल— बाढ़ की कथा शतपथ ब्राह्मण में भी पाई जाती है कि जो वेदों को छोड़ संस्कृत साहित्य की प्राचीनतम पुस्तकों में से है। उसमें बतलाया गया है कि एक मछली ने मनु को सूचना दी कि 'अमुक वर्ष में जल की बाढ़ आवेगी अतएव एक नाव बनाओ और मेरी रक्षा करो। जब बाढ़ अधिक बढ़ने लगे तो तुम नाव में प्रवेश करो मैं तुमको बचाऊंगा। तदनुसार ही मनु ने किया।' × × × × आगे यह बतलाया गया है कि बाढ़ समस्त जीवों को बहा ले गई, परन्तु मनुमहाराज अपनी नावमें बच जाने के कारण वर्त्तमान मनुष्य जाति के पिता हुये।

(३) डाक्टर स्पीगल अदन के बाग और जरदुश्ती स्वर्ग मध्य समानता बतलाते हैं। बाइबिल के वर्णित अदन के बाग की दो नदियों अर्थात् 'पिशन' और 'गिहन' को वे सिन्धु और फरात बतलाते हैं। और अदन के दो वृक्ष अर्थात् ज्ञान और जीवन के वृक्षों को वे श्वेत (होम संस्कृत

* देखो जन्दावस्ता भाग १, पृ० १५-१७ फरगर्द २

Σ देखो जन्दावस्ता भाग १ पृ० ११

सोम) उत्पन्न करने वाला 'गाव करन' वृक्ष और पोड़ा हीन वृक्ष बतलाते हैं। इन दो नदियों के सम्बन्ध में प्रो० मोक्षमूलर लिखते हैं—हम डाक्टर स्पीगल से सहमत हैं कि पिशन नदी के सिन्ध और गिहन के फरात नदी होने में बहुत कम सन्देह है।" *

परन्तु दोनों वृक्षों के सम्बन्ध में वे कहते हैं कि "हम स्वीकार करते हैं कि जब तक हम पारसियों के दोनों वृक्षों के विषय में अधिक अभिज्ञता प्राप्त न करलें तब तक हमारी तनिक भी प्रवृत्ति (पारसियों के) पीड़ा हीन पेड़ और (बाइबिल के) ज्ञान वृक्षों के एक होने की ओर नहीं होती। परन्तु सम्भव है कि श्वेतहोम का वृक्ष हमें (बाइबिल के) जोवनतरु का स्मरण करावे, क्योंकि होम और भारतवर्षीय सोम दोनों के विषय में यही विश्वास है कि उनके रसपान करने वाले अमरत्व को प्राप्त होते हैं।" **

सारांश

हमने यह सिद्ध किया कि यहूदियों ने अपने धर्म के मुख्य सिद्धान्त जरदुश्तियों से लिये। यह पूछा जा सकता है कि यहूदी धर्म में कौनसी बात मौलिक वा नई है? उसमें यह कौनसी बात है जो जरदुश्तियों के मत से निराली है और जिसके सम्बन्ध में नवीन और विशेष प्रकार का ईश्वरीय ज्ञान होने का दावा किया जा सकता है? ईसाई और यहूदी कदाचित् यह उत्तर देंगे कि यहूदो मत की उत्कृष्टता और उसके ईश्वरीय ज्ञान होने का प्रमाण यह है कि वे पारसियों के दो ईश्वर वाली शिक्षा की अपेक्षा उत्तमतर एक ईश्वरवाद सिखाते हैं। इसका हम उत्तर यह देंगे कि ईसाइयों के ईश्वरवाद की तो कथा ही क्या है जिसमें त्रैत (अर्थात् एक ईश्वर में तीन आत्माओं) को अचिन्तनीय और विलक्षण शिक्षा है,—यहूदी लोग भी ईश्वर के सम्बन्ध

---

* Chips Vo. 1. p. 156-157

** देखो Chips Vol. 1. p. 156-157

में ऐसे विचारों का अभिमान नहीं कर सकते जो पारसियों के विचारों की अपेक्षा पवित्रतर और उत्तम है। एक स्थल पर जिसका एक अंश हम पूर्व उद्धृत कर चुके हैं—डाक्टर हॉग लिखते हैं—'स्पितामा जरदुश्त का अहुरमजदा वा ईश्वर सम्बन्धी विचार उस इलाही वा जेहोवा [ईश्वर] के विचारों से सर्वथा समानता रखता है जिसका वर्णन हम पुरानी 'धर्म पुस्तक' में पाते हैं। वह अहुरमजदा को सांसारिक और आत्मिक जीवन का विधाता, अखिल विश्व का स्वामी कहता है, जिसके हाथ में समस्त प्राणी हैं। वह प्रकाश स्वरूप और प्रकाश का मूल है। वह बुद्धि और ज्ञान स्वरूप है उसकी अधीनता में सांसारिक और आत्मिक प्रत्येक वस्तु है, यथा—(वहुमन) विशुद्ध मन, (अमरताद) अमरत्व (हौर्बताद) स्वास्थ्य (अशावहिश्त) सर्वोत्कृष्ट धर्म (अमैति) भक्ति और पवित्रता (क्षतवैर्य्य) प्रत्येक सांसारिक उत्तम वस्तु की बहुलता। ये सब विभूतियाँ वह उस पुरुष को प्रदान करता है जो मन, वचन, कर्म तीनों में सच्चा है। अखिल विश्व का शासक होने से वह सज्जनों को केवल उपहार ही नहीं देता प्रत्युत दुष्ट लोगों को दण्ड भी देता है। (देखो पृ० ४३।०)। भलाई और बुराई सुख और दुख जो कुछ भी पैदा किया गया है वह सब उसी का किया है। अहुरमजदा के समान शक्तिशाली एक दूसरा बुरा आत्मा जो उसका सदैव विरोध करता रहता है, यह विचार जरदुश्ती ईश्वर वाद के सर्वथा प्रतिकूल है, यद्यपि पिछले समय की वेन्दीदाद जैसी पुस्तकों से प्राचीन जरदुश्तियों में इस प्रकार की विचारों की विद्यमानता सिद्ध हो सकती है।" *

वह अन्यत्र लिखते हैं—"गाथाओं से और विशेषकर दूसरी गाथा से इस बात को हर कोई सुलभता पूर्वक जान सकता है कि उसका (जरदुश्त) ब्रह्म सम्बन्धी ज्ञान अधिकांश में एकता पर अवलम्बित है।"+

---

* Haug's Essays p. 30.

+ Ibid p. 30

हम अहुर गाथा से छठा मन्त्र उद्धृत करते हैं—'तुम उनमें से दोनों के साथ सम्बन्ध नहीं रख सकते, अर्थात् एक ही समय में एक ईश्वर और बहु देवों के उपासक नहीं बन सकते।"‡

यह बहुत स्पष्ट है। वस्तुतः बाईबिल में एक ईश्वरवाद के सम्बन्ध में इससे अधिक पुष्ट और स्पष्ट विवरण की अन्वेषणा करना वृथा है। रहा दो ईश्वर सम्बन्धी दोष जो जरदुश्तियों पर बहुधा लगाया जाता है, हम कह सकते हैं कि न तो ईसाई धर्म और न यहूदी वा मुसलमानी मत उससे बच सकता है। डाक्टर E. W. West ने पारसी ग्रन्थ Pahalvi Texts (Sacred Books of the East Series) के अनुवाद की भूमिका में स्पष्ट लिखा है कि यदि पाठकगण उस अपूर्व विचार के समर्थन को खोज करेंगे कि पारसी धर्म में ईसाई धर्म को अपेक्षा अधिक दो ईश्वरवाद की शिक्षा है, जैसा कि साधारणतः कट्टर ईसाई ग्रन्थकार सिद्ध किया करते हैं, अथवा उस विचार का संकेत खोजेंगे कि भली और बुरी आत्मा की उत्पत्ति अनन्त काल से हुई जैसा कि इस धर्म से अनभिज्ञ लोग कहा करते हैं,—तो उनकी अन्वेषणा निरर्थक होगी। यही नहीं प्रत्युत बाईबिल और कुरान का ईश्वर और शैतान सम्बन्धी विचार जरदुश्तीमत सिद्धान्त का कुछ बिगड़ा हुआ रूप है। जरदुश्ती विचार पूर्वोक्त धर्म की अपेक्षा अधिक युक्त है। डाक्टर हॉग के निम्नलिखित शब्दों से अधिक और क्या स्पष्टीकरण हो सकता है—"यह सम्मति जो अब इतनी अधिक प्रसिद्ध हो गई है कि जरदुश्त दो शक्तियों की शिक्षा देते थे अर्थात् यह सिखलाते थे कि प्रारम्भ में दो स्वतन्त्र आत्माएँ थीं एक अच्छी और दूसरी बुरी, एक दूसरी से सर्वथा पृथक् और विपरीति रहने वाली,—यह सम्मति सत् जरदुश्त के तत्व-वाद और उनके ईश्वरवाद में भ्रान्ति करने से पैदा हुई है। परमात्मा की एकता और अविभागता के महान् विचार पर पहुँच कर उसने उस

* Ibid p. 150

बड़े प्रश्न को हल करने का यत्न किया जिसकी ओर अनेक प्राचीन तथा आधुनिक विद्वानों का ध्यान गया है,—अर्थात् संसार की अपूर्णताएँ, विविध प्रकार के दूषण, पाप और नीचता आदि ईश्वर की भलाई, पवित्रता और न्याय से किस प्रकार प्रतिकूल हो सकते हैं ? प्राचीनकाल के इस महामुनि ने दो मूल कारणों की कल्पना करके इस कठिन प्रश्न को तात्त्विक दृष्टि से हल किया। ये कारण यद्यपि परस्पर भिन्न थे तथापि उन्होंने मिलकर प्राकृतिक एवम् आध्यात्मिक संसार की उत्पत्ति की। यह बात यस्त अ० ३० (देखो पृ० १४९-१५१) से भली भाँति जानी जा सकती है।"

"अहुर मजदा जिसने सत् (गया) को उत्पन्न किया बहुमनो अर्थात् 'अच्छा मन' कहलाता है। दूसरा जिससे, असत (अज्यैति) पैदा हुई, अकममनो अर्थात् 'बुरामन' के नाम से विशेषित है। अच्छी, सच्ची और पूर्ण वस्तुएँ जो सत् पदार्थों के अन्तर्गत हैं अच्छे मन के परिणाम स्वरूप हैं जो कुछ बुरा और भ्रमयुक्त है असत् की परिधि के अन्तर्गत है, और बुरे मन का फल है। ये दोनों संसार चक्र को चलाने के हेतु हैं, प्रारम्भ से ही परस्पर संयुक्त हैं। ओर इसीलिए यिम (संस्कृत यमौ) कहाते हैं। वे अहुरमजदा में और मनुष्य में सर्वत्र उपस्थित हैं।"

"ये दोनों आदि शक्तियाँ यदि स्वयं अहुरमजदा में मिली हुई समझी जावें तो उनको बहुमनो और अकममनो नहीं कहते बल्कि स्पन्तामन्यु अर्थात् 'हानिकारक आत्मा' कहते हैं। यह बात य० १९। ९ (देखो पृ० १८७) से निभ्रान्त रूप से जानी जा सकती है कि अगरामन्यु अहुरमजदा के विरुद्ध कोई पृथक् व्यक्ति नहीं है। वहाँ अहुरमजदा अपनी दो आत्माओं का वर्णन करता है जो उसके अन्तर्गत हैं उन्हें अन्य स्थलों पर (पास ७। २ देखो पृ० १८९) दो उत्पादक और दो स्वामी पायू कहा गया है ··· ········ ······स्पनतामन्यु प्रकृति को समस्त उज्ज्वल और चमकदार अच्छी और लायक वस्तुओं का उत्पादक कहा

गया है और अंगरामन्यु ने उन समस्त वस्तुओं को बनाया जो अन्धकारमय और हानिकर समझी जाती हैं। दोनों का दिन रात्रि की तरह वियोग नहीं होता। यद्यपि एक दूसरे के विरोधी हैं तथापि दोनों सृष्टि रक्षा के लिये आवश्यक हैं।''

यह वास्तविक विचार दो उत्पादक आत्माओं का है जो ईश्वर के केवल दो भाग रूप हैं। परन्तु उस बड़े धर्म संस्थापक की यह शिक्षा काल पाकर भूल और मिथ्या व्याख्याओं के कारण बिगड़ गई और बदल गई। स्पन्तामन्यु को केवल अहुरमजदा का नाम समझ लिया गया, और फिर अंगरामन्यु अहुरमजदा से सर्वथा पृथक् होने के कारण अहुरमजदा का प्रबल विरोधी समझ लिया गया। इस प्रकार ईश्वर और शैतान के द्वैतवाद का आविर्भाव हुआ।" *

डाक्टर हॉग की सम्मति में जरदुश्त का अंगरामन्यु सम्बन्धी विचार फिलासफी के कुछेक कठिन प्रश्नों की पूर्ति करने का यत्नमात्र था। परन्तु यह बात बाइबिल के शैतान के सम्बन्ध में नहीं कही जा सकती। उसका पृथक् व्यक्तित्व निर्विवाद है। एसी अवस्था में हम नहीं समझ सकते कि यहूदी मत किस प्रकार प्रतिज्ञा करता है कि वह जरदुश्तीमत की अपेक्षा उत्तम ईश्वरवाद की शिक्षा देता है। वास्तव में ईश्वरों के सम्बन्ध में जरदुश्तियों का विचार अनेक बातों में यहूदियों के बदला लेने वाले, क्षण में रुष्ट और क्षण में प्रसन्न होने वाले और क्रोधी जैहोवा से उच्चतर हैं। केवल यह द्वैतवाद जिसका ऊपर वर्णन किया गया है—ऐसा दोष है जो जरदुश्ती ईश्वरवाद की उत्कृष्टता पर कुछ अंश तक धब्बा लगाता है। अगले अध्याय में हम इस बात को सिद्ध करेंगे कि केवल वेदोक्त ईश्वरवाद ही इस दूषण से रहित है, और केवल वही ईश्वरवाद सबसे सच्चा विशुद्धयुक्त और तात्विक है।

●

---

* Haug's Essays pp. 30-33,

पंचम अध्याय

जरदुश्तीमत का आधार वैदिक धर्म है

अब हम अपनी तर्क शृंखला की अन्तिम कड़ी की ओर आते हैं, जो यह है कि जरदुश्तीमत का उत्पत्ति स्थान वेद है। हम इस विषय को—

वैदिक और जन्दभाषा के सादृश्य से आरम्भ करेंगे

यह समानता इतनी आश्चर्यजनक है कि एसिऐटिक सोसाइटी के प्रसिद्ध प्रवर्त्तक सर विलियम जोन्स लिखते हैं—"जब मैंने जन्दभाषा के शब्द कोष का अनुशीलन किया तो यह ज्ञात करके कि उसके १० शब्दों में ६ या ७ शब्द शुद्ध संस्कृत के हैं, अकथनीय आश्चर्य हुआ, यहाँ तक कि उनकी कुछेक विभक्तियाँ भी (संस्कृत) व्याकरण के नियमानुसार ही बनाई गई है, जैसे युष्मद का षष्ठी बहुवचन 'युष्माकम्' है।" *

जरदुश्ती धर्म और साहित्य के एक उनसे अधिक प्रसिद्ध विद्वान् अर्थात् डाक्टर हाँग लिखते हैं—"अवस्था की भाषा का प्राचीन संस्कृत में जो आजकल वैदिक भाषा कही जाती है, इतना घनिष्ट सम्बन्ध है जितना यूनानी भाषा की विविध बोलियों (Aeolic, Conic, Ionic or Attic) का एक दूसरे से।

---

* देखो Asiatic Researches, II, 3, quoted by Professor Darmester in Zand Avesta Part 1, Intr. p. XX.

ब्राह्मणों के पवित्र मन्त्रों की भाषा और पारसियों की भाषा एक ही जाति के दो पृथक्-पृथक् भेदों की बोलियाँ हैं, जैसे अयोनियन Ionians, Dorians, Aeolians इत्यादि यूनानी जाति के विविध भेद थे इनको साधारणतः हेलनीज Hellenes कहते थे, इसी प्रकार ब्राह्मण और पारसी भी उस जाति के दो भेद थे जिसको वेद और जन्दावस्ता दोनों ही आर्य के नाम से पुकारते हैं।" *

व्याकरण सम्बन्धी रूपों के विषय में डाक्टर हॉग कहते हैं :—

चाहे वे सर्वथा एक ही प्रकार के न हों तोभी उन में इतना अधिक साम्य है कि जो कोई संस्कृत का थोड़ा भी ज्ञान रखता है वह उसे सरलता से पहिचान सकता है। संस्कृत और अवस्ता के व्याकरण सम्बन्धी रूपों की उत्पत्ति एक ही प्रकार से होने का सबसे अधिक सुदृढ़ प्रमाण यह है कि जहाँ व्यत्यय वा किसी नियम के अपवाद हैं वहाँ भी उनमें अनुकूलता पाई जाती है। उदाहरणार्थ सर्वनाम और संज्ञा सम्बन्धी विभक्तियों के भेद दोनों भाषाओं में एक से ही हैं, अहमै उसके लिए – संस्कृत अस्मै, कह्मै 'किसके लिये' = संस्कृत कस्मै – यशाम् 'जिनका' = संस्कृत येषाम्। यही बात हम कुछ विशेष संज्ञाओं की विभक्तियों में भी पाते हैं जैसे जन्द स्पन् संस्कृत श्वन (कुत्ता) रूप देखिये :—

विभक्ति	जन्द	संस्कृत
एकवचन प्रथमा	स्पा	श्वा
,, द्वितीया	स्पानम्	श्वानम्
,, चतुर्थी	सुने	शुने
,, षष्ठी	सुनो	शुनः
बहुवचन प्रथमा	स्पानो	श्वानः
,, षष्ठी	सुनाम्	शुनाम्

* Haug's Essays p. 69.

ऐसे ही जन्द पथन् संस्कृत पथिन के रूप :—

एक वचन प्रथमा	पन्ता	पन्था
,, तृतीया	पथा	पथा
बहु वचन प्रथमा	पन्तानो	पन्थानः
,, द्वितीया	पथो	पथः
,, षष्ठो	पथाम्	पथाम् ।"*

आगे वे कहते हैं—'संज्ञाओं से जिन में तीन वचन और ८ कारक पाये हैं यह बात अच्छी तरह जानी जा सकती है कि जन्दा भाषा वैदिक संस्कृत से प्रायः पूर्ण रूपेण मिलती है।"Σ

जन्दावस्ता के विद्वान् अनुवादक पादरी एल० एच० मिल्स का कथन है कि—"मैंने भी गाथाओं+ की भाषा का बहुत सा भाग वैदिक संस्कृत में परिवर्त्तित किया है। (वस्तुतः यह एक सार्वभौमिक प्रथा हो गई है कि गाथा और ऋचाओं के मध्य जहाँ तक समानता रहती है वहाँ तक समस्त शब्दों की तुलना वैदिक भाषा से की जाती है।‡)

प्रोफेसर मोक्षमूलर कहते हैं :

यूजिक वर्नफ (Eugene Burnouf's) के ग्रन्थों और बौप्यसाहब के मूल्यवान लेख से जो उन्होंने अपनी (Comparative Grammar) नामक पुस्तक में दिया है यह बात स्पष्ट है कि जन्द भाषा अपने व्याकरण और शब्द कोष के विचार से किसी अन्य आर्य Indo-European भाषा की अपेक्षा संस्कृत से अधिक सामीप्य रखती है। जन्द के बहुत से शब्दों में केवल जन्द अक्षर बदल कर उनके स्थान में वैसे ही संस्कृत अक्षर लिख देने से वे विशुद्ध संस्कृत शब्द बन जाते हैं। जन्द भाषा और संस्कृत में भेद विशेषकर ऊष्म, आनुनासिक और विसर्ग का है। उदाहरणार्थ संस्कृत 'स' के स्थान में जन्द 'ह' आता है। जहाँ

* Haug's Essays p. 72.

Σ Ibid p. 68.

+ जन्दावस्ता के प्राचीन भाग का नाम गाथा है।

‡ जन्दावस्ता भाग ३ भूमिका पृ० १५ (S, B. E. Series)

संस्कृत भाषा आर्य जाति की उत्तरीय (भाषाओं अर्थात् यूरोप की भाषाओं से शब्द और व्याकरण सम्बन्धी विशेषताओं में भेद रखती है वहाँ यह जन्द भाषा से बहुधा सादृश्य रखती है। गिनती के शब्द भी दोनों में १०० तक एक से ही हैं। हजार का नाम, सहस्र केवल संस्कृत में ही पाया जाता है और जन्द के अतिरिक्त जिसमें वह हजार हो जाता है अन्य Indo European यूरोपियन किसी बोली में वह नहीं आता।"*

दोनों भाषाओं के मध्य पाठकों को स्पष्ट और घनिष्ठ सम्बन्ध का बोध कराने के उद्देश्य से यहाँ हम कुछ मुख्य शब्दों को एक सूची देते हैं जिसमें संस्कृत और जन्द भाषा के रूप पास-पास रक्खे गये हैं और उन छोटे-छोटे परिवर्त्तनों को भी दिखलाया है जो संस्कृत से जन्द में जाते हुये शब्दों में हो जाते हैं। जिन शब्दों के नीचे रेखा खींची गई है वे विशेष ध्यान देने योग्य हैं। संस्कृत 'स' का जन्द में 'ह' हो जाता है।

संस्कृत	जन्द	अर्थ
असुर*	अहुर+	ईश्वर, प्राण या जीवन का दाता

* देखो Chips Vol. I pp. 8283.

+ 'असुर' शब्द-असु (प्राण या जीवन) + रा = देना, ड (उपसर्ग), अथवा असुर (प्राण) = रम = आनन्द करना से बनता है। उसका अक्षरार्थ (प्राणदाता) है। अर्वाचीन संस्कृत में यह शब्द सदा बुरे अर्थों में व्यवहृत होने लगा है, और वह केवल राक्षस का पर्यायवाचक बन गया है, जिसका यह अर्थ है कि जो व्यक्ति केवल प्राणों में रमण करता है अर्थात् अपने वर्त्तमान जीवन में प्रसन्न होता था उसका उपभोग करता है, आगामी जीवन का ध्यान नहीं करता। परन्तु वेदों में यह शब्द अनेक वार परमेश्वर के लिये प्रयुक्त किया गया है। हम डाक्टर हॉग को सम्मति उद्धृत करते हैं :—

"ऋग्वेद के प्राचीन भागों में हम 'असुर' शब्द को उन्हीं अच्छे और प्रशस्त अर्थों में व्यवहृत हुआ पाते हैं जैसा कि जन्दावस्ता में प्रधान

संस्कृत	जन्द	अर्थ
सोम	होम	एक औषधि वा बूटी
सप्त	हप्त (फारसी हफ्त)	सात
मास	माह (फा० माह)	महीना
सेना	हेना	फौज
अस्मि	अह्मि	मैं हूँ
सन्ति	हेन्ति	वे हैं
आसु	अंहु	जीवन प्राण
विवस्वत्	विवंहुत *	सूर्य, एक व्यक्ति वाचक संज्ञा

संस्कृत 'ह' का जन्द में 'ज' हो जाता है :—

संस्कृत	जन्द	अर्थ
हृदय	ज़रदय	दिल
हस्त	ज़स्त (फा० दस्त)	हाथ
वराह	वराज़	सूअर

देवता यथा इन्द्र (ऋ० वे० १,५४, ३) वरुण (ऋ० वे० १, २४, १४) अग्नि (ऋ० वे० ४, २, ५, ७, २, ३) सवितृ (ऋ० वे० १, ३, ५, ७) रुद्र या शिव (ऋ० वे० ५, ४२, ११) इत्यादि को असुर की पदवी से सम्मानित किया गया है। इसके अर्थ 'जीवित' और 'आत्मिक' के हैं। यह मानवी स्वरूप के मुकाबिले में ईश्वरीय स्वरूप का बोधक है (Haug's Essays pp. 268—269)

* कभी-कभी संस्कृत 'स' जन्द 'ह' से बदल जाता है तो उसके पूर्व अनुस्वार बढ़ा दिया जाता है, अर्थात सानुनासिक 'ह' हो जाता है, यथा अंहु और विवहुंत में।

संस्कृत	जन्द	अर्थ
होता	ज़ोता	यज्ञ में आहुति देने वाला
आहुति	आज़ुति	आहुति
हिम	ज़िम	बरफ-शीत
ह्वे	ज्वे	पुकारना
बाहु	बाज़ु	भुजा
अहि	अज़ि	१—सर्प, २—पाप, ३—मेघ
मेधा	मज़दा	बुद्धि, ईश्वर जो सर्वज्ञ है।

संस्कृत 'ज' जन्द के 'ज़' से बदल जाता है :—

संस्कृत	जन्द	अर्थ
जन	ज़न	उत्पन्न करना
वज्र	वज़्र	इन्द्र का अस्त्र-बिजली
जिह्वा	* हिज्वा (फा० ज़बान)	जीभ
अजा	अज़ा	बकरी
जानु	ज़ानु	घुटना
यज्ञ	यस्न	पूजा, बलि
यजत	तज़त	उपास्य, पूज्य देवदूत

* अधिक मिलता हुआ रूप 'जिह्वा' होता परन्तु व्यंजनों का स्थान परिवर्त्तन हो गया है। व्याकरण सम्बन्धी परिवर्त्तनों में यह एक बहुत साधारण बात है। उदाहरणार्थ संस्कृत चक्र (घेरा या पहिया) जन्द 'चरखे' संस्कृत वक्र का अङ्गरेजी में Curve [कर्व] हो जाता है। संस्कृत कश्यप जो पश्यक (सबको देखने वाला) से निकला है।

संस्कृत 'श्व' जन्द के 'स्प' से बदल जाता है :—

संस्कृत	जन्द	अर्थ
विश्व	विस्प	सब
अश्व	अस्प	घोड़ा
श्वन्	स्पन्	कुत्ता

संस्कृत 'श्व' और 'स्व' कभी कभी जन्द में क् से बदल जाता है :—

श्वसुर	क़ुसुर [फा० ख़ुसुर]	सुसर
स्वप्न	क़फ्न	१—सपना
स्वाप	ख़्वाब (फा०)	२—सोना, सपना देखना

संस्कृत 'त' जन्द 'थ' से बदल जाता है :—

संस्कृत	जन्द	अर्थ
मित्र	मिथ् (फा० मिहिर)	१-मित्र २-सूर्य्य ३-ईश्वर
त्रित	त्रिथ	चिकित्सक
त्रैतान	थ्रैतान (फा० फरीदून)	,,
मन्त्र	मन्थ्	मन्त्र

संस्कृत के बहुत से शब्द जन्द में बिना किसी प्रकार के परिवर्त्तन के चले गये और कुछ अन्य शब्दों में स्वर आदि थोड़ा सा परिवर्त्तन हुआ है :

संस्कृत	जन्द	अर्थ
पितर् (पितृ)	पितर (फा० पिदर)	बाप
मातर् (मातृ)	मातर (फा० मादर)	मा

संस्कृत	जन्द	अर्थ
भ्रातर् (भ्रातृ)	ब्रातर (फा० ब्रादर)	भाई
दुहितर	दुग्धर (फा० दुख्तर)	लड़की
पशु	पशु	जानवर
गो	गाउ (फा० गाव)	गाय
उक्षन्	उक्षन	बैल
स्थूर	स्तोर	बछड़ा
मक्षी	मक्षी (फा० मगस)	१-मक्खी २-मधुमक्खी
शरद्	सरध (फा० सर्द)	शीतकाल
वात	वाद (फा० बाद)	हवा
अभ्र	अभ्र (फा० अब्र)	बादल
यव	यव	जौ
वैद्य	वेध्य	चिकित्सक
ऋत्विज्	रथ्वि	यज्ञ करनेवाला
नमस्ते	नमस्ते *	मैं तुमको नमता हूँ
मनस्	मनो	मन विचार
यम	यिम	शासक, राजा विशेष का नाम
वरुण	बरेन	देवताओं के नाम
वृत्रहन्	वृथ्रघ्न	
वायु	वायु	
आर्य्यमन्	एर्यमन	

* हम आतर्श यश्त (Atarsh yasht) से उद्धृत करते हैं जहाँ ये शब्द आये हैं :—"नमस्ते आतर्श मजदा अहुरह्य"

संस्कृत	जन्द		अर्थ
अर्मति*	अर्मेति		१—भक्ति
			२—पृथ्वी
इषु	इशु		वाण
रथ	रथ		रथ
रथस्थ, रथेष्ठ	रथेस्थ		रथका सवार
गांधर्व	गाधर्व		
प्रश्न	प्रश्न		सवाल
अथर्वन	अथर्वन्		पुरोहित
गाथा	गाथा	भजन,	प्रार्थना
			पवित्र गीत
इष्टि	इष्टि		पूजने की क्रिया वा यज्ञ
अपांनपात	अपांनपात		बादलों की बिजली
छन्दः ‡	जन्द		१-पद्यात्मक भाषा
			२-ईश्वरीय ज्ञान

* "अर्मति वेदों में एक स्त्रीलिङ्ग वाचक पद है, जिसके अर्थ १ भक्ति आज्ञापालन (ऋ० १-६-३४-२१) पृथ्वी (ऋ० १०, ९२,-४-५) हैं। यह और अर्मेति नामक प्रधान स्वर्गीयदूत एक ही हैं, जैसा कि पाठकों को तृतीय निबन्ध से ज्ञात हो गया होगा। जन्दावस्ता में भी ठीक-ठीक यही दो अर्थ आते हैं।" (Haug's Essays p. 274)

‡ डाक्टर हाँग़ जन्द शब्द को 'ज़न' धातु से (जो संस्कृत ज्ञा जानने से मिलता है) निकला बताते हैं और संस्कृत शब्द वेद' के समान उसके अर्थ करते हैं। हम प्रो० मोक्षमूलर से सहमत हैं कि वह संस्कृत शब्द 'छन्द' से निकला है। वे कहते हैं—"मेरा अब भी यही निश्चय है कि वस्तुतः जन्द का नाम संस्कृत छन्द (अर्थात् पद्य भाषा जैसे Scandere) शब्द का अपभ्रन्श है। यह नाम पाणिनि आदि ने वेदों की भाषा को दिया है। पाणिनीय व्याकरण में हम देखते हैं कि कुछ

रूप छन्द में ही आते हैं, प्रचलित संस्कृत में नहीं। हम सदैव उन स्थानों में छन्द शब्द का अनुवाद सदा जन्द कर सकते हैं; क्योंकि वे प्रायः सबही नियम अवस्ता की भाषा (जन्द) से समान रूप से सम्बन्ध रखते हैं। (Chips Vol. 1, p. 84-85)

यह ध्यान करने की बात है कि जन्द शब्द पारसियों की धर्म पुस्तक तथा उसकी भाषा दोनों के लिये प्रयुक्त होता है। पाठकों को यह बताने की आवश्यकता नहीं 'छन्द' शब्द भी उसी प्रकार दो अर्थों में व्यवहृत होता है, अर्थात् वेद और वैदिक भाषा दोनों के लिये आता है।

संस्कृत	जन्द	अर्थ
अवस्था*	अवस्ता	जो स्थापित की गई। व्यवस्था

* 'अवस्ता' शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में डाक्टर हॉग लिखते हैं:—सब से उत्तम व्युत्पत्ति वही है कि यह शब्द 'अव+स्था' से [जिसका अर्थ 'स्थापित किया गया' सा 'मूल' है] निकला है जैसा कि जे० मूलर J. Muller साहब ने १८३९ ई० में प्रस्ताव किया था। इससे भी अधिक सन्तोषजनक अर्थ उपलब्ध हो सकते हैं यदि 'अवस्ता' को अ+विस्ता से निकाला जाय [जो विद्ज्ञाने धातु का क्त प्रत्ययान्त रूप है]। ऐसी व्युत्पत्ति करने से उसके अर्थ "जो कुछ जाना गया" या "ज्ञान" के होंगे, जैसा कि वह शब्द के अर्थ हैं जो ब्राह्मणों को पवित्र पुस्तक है।" (Haug p. 11)

इस पिछले निर्वाचन में हमको कुछ खेंचातानी ज्ञात होती है। हमारे विचार में विद् ज्ञाने धातु से। जिससे वेद शब्द निकाला है। अवस्ता शब्द निकालने का वृथा प्रयत्न किया गया है। हम प्रो० मैक्स मूलर साहब से सहमत हैं और मानते हैं कि 'अवस्ता' संस्कृत 'अवस्ता' शब्द का दूसरा रूप है क्योंकि संस्कृत स्था का जन्द में स्ता रूप हो जाता

इन्द्र	इन्द्र*
देव	देव*

यदि हम यहाँ जन्दावस्ता के दो एक वचनों को उद्धृत करके उनका संस्कृत भाषा में अनुवाद करदें तो कदाचित् यह अरुचिकर कार्य न होगा। उससे पाठकगण यह बात ज्ञात कर सकेंगे कि इन दोनों भाषाओं के मध्य कितना थोड़ा अन्तर है।

जन्द	वैदिक संस्कृत
विस्प द्रुक्ष जनैति	विश्व दुरक्षो जिन्वति
विस्प द्रुक्ष नशैति	विश्व दुरक्षो नश्यति
यथा हणोति ऐषाम् वाचम्	यदा शृणोति एतां वाचम्

है। संस्कृत शब्द 'अवस्था' अब तक 'स्थापित' और स्थिरता' के अर्थों में आता है। यद्यपि उसका प्रयोग 'स्थापित नियम अथवा आदेश" के अर्थ में नहीं होता, तथापि हम 'व्यवस्था' शब्द को (जो 'अवस्था' ही का रूपान्तर है केवल 'वि' उपसर्ग उससे पूर्व और लगा है) इस अर्थ में प्रयुक्त करते हैं।

* ये दोनों शब्द जन्द में बुरे अर्थों में प्रयुक्त होने लगे हैं। 'देव' के अर्थ 'बुरी आत्मा, और 'इन्द्र' के अर्थ 'बुरी आत्माओं का राजा' हो गये हैं (इन्द्रसभा आदि नाटक देखने वा पढ़ने वालों ने इन्द्र की सभा में लाल देव और काले देव देखे होंगे) पाठक आश्चर्य पूर्वक स्मरण करेंगे कि इसी प्रकार 'असुर' शब्द का लौकिक संस्कृत में बिगाड़ हो गया है। इन तीनों शब्दों के अर्थ भ्रन्श होने से कुछ पाश्चात्य विद्वान् यह परिणाम निकालते हैं कि सम्भवतः किसी समय में भारतवासी और जरदुश्तियों के मध्य मतभेद हो गया; परन्तु प्रो० डारमेस्टेटर इस धार्मिक फूट को स्वीकार नहीं करते।

(जन्दावस्ता भाग १ भूमिका पृ० ७९-८१ तक) हम इस विषय पर अध्याय ५ अन्श १२ में फिर लिखेंगे।

प्रत्येक बुरी आत्या का नाश हो जाता है। प्रत्येक बुरी आत्मा भाग जाती है। जब वह इन शब्दों को सुनता है।
(यसन ३१ वचन ८ डाक्टर हॉग के ग्रन्थ के पृष्ठ १९६ से उद्धृत किया गया)

तद्थ्वा परसा अर्श मई वच	तत् त्वा प्रष्टा ऋतम्
अहुर कसन जाथा पिता अशह्य	मे वच असुर ! को नः
पोव् यो कसन क्वें स्तरांच	जनिता पिता
दाद् अद्वानम् के या माओ	ऋतस्य पौर्व्यः
उखूश्यति निरेफस्ति थ्वद ।	को नः कं (स्वः ?)
ताचिद् मजदा वसेमी अन्चय	तारांश्च ।
विदुये। (उश्तावेति गाथा यस-	दाद् अध्वानम् । को
न ४४ मन्त्र ३ जो हॉग के ग्रन्थ	यो मासं उक्ष्यति
के १४४ पृष्ठ पर उद्धृत है)	निरपस्यति त्वत् ।
	तादृक् मेघा वश्मि
	अन्यच्च वित्तवे ।

हे अहुर, मैं तुझ से पूछता हूँ तू मुझे सत्य बता कि किस पैदा करने वाले, सत्य निष्ठा के जनक ने सूर्य और नक्षत्रों को मार्ग दिया। तेरे अतिरिक्त ऐसा कौन है जो चन्द्रमा को बढ़ाता और घटाता है। हे मुजदा ! मैं ऐसी और बातों को भी जानना चाहता हूँ।

२—छन्दों की समानत

यह कम आश्चर्य की बात नहीं है कि जन्दावस्ता की छन्द रचना भी वेदों से घनिष्ठ समानता रखती है। डाक्टर हॉग लिखते हैं कि—"जो छन्द गाथाओं में प्रयुक्त हुये हैं वे उसी प्रकार के हैं जैसे कि वैदिक मन्त्रों में पाये जाते हैं।"*

पादरी मिल्स का विचार है कि—"वैदिक मन्त्रों के चन्द गाथा और पिछले अवस्ता के मन्त्रों से बहुत कुछ सादृश्य रखते हैं।" +

उदाहरणार्थ स्पन्ता मन्यु गाथा के विषय में वे लिखते हैं—"इसके छन्द को त्रिष्टुप कहा जा सकता है क्योंकि उसके प्रत्येक चरण में ११ अक्षर हैं और उसकी चार पादों में पूर्त्ति होती है।" ‡

उश्तावेति गाथा यसन अध्याय ४ मन्त्र ३ के विषय में जो ऊपर उद्घृत करके वैदिक संस्कृत में अनुवादित की गई है। डाक्टर हॉग कहते हैं—कि "यह छन्द (जिसमें ११ अक्षर के ५ पाद हैं) वैदिक त्रिष्टुप से बहुत घनिष्टता रखता है, जिसमें ११, ११ अक्षरों के चार-चरण होने से कुल ४४ अक्षर होते हैं। उश्तावेति गाथा में उसकी अपेक्षा ११ मात्रा का एक पद बढ़ जाता है। तीसरी स्पन्तामन्यु नामक गाथा में त्रिष्टुप छन्द का पूरा-पूरा रूप मौजूद है; क्योंकि उसमें चार पद हैं और प्रत्येक पद ११, ११ अक्षरों का होने से कुल ४४ अक्षर हैं अर्थात् ठीक उतने ही अक्षर जितने त्रिष्टुप में होते हैं।"Σ

यसन ३१ के ८ वें मन्त्र के सम्बन्ध में जो ऊपर उद्घृत कर संस्कृत में अनुवादित किया गया है डा० हॉग लिखते हैं—"वह गायत्री छन्द से

---

* Haug's Essays, p. 143.

+ Zend Avesta, part 111, preface, p. XXXVI

‡ Ibid, p. 145.

Σ Haug'f Essays p. 145.

बहुत मिलता है, जिसमें २४ अक्षर और ३ पाद होते हैं। प्रत्येक पाद आठ-आठ अक्षरों में बँटा रहता है।" +

फरगर्द ९ के सम्बन्ध में डाक्टर हॉग लिखते—"यह गीत प्राचीन वीर छन्द (अनुष्टुप में रचा है, जिससे साधारण श्लोक रचना की उत्पत्ति हुई।" ‡

वे फिर कहते हैं—"होम यश्त का छन्द अनुष्टुप से बहुत मिलता जुलता है।"*

वे आगे और भी लिखते हैं—"जो छन्द यजुर्वेद में आये हैं उनमें से कई ऐसे हैं जो आसुरी नाम से पुकारे गये हैं जैसे गायत्री आसुरी, उषनिः आसुरी, पांक्ति आसुरी ये आसुरी छन्द जन्दावस्ता के गाथा ग्रन्थों में भी यथावत् पाये जाते हैं। गायत्री आसुरी में १५ अक्षर होते हैं। यह छन्द हमें अहुन्नवेति गाथाओं में मिलता है; परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि १६ अक्षरों में से जो साधारणतया इन छन्दों में पाई जाती है बहुधा १५ रह जाते हैं। (उदाहरणार्थ देखो यसन अध्याय ३१ मन्त्र ६ और ३१ वें अध्याय की प्रथम दो पंक्तियाँ) उषनिः आसुरी जिसमें १४ अक्षर होते हैं (Vohukhshathra) बहुक्षत्र गाथा (यस २) ओं में अविकल रूप से पाया जाता है। इसके प्रत्येक पद में १४ अक्षर हैं। पांक्ति आसुरी में ११ अक्षर होते हैं ठीक उतने ही जितने कि हम उश्तवेति और स्पन्तामन्यु में पाते हैं।++

३—दोनों धर्म के अनुयायिओं का समान नाम "आर्य्य"

पाठकों को यह बताने की आवश्यकता नहीं कि जो लोग आज

+ Ibid, p. 144.

‡ Ibid, p. 285.

* Ibid

++ Haug's Essays p. 271-252.

हिन्दू कहलाते हैं उनके पुरखा प्राचीन समय में आर्य्य * नाम से पुकारे जाते थे। परन्तु यह बात अधिक प्रसिद्ध नहीं है कि प्राचीन समय के पारसी लोग भी अपने को आर्य कहते थे।

आर्य शब्द जन्दावस्ता में अनेक स्थलों पर आया है कुछ प्रमाण हम उउद्धृत करते हैं :—

"आर्यों की प्रतिष्ठा में" (सिरोजह I, ६)+

"आर्यों को प्रतिष्ठा में जिन्हें मजदा ने बनाया" (सिरोजह I, २५) ‡

"हम आर्यों के सन्मानार्थ हवन करते हैं जिन्हें मजदा ने बनाया" (सिरोजह II, ६) Σ

"आर्यों में का आर्य, तीव्र वाण चलाने वाला" (८ यश्त ६)+

"आर्यों के देश किस प्रकार उर्वरा शक्ति प्राप्त करेंगे ? (वही पुस्तक—८)×

"आर्य जाति उस पर भेट चढ़ावे" (वही पुस्तक-५८)++

"गोचरों के स्वामी मिथु को प्रतिष्ठा और प्रभुता के उपलक्ष्य में ऐसी हवि चढ़ाऊंगा जो अवश्य ही स्वीकार की जावेगी। विस्तृत

---

* वेदों के अनुकूल सब मनुष्यों के दो भेद हैं,
आर्य और अनार्य देखो ऋग्वेद 1, १०, ५१, ८
"विजानीह्यर्य्यान् ये च दस्यवः"

+ Zend Avesta, Vol. II, p. 7

‡ I bid p. 11

Σ I bid p. 15

+ I bid p. 95

× I bid part II, p. 96

++ I b'd- 108

गोचरों के स्वामी को जो आर्य जाति के निमित्त आनन्द दायक सुन्दर निवास स्थान प्रदान करता हैं। हम हवि चढ़ाते हैं।" *

अहुरमजदा ने कहा यदि लोग वृत्रहन को भेंट चढ़ायेंगे जिसे अहुर ने बनाया है तो आर्यों के देशों में किसी शत्रु की सेना का प्रवेश न हो सकेगा, न कुष्ट, न विषैले वृक्ष, न किसी शत्रु का रथ और न बैरी का उठा हुआ भाला स्थान पा सकेगा।" (बहराम यश्त ४८ +)

अस्तद यश्त का १८ वाँ अध्याय केवल आर्यों की वीरता से भरा हुआ है। हम यहाँ उसका प्रारम्भिक श्लोक उद्धृत करते हैं :—

"अहुर मजदा ने स्पितामाजरदुश्त से कहा :—मैंने आर्यों को भोजन, पशु समूह, धन, प्रतिष्ठा, ज्ञान-भण्डार और द्रव्य-राशि से सम्पन्न किया है जिससे वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति और शत्रुओं का सामान कर सकें। ‡

४-समाज का चतुर्विध विभाग

इस बात को स्वीकार करने में अब समस्त विद्वान् सहमत हैं कि जिस जन्म परक जाति भेद से वर्त्तमान हिन्दूसमाज ने भयानक रूप धारण कर रक्खा है तथा जिसके कारण हिन्दुओं का इतना अधिक अधःपतन और ह्रास हो चुका है वह वैदिक काल में प्रचलित न था और न वेद उसकी आज्ञा ही देते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों में मनुष्य समाज का वैदिक विधि से विभाग सर्वथा भिन्न वस्तु थी। उसका बिगड़ा हुआ रूप प्रचलित जाति-भेद है।

---

* (१० यश्त ७) I bid p. 120

+ Zend Hvesta part II, p. 244

‡ I bid p. 283

इस विषय में अधिक जानने के लिये ग्रन्थकार का लिखा 'जातिभेद'* नामक पुस्तक पढ़ना चाहिये। संक्षेपतः प्राचीन वर्ण व्यवस्था वर्त्तमान जाति भेद से दो मुख्य बातों में भेद रखती है।

१—वह मनुष्य मात्र को ४ समुदायों में विभक्त करती है, अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। वर्ण विभाग इससे आगे न बढ़ता। वेद और वैदिक साहित्य की अन्य पुस्तकों में उन असंख्य उपजातियों का बिलकुल विधान न था जो अब प्रत्येक प्रधान जाति में पाया जाता है। इसने समाज के अगणित टुकड़े कर डाले, जिसके कारण आपस का स्वतन्त्र व्यवहार कठिन हो गया है।

२—यह वर्णव्यवस्था जन्म से न मानी जाती थी, प्रत्युत वह योग्यता के ठीक और न्याय संगत सिद्धान्त पर अवलम्बित थी,। या यों कहिये कि यदि कोई मनुष्य ब्राह्मण की योग्यता प्राप्त कर लेता था, अर्थात् विद्या, सत्यनिष्ठा और सदाचार पूर्वक पुरोहित, अध्यापक और धार्मिक पथ प्रदर्शक का कार्य करता था, वह शूद्र कुल में पैदा होने पर भी ब्राह्मण माना जाता था। यदि वह 'सैनिक कर्म' को पसन्द करता था तो क्षत्रिय होता था। उसके कुल का तनिक भी विचार नहीं किया जाता था और यदि वह व्यापार, वाणिज्य, कृषि या शिल्पकला में (जो पहिले द्विजन्मों के लिये अनुचित न समझे जाते थे) व्युत्पन्न होता था तो वैश्य कहाता था। जो इनमें से किसी भी वर्ण के आवश्यकीय गुणों से अलंकृत न होता था और केवल सेवा कर सकता था, वह शूद्र कहाता था। इस प्रकार वैदिक वर्णव्यवस्था उन सब दोषों से रहित थी जो वर्त्तमान जाति-भेद में पाए जाते हैं और जिनके कारण यह भेद जैसा सर हेनरी मेन साहब ने लिखा है—"सब मानुषी प्रथाओं में सब

---

* जातिभेद—उसकी उत्पत्ति और वृद्धि उससे हानियाँ और और उनके उपाय-आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त की ओर से प्रकाशित। मूल्य ॥)

से अधिक हानिकर और नाश करने वाला" हो गया है। वह किसी मनुष्य को आजन्म नीच कर्म करने की इसलिये व्यवस्था न देता था कि उसका जन्म दैवयोग से शूद्र कुल में हुआ है। किसी मनुष्य को समाज में प्रतिष्ठा और उन्नति केवल इसलिये न मिलती थी कि उसने ब्राह्मण परिवार में जन्म लिया है। वर्णव्यवस्था व्यक्तिगत योग्यता और उत्कृष्टता के सिद्धान्तों पर मनुष्य समाज का वर्ण-विभाग करती थी। और यह सब कुछ कार्य-विभाग Division of Labour एवं सहकारिता Co-operation की शिक्षा के आधार पर था, जो सब प्रकार की सभ्यता की उन्नति और उत्पत्ति का कारण स्वरूप हैं। जो वेद मन्त्र पौराणिक हिन्दुओं के विचार में जाति भेद का विधान करता है वह वस्तुतः मानव शरीर की उपमा देकर उन कार्यों का वर्णन करता है जिसको चारों वर्ण करते हैं। हम उस मन्त्र को नीचे उद्धृत करते हैं :—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः
ऊरू तदस्य यदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याँशूद्रो अजायत ॥

"ब्राह्मण उसके (मनुष्य जाति के) मस्तक हैं। क्षत्रिय उसकी भुजा हैं जो वैश्य हैं वे उसके जंघा हैं और शूद्र उसके पाँव हैं।" *

मनुष्य समाज की यही चतुरंग वर्णव्यवस्था जन्दावस्ता में भी पाई जाती है। डाक्टर हॉग लिखते हैं—"ईरानियों की (जो हिन्दुस्ताननियों से इतनी घनिष्टता रखते हैं) धार्मिक पुस्तक जन्दावस्ता

---

* पौराणिक लोग जो अर्थ करते हैं कि ब्राह्मण ईश्वर के मुख से उत्पन्न हुये। क्षत्रिय उसकी भुजाओं से यह अशुद्ध हैं, और प्रसंग से भी बिलकुल विपरीत हैं। इस विषय पर अधिक विस्तार से जानने तथा मंत्र की व्याख्या देखने के लिये ग्रन्थकार कृत वैदिक मंत्र नं० १ (मनुष्य समाज) को पढ़िये, जिसको आर्य प्रतिनिधि सभा, संयुक्त प्रान्त ने प्रकाशित किया है और एक आने में मिल सकता है।

में स्पष्टतया चारों वर्णो का उल्लेख है, केवल नामों का भेद है १-अथ्रबा "पुरोहित" (संस्कृत अथर्वण) २-हथेस्तो "योद्धा" ३-वास्त्रियोफ्श्या "कृषिकार" ४-हुइती (पहलवी-हुइतोखुश) कारीगर (मजदूर)—यसन १९-१७ Werterj)। *

प्रो० डारमेस्टेटर जन्दावस्ता के अनुवाद में लिखते है—"हम उसमें (अर्थात् दिनकिर्त में) चार वर्णों का वर्णन पाते हैं जो आश्चर्य के साथ हमें उस वर्णन का स्मरण दिलाता है जो ब्राह्मणों की पुस्तकों में वर्णो की उत्पत्ति विषय में है। और जो निःसन्देह भारतवर्ष में लिया गया है।"+

हम जन्दावस्ता के प्रश्नोंत्तरों से एक प्रमाण उद्धृत करते हैं :-

प्रश्न—मनुष्य की किन कक्षाओंके साथ—

उत्तर—'पुरोहित, रथारोहि (योद्धाओं का मुखिया), विधि पूर्वक भूमि जोतने वाला और शिल्पकार, जीवन की वे अवस्था और कक्षाएँ हैं जो शासकों के ध्यान देने योग्य हैं। ये उन धार्मिक नियमों की पूर्ति करती है जिनके द्वारा समाज को सच्चाई के क्षेत्र में वृद्धि होती है।" **

पारसी धर्म की अर्वाचीन पुस्तकों में भी इन चार वर्णों का वर्णन है। यद्यपि उनके नामों में पीछे परिवर्त्तन हो गया है। उदाहरणार्थ नामा मिहाबाद में लिखा हैं—हे आबाद! ईश्वर की इच्छा आबादियों के धर्म के विरुद्ध नहीं है। निम्नलिखित चार वर्णों में से जो कोई इस मार्ग पर चलेगा वह स्वर्ग पावेगा—होरिस्तारान, नूरिस्तारान्, सोरिस्तारान्. रोजिस्तारान्। पारसियों का सब से पिछला धर्म-ग्रन्थ लेखक सासान पंचम उपर्युक्त कथन पर इस प्रकार टीका करता है :—

---

* Quoted from Haug in Muır's Sanrkrit, Texts, Part II, p. 561.

+ Zend A vesta part I, p. XXXIII (S. B. E.S.)

** Zend Avesta part. I.P. XXXIII (S.B.E.S.)

होरिस्तारान् को पहलवी में रथोर्नान + कहते हैं वे पुरोहित हैं और इसलिये बनाये गये हैं कि धर्म की रक्षा करें, उसकी उन्नति और अन्वेषण करें और राज्य प्रबन्ध में सहायता दें।

नूरिस्तारान् को पहलवी में रथेस्तारान् Σ कहते हैं। वे राजा और योद्धा हैं और ऐसी योग्यता रखते हैं कि उन्हें मुखिया, सरदार, शासक तथा देश का प्रबन्धकर्त्ता नियुक्त किया जावे।

सोरिस्तारान् को पहलवी में वास्तरयोशान कहते हैं। वे सब प्रकार की सेवा करते हैं।

रोजिस्तारान् को पहलवी में होथशान् कहते हैं। वे विविध प्रकार के उद्यम और कृषि कार्य करते हैं। इन समुदायों के अतिरिक्त तुझे और कोई मनुष्य जाति न मिलेगा (अर्थात् इन चार वर्णों में समस्त मनुष्य जाति आ जाती है)

आर्यों की चारों वर्णों की व्यवस्था से अभिज्ञ ऐसा कौन पुरुष हो सकता है जो पारसी ग्रन्थों में लिखित उपर्युक्त वर्ण विभाग की उत्पत्ति वेदों से न माने ?

इसी सम्बन्ध में यह कथन करना भी मनोरंजक होगा कि वैदिक धर्म के अनुयायी द्विजों (अर्थात् पूर्व के तीन वर्णों) की भाँति पारसियों के लिये भी यज्ञोपवीत धारण करने का विधान किया गया है, जिसे वे 'कुश्ती' कहते हैं। हम वेन्दिदाद से निम्न लिखित प्रमाण देते हैं :—

"जरदुश्त ने अहुरमजदा से पूछा हे अहुरमजदा! किस अपराध के कारण अपराधी मृत्यु दण्ड पाने के योग्य होता है? अहुरमजदा ने कहा— 'बुरे मत वा धर्म की शिक्षा देने से' हे स्पितामा जरदुश्त! जो कोई तीन

+ जन्द 'अथ्वन्' = संस्कृत 'अथर्वन' देखो डाक्टर हॉग का लेख जो पहिले दिया जा चुका है।

Σ जन्द 'रथेस्त' = संस्कृत 'रथेष्ट' अर्थात् रथ में बैठने वाला वा योद्धा।

ऋतुओं तक पवित्र सूत्र (कुश्ती) नहीं धारण करता, गाथाओं का पाठ नहीं करता, पवित्र जल की प्रतिष्ठा नहीं करता इत्यादि।"*

पारसियों की कुश्ती सातवें वर्ष में होती। वैदिक धर्म में यज्ञोपवीत का समय आठवें वर्ष से आरम्भ होता है।

५—ईश्वर सम्बन्धी विचार

ईश्वर के सम्बन्ध में वैदिक और जरदुश्ती शिक्षाओं में समानता दिखाने के पूर्व उन भ्रमों को दूर कर देना आवश्यकीय समझते हैं जो अब तक वेदोक्त ईश्वर के सम्बन्ध में फैल रहे हैं।

वेदों पर प्रायः यह दोष लगाया जाता है कि वे बहुदेवोपासना, तत्व पूजा और प्रकृति पूजा आदि की शिक्षा देते हैं। यह दोषारोषण सर्वथा न्याय विरुद्ध है। इस भूल का कारण अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण आदि वैदिक शब्दों के दो भिन्न अर्थों का मिश्रित करना है। वैदिक निर्वचन का यह प्राचीन और सुनिश्चित सिद्धान्त है, जिसका महत्व जितना ही अधिक समझा जाय उतना ही अच्छा है।Σ वैदिक शब्दों के यौगिक अर्थ लिये जाने चाहिये। इस प्रकार वेदों में जो शब्द व्यवहृत हुये हैं उनके दो अर्थ होते हैं और कभी-कभी दो से भी अधिक। उदाहरणार्थ 'इन्द्र' शब्द जो इदि ऐश्वर्ये धातु से निकला है कम से कम तीन अर्थों में प्रयुक्त होता है। कभी उसके अर्थ सूर्य्य के होते हैं क्योंकि उसका प्रकाश ऐश्वर्य वा तेज युक्त होता है, कभी उसके अर्थ राजा के होते हैं जिनके अधिकार में सांसारिक ऐश्वर्य होता है और कभी-कभी उसके अर्थ ईश्वर के होते हैं जिसका अनुपम ऐश्वर्य है। स्वामी दयानन्द कृत सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास में इस विषय की पूर्ण व्याख्या की गई है। उसमें ग्रन्थकार ने ऐसे बहुत से शब्दों के यौगिक अर्थ देकर भली भाँति सिद्ध किया है कि

---

* वेन्दिदाद फर्गर्द १८

Σ इस विषय पर अधिक व्याख्या देखना हो तो पं० गुरुदत्त कृत Terminology of the Vedas & European Scholars नामक पुस्तक पढ़िये।

जब वे शब्द उपासना के विषय में प्रयुक्त होते हैं तो उन सबसे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर का ही बोध होता है। इन शब्दों में से कुछेक को उनके अनेक अर्थों सहित नीचे उद्धृत करते हैं :—

१—इन्द्र, (इदिं, ऐश्वर्ये धातु से)

= (१) सूर्य (२) राजा (३) परमेश्वर।

२—मित्र, (मिद, स्नेहने धातु से)

= (१) सूर्य्य (२) सखा (३) सबका मित्र परमेश्वर।

३—वरुण, (वृ—वरणे, ईप्सायाम् धातु से)

= (१) आकाश, (२) परमेश्वर जो महान् और सर्वोत्तम है।

४—अग्नि, (अंचु गति पूजनयोः धातु से)

= (१) अग्नि या उष्णाता जो शीघ्रता पूर्वक गमन करती है,

(२) सर्वव्यापक और उपासनीय परमेश्वर।

५—वायु, (वा-गति गन्धनयोः धातु से)

= (१) हवा (२) परमेश्वर जो सबसे अधिक बलवान् है।

६—चन्द्र (चिदि, आह्लादे धातु से)

= (१) चन्द्रमा जिसे देख सब आनन्दित होते हैं

(२) सर्वसुखों का दाता परमेश्वर।

७—यम, (यम उपरमे धातु से)

= (१) राजा (२) सबका शासक।

८—काल, (कल संख्याने धातु से)

= (१) समय (२) परमेश्वर जो सबकी गणना करता है।

९—यज्ञ, (यज देव पूजा 'सङ्गतिकरण दानेषु धातु से)

= (१) उपासना या आहुति देने की प्रक्रिया, (२) परमेश्वर जो पूजा के योग्य है।

१०—रुद्र, (रुदिर अश्रुविमोचने धातु से)

= (१) राजा जो दुष्टों का दमन करता है (२) ईश्वर जो दुष्टों को दण्ड देता है।

और भी शब्द हैं जो वेदों में साधारणतया ईश्वर के लिये प्रयुक्त होते हैं, परन्तु पाश्चात्य विद्वान् अपने हृदयों पर पुराणों की कथा, वर्त्तमान समय के हिन्दुओं के मिथ्या भ्रम और मूर्त्ति पूजा का कुप्रभाव पड़ने के कारण बहुधा उन्हें विविध देवताओं के अर्थ में लेते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव प्रसिद्ध शब्द इसी प्रकार के हैं जो हिन्दुओं के देवालय में तीन प्रधान देवताओं के लिये आते हैं। सुविज्ञ पाठकों को यह बताने की आवश्यकता नहीं कि ऐसे विचार वेदों से सर्वथा बाहर हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती उपर्युक्त नामों की निम्न प्रकार व्युत्पत्ति और व्याख्या करते हैं :—

ब्रह्म—(बृहि वृद्धौ धातु से) परमात्मा जो बड़ा है।

विष्णु—(विष—विष्लृ व्याप्तौ धातु से) ईश्वर जो समस्त वस्तुओं में व्यापक है।

शिव—(शिव कल्याणे धातु से) ईश्वर जो सब भलाइयों का कारण है।

शंकर—का शब्दार्थ 'वह जो कल्याण करता है'।

महादेव—का शब्दार्थ 'देवों में बड़ा' है।

गणेश—का 'शब्दार्थ गणों का स्वामी' है।

ये समस्त शब्द एक ईश्वर का ही बोध कराते हैं। इस बात की पुष्टि वेदों की आन्तरिक साक्षी से होती है। हम यहाँ ऋग्वेद का मन्त्र उद्घृत करते हैं।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः
स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद्विप्राः
बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

ऋ० वे० मं० १ सू० १६४ मन्त्र ४६॥

उस एक अविनाशी ब्रह्म को जो दिव्य स्वरूप, उत्तम गुणों से युक्त परमात्मा है विद्वान् लोग बहुत से नामों से पुकारते हैं, जैसे इन्द्र

(ऐश्वर्य्य युक्त) मित्र (सब का सखा) वरुण (सर्वोत्तम), अग्नि (सब का उपास्य) यम (सब का राजा) मातरिश्वा (सब से बलवान्) ।

उसी वेद के दूसरे स्थान में हम पाते हैं :—

सुपर्णं विप्रा कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति

ऋ० मं० १० सू० ११४ मं० ५।

विद्वान् और बुद्धिमान पुरुष अनेक गुण युक्त एक परमेश्वर की सत्ता को अनेक प्रकार से वर्णन करते हैं।

यजुर्वेद में फिर हम पढ़ते हैं:—

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद् वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥

यजुर्वेद अध्याय ३२ मं १।

"वह अग्नि (उपासनीय) है, वह आदित्य (नाशरहित) है, वह वायु (अनन्त बल युक्त) है, वह चन्द्रमा (हर्ष का देने वाला) है, वह शुक्र (उत्पादक) है, वह ब्रह्म (महान्) है, वह आपः (सर्वव्यापक) है, वह प्रजापति (सब प्राणियों का स्वामी) है।"

उपर्युक्त विचार की पुष्टि नीचे लिखी ब्राह्म साक्षी से भी होती है:—

कैवल्योपनिषद् में लिखा है:—

स ब्रह्मा स विष्णुः स रुद्रः स शिवः सोऽक्षरः स परमः स्वराट् । स इन्द्रः स कलाग्निः स चन्द्रमाः ॥

कैवल्योपनिषद्

वह ब्रह्म (महान्) है, वह विष्णु (सर्वव्यापक) है, वह रुद्र (दण्ड देने वाला) है, वह शिव (सब आनन्द और भलाइयों का मूल) है। वह अक्षर (अविनाशी) है, वह सबसे अधिक उच्च और सबसे अधिक दीप्तिमान् है, वह इन्द्र (ऐश्वर्यवान्) है, वह कलाग्नि (पूजनीय

और सबकी गणना करने वाला) है, वह चन्द्रमा (आनन्द का देने वाला) है।

फिर मनुस्मृति में लिखा है:—

प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि
रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम्।
एतमग्निं वदन्त्येके मनुमन्ये प्रजापतिम्।
इन्द्रमेकेऽपरे प्राणमपरे ब्रह्मशाश्वतम्॥

मनु १२-१२२-२३

मनुष्य को चाहिये कि परमेश्वर को जाने, जो सबका शासक, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, प्रकाशयुक्त और केवल ध्यान द्वारा जानने योग्य है। कोई उसे अग्नि (पूजा के योग्य) कोई मनु (मनस्वी) कोई प्रजापति (सब प्रजा का स्वामी) कहाता है, कोई उसे इन्द्र (ऐश्वर्यवान्) कोई प्राण (जीवनमूल) और कोई उसे सनातन ब्रह्म कहता है।

इस विषय में भ्रम फैलाने का सबसे अधिक प्रभावपूर्ण कारण 'देव' या उससे निकले हुये देवता शब्द का अशुद्ध अर्थ है। स्वामी दयानन्द सरस्वती के 'देव' शब्द के शुद्ध अर्थ और विद्वत्ता पूर्ण व्याख्या करके सर्व साधारण को हलचल में डालने से पूर्व यूरोप में संस्कृत के विद्वानों का यह ढंग था कि वे देवता शब्द का अर्थ सदैव 'ईश्वर' किया करते थे। वेदों में बहुत सी वस्तुओं को देव या देवता के नाम से विशेषित किया है। इसलिये यह सहज ही में कल्पना कर ली गई कि वेद अनेक ईश्वरों में विश्वास रखने की शिक्षा देते हैं। समस्त संस्कृत साहित्य में अन्य किसी एक शब्द के अनुवाद ने इस सनातन और महान् धर्म्म के किसी महत्वपूर्ण विषय पर इतना भ्रम नहीं फैलाया जितना कि उपर्युक्त शब्द के अनुवाद ने।

देव शब्द दिव प्रकाशने ‡ धातु से निकला है अतएव उसका अक्षरार्थ चमकीली या प्रकाश युक्त वस्तु है और इसी कारण उसका गौण व रूढ़ि अर्थ वह वस्तु है जो दिव्य गुण रखती है। इसलिये सूर्य्य, चन्द्र, और सृष्टि की अन्य शक्तियाँ अर्थात् अग्नि, वायु आदि के लिये देवता शब्द का प्रयोग किया गया है। हम यजुर्वेद में पढ़ते हैं:—

अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवतादित्या देवता मरुतो देवता विश्वे देवा बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता।

यजु० १४-२०

इस विषय में स्वामी दयानन्द सरस्वती के लेखों ने समस्त विचारों की काया पलट दी है। प्रो० मैक्समूलर अपने एक सबसे पिछले ग्रन्थ में अर्थात् India: what can it teach us? में जिसमें स्वामी दयानन्द के विचारों का प्रभाव स्पष्ट रूप से झलक रहा है।—स्वीकार करते हैं। "कोष हमें बतलाते हैं कि देव के अर्थ ईश्वर और देवताओं के हैं। निस्सन्देह ऐसा है भी—परन्तु यदि हम वेदों के मन्त्रों में देव शब्द का उल्था सदैव (God) परमेश्वर करें तो वह भाषान्तर न होकर वैदिक कवि के विचारों का रूपान्तर करना होगा। प्रारम्भ में देव के अर्थ 'प्रकाशयुक्त' के थे। अतएव वह निरन्तर आकाश, नक्षत्र, सूर्य, उषा, दिन, बसन्त ऋतु, नदी और पृथ्वी के लिये प्रयुक्त होता था और

---

‡ दिव धातु के अति साधारण अर्थ चमकने के हैं परन्तु उसका प्रयोग १० भिन्न अर्थों में होता है। व्याकरण के आचार्य पाणिनी जी कहते हैं:—

"दिवु क्रीड़ा विजिगीषा व्यवहार द्यु ति स्तुति मोद मद स्वप्न कान्ति गतिषु, क्रीड़ा, विजय कामना व्यवहार, द्यु ति, स्तुति, मोद, मद, स्वप्न, कान्ति, गति प्राप्ति के अर्थों में दिव धातु व्यवहृत होता है।

जब कोई कवि सब वस्तुओं को एक शब्द में, जिसे हम सामान्य संज्ञा कहते हैं वर्णन करना चाहता था तो वह उन सब को देव कहता था।"*

वे फिर लिखते हैं—"हमें कभी नहीं भूलना चाहिये कि प्राचीन धार्मिक गाथाओं में जिन्हें हम देवता कहते हैं, वे वास्तविक और जीवित व्यक्ति न थे जिनके विषय में हम कह सकें कि वे ऐसे या वैसे थे। देव जिसका अनुवाद कि हमने ईश्वर किया है केवल गुण वाचक संज्ञा है। वह ऐसे गुणों को प्रकट करता है जो अन्तरिक्ष और पृथ्वी में, सूर्य्य और नक्षत्रों में, उषा और समुद्र में समान हैं अर्थात् प्रकाश।"+

इसलिये हम प्राचीन ऋषियों को केवल इस कारण कि वे ऊपर लिखे भौतिक पदार्थों को देवता के नाम से विशेषित करते हैं बहु ईश्वर वादी अथवा प्रकृति पूजक नहीं कह सकते। यदि हम ऐसा कहें तो उस मनुष्य को भी ऐसाही कहना होगा जो सुर्य्य और चन्द्रमा को प्रकाश युक्त कहता है अथवा प्रकाश युक्त अकाश या चमकती हुई विजय आदि का वर्णन करता है।

यास्कमुनि जिनकी प्रमाणिकता वेद विषय पर सब से अधिक मानी जाती है और जा वेदिक कोष (निघण्टु) और। वैदिक निर्वचन शास्त्र (निरुक्त) के सुप्रसिद्ध कर्त्ता हुये हैं। देव शब्द की व्याख्या और भी अधिक विस्तृत अर्थों में करते हैं।

वह देव शब्द की इस प्रकार निरुक्ति करते हैं:—

देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानो वा भवति। निरुक्त ७। १५।

जो हमें किसी प्रकार का लाभ पहुंचाता है, जो वस्तुओं को प्रकाशित कर सकता है या उन पर प्रकाश डाल सकता है और जो प्रकाश का मूल स्रोत (वा स्थान) है वह 'देव' है।

---

* India : What can it teach us ? page 218.

+ Ibid p. 159-160.

अतएव देव शब्द अनेक और वस्तुओं के लिये प्रयुक्त होता है। हम यहाँ उसके कुछ विशेष अर्थों का उल्लेख करते हैं:—

(१) वह माता पिता के लिये व्यवहृत होता है क्योंकि वे हमको असीम लाभ पहुँचाते हैं। तैत्तिरीयोपनिषद् में माता, पिता, आचार्य देव कहे गये हैं:—

मातृदेवो भव पितृदेवो भव आचार्य्य देवो भव। तैत्तिरीय उपनि० अनु० ११।

२—वह विद्वान् पुरुषों के लिये भी आता है क्योंकि अनेक आत्मा प्रकाश युक्त होते हैं, और वे अनेक बातों पर प्रकाश डालते हैं। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है '-विद्वाँसोहि देवाः"—विद्वान् पुरुष देवता है।

३—उसका इन्द्रियों के लिये भी प्रयोग किया जाता है, क्योंकि उनके द्वारा हमें भौतिक (दृश्यमान) जगत का ज्ञान होता है। उदाहरणार्थ यजुर्वेद में लिखा है।

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्व मर्षत्। यजु० अ० ४ मं० ४।

परमेश्वर एक है वह गतिशील नहीं तथापि उसकी गति मन से भी अधिक है। यद्यपि वह पूर्व से ही इन्द्रियों में है तथापि इन्द्रियाँ (देव) उस तक नहीं पहुंच सकतीं। फिर मुण्डकोपनिषद् में पढ़ते हैं:—

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा। ज्ञानप्रसादेन विशुद्ध सत्त्वस्ततस्तु तं पश्यतु निष्कलं ध्यायमानः॥ मुण्डक २, ८

परमेश्वर नेत्र या वाणी अथवा अन्य इन्द्रियों (देवों) के द्वारा नहीं जाना जाता और न तप वा कर्मों से प्राप्त होता है। प्रत्युत जो मनुष्य विशुद्ध भाव से उसका ध्यान करता है वह ज्ञान की शान्ति ज्योति से उसका दर्शन करता है।

४—हमारे पाठकों में से बहुत से इस बात को जानते होंगे कि प्रत्येक वैदिक मन्त्र का एक देवता होता है। यूरोपीय संस्कृत विद्वान् इससे उस देवता विशेष का अर्थ लेते हैं जिसे उस मन्त्र में सम्बोधित किया गया है। विविध मन्त्रों के विविध देवता होने के कारण यह कल्पना कर ली गई है कि वैदिक ऋषि बहुत से देवताओं को पूजने और सम्बोधन करने वाले थे। परन्तु यह बहुत बड़ी भूल है। यास्कमुनि कहते हैं:—

अथातो दैवतं तद्यानि नामानि प्राधान्यस्तुतीनां देवतानां तद्दैवमित्याचक्षते । सैषा देवतोपपरीक्षा यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामर्थ पत्यमिच्छन् स्तुतिम् प्रयुक्ते तद्दैवतः स मन्त्रो भवति ॥ निरुक्त ७ । १

इसका यह भावार्थ है कि मन्त्र के देवता से उस विषय का ग्रहण करना चाहिये जिसकी उसमें व्याख्या की गई है। "India : What can it teach us ?. नामक पुस्तक में जिससे हम पूर्व भी उदाहरण दे चुके हैं। प्रो० मोक्षमूलर स्वीकार करते हैं कि—यदि हम उन वस्तुओं को, जिनका वर्णन वैदिक मन्त्रों में किया गया है, देव या देवी कहते हैं तो हमें एक प्राचीन हिन्दू धर्मवेत्ता (प्रकट रूप से उनका अभिप्राय यास्कमुनि से हैं) की बात स्मरण रखनी चाहिये कि मन्त्र के देवता से निर्वाचित विषय के अतिरिक्त और कुछ अभिप्राय नहीं है।"*

५—देव शब्द परमेश्वर के लिये भी आता है, जो सब वस्तुओं का प्रकाशक, समस्त प्रकाश और ज्ञान का मूल स्रोत और उन सब वस्तुओं का प्रदाता है जिनका हम संसार में उपभोग करते हैं, परन्तु उसका अर्थ सदैव ईश्वर ही नहीं होता। वस्तुतः जैसा कि प्रोफेसर मोक्षमूलर

* India : What can it teach us ? p. 147.

मानते हैं देव शब्द वस्तुवाचक नहीं प्रत्युत गुणवाचक है। अतएव इसका प्रयोग उन समस्त वस्तुओं के लिए हो सकता है जिसमें उसके निर्वाचित गुण पाये जाते हैं जैसे प्रकाश लाभ पहुँचाना, चमकाना, अथवा किसी वस्तु पर प्रकाश डालना आदि।

अब पाठक गण देख सकेंगे कि यदि पुराने आर्य्य लोग सूर्य, चन्द्र, आकाश, समुद्र, पृथ्वी, अन्तरिक्ष को देवता कहते थे तो इससे यह न समझना चाहिये कि उन्हें ईश्वर मानते थे अथवा उनकी पूजा करते थे। ये सब तथा बहुत सी और भी वस्तुएँ ईश्वर के समान देवता के अर्थों के अन्तर्गत आ जाती हैं; परन्तु इन सब में से केवल एक ईश्वर ही पूजने के योग्य है। यजुर्वेद स्पष्ट रीति से कहता है:—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥

यजुर्वेद ३१। १८

हम उस परमात्मा को जानें जो पूर्ण प्रकाश स्वरूप और अन्धकार से परे है। केवल उसी का ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकता है। इसके अतिरिक्त मुक्तिका दूसरा मार्ग नहीं है।

शतपथ ब्राह्मण में हमें स्पष्ट और जोरदार शब्दों में बतलाया गया है:—

योऽन्यां देवतामुपासते न स वेद यथा पशुरेव सदेवाम्॥
शतपथ कां० १४ अ० ४

जो किसी दूसरे देवता की पूजा करता है वह नहीं जानता, वह विद्वानों के मध्य पशुवत् है।

हम यहाँ ऋग्वेद से कुछ मन्त्र उद्धृत करते हैं जिनसे प्रकट होगा कि वेद में कितनी स्पष्ट और युक्ति संगत रीति से विशुद्ध और पूर्ण ईश्वरवाद की शिक्षा दी गई है:

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथ्वीं द्यामुतेमां कस्मैदेवाय हविषा विधेम ॥१॥
य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्यच्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम
॥ २ ॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा
विधेम ॥ ३ ॥

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः ।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहु कस्मैदेवाय हविषा विधेम॥४॥
येन द्यौरुग्रा पृथ्वी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।
योऽन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मैदेवाय हविषा विधेम ॥५॥
यं क्रन्दसी अवसातस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसारेजमाने
यत्राधिसूर उदितो विभाति कस्मैदेवाय हविषा विधेम ॥६॥
आपोह यद् बृहतीर्विश्वमायन् गर्भं दधानाः जनयन्तीरग्निम्
ततो देवानां समवर्त्ततासुरेकः कस्मैदेवाय हविषा विधेम ॥७॥
यश्चिदापो महिनापर्यपश्यद् दक्षं दधानाः जनयन्तीर्यज्ञम् ।
यो देवानामधिदेव एक आसीत् कस्मैदेवाय हविषा
विधेम ॥ ८ ॥

मानोहिंसज्जिनिता यः पृथिव्या यो वा दिवम् सत्य-
धर्माजजान ।

यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मैदेवाय हविषा विधेम ॥९॥
प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयोरयीणाम् ॥१०॥
ऋ० वे० मं० १० सू० १२ मं० १—१०

आरम्भ काल में ईश्वर था जो प्रकाश का मूल है। अखिल विश्व का वही एक स्वामी था। उसीने पृथ्वी और आकाश को स्थिर कर रक्खा था। वही है जिसकी हमें प्रार्थना करनी चाहिये।

जो आत्मिक ज्ञान और बल का देने वाला है, संसार जिसकी पूजा करता है, जिसकी आज्ञा का पालन सब विद्वान् लोग करते हैं, जिसकी शरण अमरत्व है, जिसकी छाया मृत्यु है उसी देव की हम उपासना करें।

जो अपनी महत्ता के कारण इस चराचर जगत् का एक मात्र राजा है, जो दुपाये और चौपायों का उत्पादक और स्वामी है उसी देव की उपासना करें।

हिमवान पर्वत और जल से भरे समुद्र जिसके महत्व की घोषणा करते हैं, ये दिशायें जिसकी भुजा हैं, उसी देव की हम उपासना करें।

जिसने इतने बड़े आकाश को धारण किया हुआ है, और पृथ्वी को अचल कर रक्खा है, जिसके द्वारा स्वर्ग और मोक्ष स्थित हैं जो समस्त अन्तरिक्ष में अपने आत्मबल से व्याप्त है, उस देव की हम उपासना करें।

जिसको ओर पृथ्वी और अन्तरिक्ष देखते है क्योंकि वे उसी की रक्षा में स्थित और उसी की इच्छा से परिचालित होते हैं जिसमें सूर्य्य उदय होता और चमकता है उसी देव की हम उपासना करें।

जिस समय इस विस्तृत प्रकृति वा उपादान कारण ने, जो अग्नि दशा में था तथा जो विश्व को अपने ग़र्भ में धारण किये था—अपने आपे को

प्रकट किया उस समय वही समस्त प्रकाशवान् पदार्थों (देवों) का जीवन था उसी देव को हम उपासना करें।

जिसने अपनी महत्ता से उस फैले हुये उपादान कारण को जिसमें उष्णता और * शक्ति धारण की हुई थी और जिससे यह सृष्टि प्रादुर्भूत हो रही थी, देखी जो समस्त प्रकाश युक्त पदार्थों (देवों) का एक मात्र 'अधिदेव है उसी देव की उपासना करें।

जो पृथ्वी का उत्पादक है और जिस सत्य नियम वाले ने आकाश को भी पैदा किया है और जिसने विस्तृत और प्रकाश युक्त उपादान का प्रादुर्भाव किया है, वह हमें दुःख न पहुँचावे, उसी देव को हम उपासना करें।

हे विश्व के स्वामी ! तेरे अतिरिक्त इन उत्पन्न हुये पदर्थों को वश में रख कर शासित करने वाला कोई दूसरा नहीं है। जिन वस्तुओं की कामना में हम तेरी उपासना करते हैं वह हमारी हों और हम संसार के समस्त उत्तम पदार्थों के स्वामी हों।

---

* इस मन्त्र और इससे पहले मन्त्र में विश्व की प्रकीर्णावस्था की ओर संकेत है। हम इस विषय पर आगे चलकर विचार करेंगे। (देखो इस अध्याय का अंश ७ सृष्टि उत्पत्ति) 'आप' शब्द आपॢ' धातु से निकला है जिसके अर्थ व्यापक होना या फैलना है। अतएव हमने इसके अर्थ फैले हुये उपादान कारण वा प्रकृति के किये हैं। 'दक्षदधानः' उष्णता और शक्ति रखने वाला तथा 'जनयन्तीर्यज्ञम्, सृष्टि उत्पन्न करने वाले ये वाक्य जो इस मन्त्र में आये हैं और गर्भं दधानः विश्व को अपने गर्भ में धारण करने वाला, और जनयन्तीरग्निम्' अग्नि या आग्नेयावस्था को पैदा करने वाला-जो वाक्य इससे पूर्व के मन्त्र में आये है। इनसे स्पष्ट प्रकट है कि 'आप' से यहाँ जल का अभिप्राय नहीं प्रत्युत उपादान कारण प्रकृति से है, जो सृष्टि से पूर्व परमाणुरूप से फैली रहती है। (जल को भी आप इसी कारण कहते हैं कि उनमें फैलने का गुण है)।

इन दस मन्त्रों के सूक्त में 'एक' शब्द चार बार से कम व्यवहृत नहीं हुआ। यदि पाठक गण ईश्वर के अद्वितीय होने में इससे अधिक स्पष्ट, असंदिग्ध, सुन्दर और प्रौढ़ वर्णन की खोज दूसरे धर्म ग्रन्थों में करेंगे तो खोज निष्फल होगी।

जब कभी वेदों या उपनिषदों के एक या दो वाक्य जिन में ईश्वर के एकत्व का वर्णन होता है, पाश्चात्य विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत किये जाते हैं तो वे झट कह उठते हैं * कि ये 'अद्वैतवाद' की शिक्षा देते हैं, एक ईश्वरवाद की नहीं और इनका अर्थ यह है कि केवल एक ईश्वर है, दूसरी कोई वस्तु नहीं, यह नहीं है कि परमेश्वर एक है दूसरा परमेश्वर नहीं अर्थात् ऐसे वाक्यों का अभिप्राय अद्वैतवाद परक हैं। एक ईश्वर-वाद परक नहीं। हमें खेद है कि ग्रन्थ के प्रकृत विषय से हम अधिक दूर नहीं जा सकते। हम इस बात का निर्णय पाठकों के ऊपर छोड़ते हैं कि इन मन्त्रों को जिनमें परमेश्वर को विश्व का विधाता और स्थिर रखने वाला, समस्त विश्व का एक मात्र राजा, स्वर्ग को व्यवस्थित रखने वाला, अमरत्व का प्रदान करने वाला और हमारी पूजा के योग्य वर्णन किया गया है। किसी प्रकार भी अद्वैतवाद की शिक्षा देने वाला समझा जा सकता है? अब हम अथर्ववेद के कुछेक मन्त्रों को प्रो० मोक्षमूलर के भाष्य सहित नीचे उद्धृत करते हैं :—

---

* उदाहरणार्थ मि० जे० मरडक Mr. J. Murdoch अपनी वैदिक हिन्दूइजम (रीलिजन रिफार्म सीरीज तृतीय भाग) में कहते हैं :—अद्वैतवाद और बहु-ईश्वरवाद की शिक्षा का कभी कभी संमिश्रण कर दिया जाता है, परन्तु यथार्थ में एक ईश्वर की पूजा हिन्दू धर्म में नहीं पाई जाती। छान्दोग्य के "एकमेवाद्वितीयंब्रह्म' (ईश्वर एक है बिना दूसरे के वाक्य को केशवचन्द्र सेन ने ग्रहण कर लिया था परन्तु इसके यह अर्थ नहीं है कि कोई दूसरा ईश्वर नहीं है। प्रत्युत ये हैं कि अन्य दूसरी वस्तु नहीं है जो सर्वथा सिद्धान्त है।"

बृहन्नेषामधिष्ठाता अन्तिकादिव पश्यति ।

यस्तायन् मन्यते चरन् सर्वं देवा इदं विदुः ॥ १ ॥

यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति योनिलायम् चरति यः प्रतङ्कम् ।

द्वौ संनिषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद्वेद वरुणस्तृतीयः ॥ २ ॥

उतेयं भूमिर्वरुणस्य राज्ञ उतासौ द्यौर्बृहती दूरे अन्ता ।

उतो समुद्रो वरुणस्य कुक्षी उतास्मिन्नल्प उदके निलीनः ॥ ३ ॥

उत यो द्यामतिसर्पति परस्तान्न समुच्यातै वरुणस्य राज्ञः ।

दिवस्पशः प्रचरन्ति दमस्य सहस्राक्षा अति पश्यन्ति भूमिम् ॥ ४ ॥

सर्वं तद्राजा वरुणो विचष्टे यदन्तरा रोदसी यत् परस्तात् ।

संख्याता अस्य निमिषो जनाना मक्षानिवश्वघ्नी निमिनोति तानि ॥ ५ ॥

येते पाशा वरुण सप्त सप्त त्रेधा तिष्ठन्ति विषितारुशन्तः ।

छिनन्तु सर्वें अनृतम् वदन्तः यः सत्य वाद्यति तं सृजन्तु ॥ ६ ॥

अथर्व कां० ४ सू० १६ ॥

इन सब का अधिष्ठाता वरुण* ऐसे देख रहा है, मानो वह समीप है यदि कोई मनुष्य खड़ा होता है, चलता है, छिपता है, या लेटने को जाता है, वा उठता है या दो मनुष्य परस्पर कानाफूसी या मन्त्रणा करते हैं तो राजा वरुण उसे जानता है, वह तीसरा वहां उपस्थित है। १—२

यह पृथिवी तथा विस्तृत आकाश जिसके सिरे बहुत दूर हैं राजा वरुण के अधिकार में है। दोनों समुद्र (आकाश और समुद्र) वरुण की कुक्षि हैं और वह पानी के इस छोटे से बिन्दु में भी व्याप्त है।

यदि कोई पुरुष आकाश से भी बहुत परे भाग जाय तो भी वह राजा वरुण से नहीं बच सकता। ३।

उसके गुप्तचर आकाश से संसार की ओर आते हैं और सहस्त्रों नेत्रों से इस पृथ्वी पर दृष्टिपात करते हैं। ४।

राजा वरुण उन सब को देखता है जो आकाश और पृथिवी के मध्य में है। आकाश इनसे भी परे है। उसने मनुष्यों के नेत्रों के पलक मारने की भी गणना कर ली है। खिलाड़ी के पांसा फेंकने के समान उसने समस्त बस्तुओं को अखण्ड रूप से स्थित कर रखा है। ५।

हे वरुण! तेरे भयानक पाश जो सात-सात और तीन-तीन करके फैले हुये हैं मिथ्यावादियों को फांस लें और सत्य बोलने वालों को छोड़ देवें। ६।

अब यह स्पष्ट हो गया है कि वेद विशुद्ध और पूर्ण एक ईश्वरवाद की शिक्षा देते हैं जो अद्वैतवाद के सिद्धान्त से उतनी ही भिन्न है जितनी वह ईश्वर के मानने वाले दूसरे धर्मों विशेषतः सैमेटिक Semitic अर्थात् यहूदी, ईसाई और मुहम्मदी मतों के ईश्वर वाद से। यहाँ हम इस बात को दिखलावंगे कि जब ईश्वर सम्बन्धी वेदों का ज्ञान एक मत से दूसरे मत में गया तो उसकी अवनति ही हुई, उन्नति नहीं। जैसी उसकी शिक्षा

* ईश्वर के नामों में से एक नाम जिसके अर्थ महान् और सर्वोत्तम है।

वेदों में दी गई वह उतनी ही उत्कृष्ट और पूर्ण है जितना मानवीय बुद्धि के लिये सोचना या समझना सम्भव है। जिन्दावस्ता में उस पर Anthropomorphism ईश्वर को मनुष्य के से गुण और स्वभाव वाला समझने की कुछ रंगत चढ़ जाती है। हम देखते हैं कि अहुरमजदा सतजरदुश्त से बातें और परामर्श करता है। इञ्जील और कुरान में वह सर्वथा मनुष्य के गुणों को धारण कर लेता है और परमेश्वर का इस प्रकार वर्णन किया जाता है कि मानों वह एक स्वेच्छाचारी सम्राट् है, जो मनुष्य के सभी भाव और विचार, त्रुटि और दूषणों के वशीभूत है। बाइबिल में हम ठंड के समय ईश्वर को 'अदन के बाग में टहलता हुआ' पाते हैं। वह 'आदम को पुकारता' है, जो उसकी पुकार को सुनता है। फिर वह आदम व हौआ को अपनी आज्ञा का उल्लंघन करने के लिये धिक्कारता तथा शाप देता है। हम उसको 'पश्चात्ताप करता हुआ' पाते हैं कि उसने पृथ्वी पर मनुष्य को क्यों बनाया और इससे उसे हार्दिक दुःख पहुंचा'। वह क्रोध पूर्वक कहता है कि 'मैं मनुष्य और पशु, रेंगने वाले जन्तु और हवा में उड़ने वाले पक्षियों को नष्ट कर दूंगा क्योंकि इस बात से मुझे पश्चात्ताप होता है कि मैंने उन्हें बनाया'। और वह अपने असहाय जीवों पर जल प्रलय भेजता है, परन्तु दूरदर्शिता के विचार से कि कहीं ऐसा न हो कि इन सबको नष्ट करके मुझे फिर पश्चात्ताप करना पड़े, वह नूह और उसके परिवार को बचा रखता है तथा उसे अपनी नाव में प्रत्येक प्रकार के जानवरों का एक एक जोड़ा रखने की आज्ञा देता है। जब जल बाढ़ समाप्त हो जाती है तो नूह उसके लिये अग्नि में आहुति देता है और ईश्वर 'सुगन्धि सूंघता है' और अब पूर्वापेक्षा अधिक शान्त अवस्था में होने के कारण अपने किये पर प्रकट रूप से पश्चात्ताप करता हुआ कहता है :—

'मनुष्य के लिये फिर मैं कभी पृथ्वी को न धिक्कारूंगा ? क्योंकि मनुष्य के हृदय को कल्पना लड़कपन के कारण बुरी होती है (मानो वह-पूर्व इस बात से अभिज्ञ ही न था) और जैसा कि मैंने किया है फिर

प्रत्येक जीवधारी को न नष्ट करूंगा।'*

यह चित्र है जो बाइबिल में ईश्वर का खींचा गया है। कुरान इस दुर्गति को—जो बाइबिल में ईश्वर की हुई है और भी अधोगति कर देता है। उसमें ईश्वर की तस्वीर इस ढंग की खींची गई है मानो वह एक बिलकुल स्वेच्छाचारी सम्राट है और वह भी अच्छे स्वभाव का नहीं। वह उस सिंहासन पर बैठता है जिसे अर्श मुअल्ला पर आठ फरिश्ते धारण किये हुए हैं। + वह काफिरों को शाप देता ‡ तथा उनसे युद्ध ठानता है और अपने अनुयायियों को भी वैसा ही करने का आदेश देता है ❡। वह ऐसी कड़ी शपथें खाता है जिनको खाना अपनी प्रतिष्ठा का विचार रखनेवाले बहुत ही कमलोग पसन्द करेंगे++। वह अपने आपको 'माकर' कहने तक नहीं हिचकता॥ जिस प्रकार उसकी शक्ति असीम है वैसेही उसकी महान् स्वेच्छाचारिता भी अनन्त है। कुरान कहता है—ईश्वर जिसे चाहता है बुरे मार्ग की ओर ले जाता है और जिसे चाहता है उसे सतपथ की ओर प्रेरित करता हैं **।'

दूसरा दोष जिससे वैदिक ईश्वरवाद सर्वथा मुक्त है और जो जन्दावस्था इञ्जील व कुरान के ईश्वरवाद पर धब्बा लगाता है प्रथम अध्याय में वर्णित किया जासका है, अर्थात् शैतान के व्यक्तित्व की शिक्षा चतुर्थ अध्याय के चौथे अंश में हल सिद्ध कर चुके हैं कि वह

---

* देखो बाइबिल उत्पत्ति की पुस्तक अ० ४, आयत ८-९, १ -१९।
अ० ६, आयत ६, ७, १३-२२। अ० ८ आ० २१।

\+ कुरान अध्याय ६९

‡ कुरान अध्याय २

—‡ कुरान अध्याय ४७

॥ कुरान अ० ३७, अ० ४२, अ० ७९, अ० ९१

\+ कुरान अ० ८

सिद्धान्त वेदों के एक अलङ्कार को ठीक न समझ कर निकाला गया है। जिसमें उस संग्रा काम वर्णन किया गया है जो संसार में प्रकाश और अन्धकार के बोच और भलाई और बुराई के बीच सदा होता रहता है। जन्दावस्ता में शैतान के लिये पुरुषभावारोपण का विचार अपूर्ण है उस जन्दावस्ता में 'आकम्‌मनो' (बुरा विचार) अंगरा मन्यु (अग्नेय या हानिकार मन), अज्हिदहक जलता हुआ सांप कहा गया है, परन्तु इंजील और कुरान में उसका व्यक्तित्व उतना ही वास्तविक हो जाता है जितना कि स्वयम् परमेश्वर का, यहां तक कि वह भौतिक रूप धारण कर लेता है और सांप * के रूप में मानव जाति के आदि कालीन माता पिता को छल कर उनसे ईश्वराज्ञा का उल्लंघन कराता है और इस प्रकार संसार में पाप का बीज बोता है जिसका परिणाम यह होता है कि आदम और हव्वा उस स्वर्ग से बाहर कर दिये जाते हैं जो ईश्वर ने उनके लिये रचा था Σ। वह ईश्वर के पुत्र और अवतार ईसामसीह तक को प्रलोभन देता हैं। ΣΣ

हम देखते हैं कि इञ्जील, कुरान और बाईबिल में जाने से वेदोक्त ईश्वरवाद में पवित्रता और उत्कृष्टता की न्यूनता ही हुई है अधिकता नहीं और जो कुछ यहाँ ईश्वर के सम्बन्ध में कथन किया गया है वह धर्म के अन्य महत्वपूर्ण विचारों के सम्बन्ध में भी यथार्थ है, क्योंकि परमेश्वर का विचार, उन चारों मतों का मूल सिद्धान्त है जिनके विषय में हम यहाँ लिख रहे हैं। धर्म रूपी नदी की धार अपने उद्गम स्थान के निकट स्वच्छ होती है जहाँ वह आकाश से गिरने वाले अत्यन्त श्वेत हिम से निकलती है। परन्तु जब वह नीचे आकर घाटियों और मैदानों में बहती है जहाँ उसमें किनारों की जमीन से आने वाला पानी मिल जाता है तो वह क्रमशः सर्वोत्तम प्रारम्भिक पवित्रता को खो बैठती है।

---

* उत्पत्ति का पुस्तक अ० ३, १

Σ वही पुस्तक अ० ३, २३-२४

ΣΣ मत्ती की इंजील अ० ४, १-११

उसके न्यूनाधिक गँदले पानी से प्यासों के सूखे होठ शीतलता का आस्वादन करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य के लिये बिलकुल जल न मिलने की अपेक्षा ऐसे जल का प्राप्त हो जाना भी उत्तम है। परन्तु क्या इस मैले जल को उस विशुद्ध निर्मल जल से तुलना हो सकती है जो आकाश से गिरे हुये हिम से बिना पार्थिव परमाणुओं के मल के निकल कर बहता है। ईश्वर ऐसा करे कि हम उस स्रोत के समीप पहुँचें और अपनी आत्मिक तृष्णा बुझाने के लिये उसके स्वर्गीय जल का पान करें। तथास्तु !

ऊपर के लेख से पाठकों को ईश्वर-सम्बन्धी वैदिक शिक्षा का कुछ ज्ञान होगा। चतुर्थ अध्याय में यह दिखाया गया है कि ईश्वर के सम्बन्ध में जरदुश्त का क्या विचार था। पाठक सुगमता से देख लेंगे कि (उपर्युक्त दो दूषणों को छोड़कर) अहुरमजदा का विचार वेदोक्त परमेश्वर के विचार से पूरी समानता रखता है। केवल दोनों विचारों में ही समानता हो सो बात नहीं प्रत्युत वेदों में जो नाम ईश्वर के लिये प्रत्युक्त हुये हैं उनमें से बहुत से शब्द जन्दावस्ता में भी व्यवहृत हुये हैं। स्वयं अहुरमजदा शब्द ही ऐसा है जो अवस्ता में ईश्वर के लिए अनेक बार आया है। यह शब्द वैदिक असुरमेव* से समानता रखता है। इसी प्रकार के निम्नलिखित शब्द भी हैं:—

संस्कृत		जन्द
अर्य्यमन्		ऐर्यमन्
मित्र		मिथ्
नाराशंस		नार्योसंह
वृत्रहन्		वृत्रघ्न
भग्	Bagha	बघ

* इसी अध्याय के अंश १ में असुर शब्द पर फुट नोट देखो।

इससे भी अधिक आश्चर्य युक्त यह बात है कि इनमें से अधिकतर शब्द ऐसे हैं जो जन्दावस्ता में भी उन्हीं दो अर्थों में व्यवहृत हुये हैं जिनमें कि वे वेदों में आये हैं। हम अर्यमन् शब्द के सम्बन्ध में डा० हॉग के लेख को उद्धृत करते हैं।

"दोनों धर्मों के ग्रन्थों में अर्यमन् दो अर्थों का बोधक है। (१) मित्र और साथी.........और (२) एक देव या आत्मा नाम (जिसे हमको ईश्वर या परमात्मा कहना चाहिये) जो विशेषतः विवाह का देवता है और उस अवसर पर ब्राह्मण तथा पारसी दोनों ही आह्वाहन करते हैं।"+

जन्द में मिथ् शब्द उन्हीं तीनों अर्थों में आता है जिनमें 'मित्र' शब्द वेदों में व्यवहृत हुआ है, अर्थात् सूर्य्य, सहायक और ईश्वर। फारसी का 'मिहिर' शब्द अब भी पूर्वोक्त दो अर्थों में प्रयुक्त होता है।

भग (जन्द बघ) ईश्वर और भाग्य इन दो अर्थों में प्रयुक्त होता है। वृत्रहन के भी दो अर्थ हैं अर्थात् (१) बुराई को नष्ट करने वाला ईश्वर और (२) अन्धकार को छिन्न-भिन्न करने वाला सूर्य्य।

नाराशंस के सम्बन्ध में डाक्टर हॉग कहते हैं:—नाराशंस (देखो यास्क निरुक्त ८. ६) और नर्योसंह एक ही है नरर्योसंह जन्दावस्ता में एक देव दूत का नाम है जो अहुरमजदा के सन्देश वाहक का कार्य करता है, (देखो वेन्दिदाद २२)। वेद मन्त्रों में इसी पद पर हम अग्नि और पूषण को पाते हैं। इस शब्द के अर्थ हैं "जो मनुष्यों से प्रशंसा किया गया हो" अर्थात् प्रसिद्ध। नाराशंसे (१) ईश्वर और (२) अग्नि इन दो अर्थों में आता है। पिछले अर्थ में नाराशंस या नियोंसंह दिव्य सन्देश-वाहक या दूत* कहाता है। क्योंकि अग्नि या अधिक समुचित

+ देखो Haug's Essays p. 273 (जो शब्द कोष्टक में हैं वे हमारे हैं)

* देखो यजुर्वेद २३, १७ जिसमें अग्नि या गरमी को दूत कहा गया है—
अग्निं दूतं पुरोदधे हव्यवाहमुपब्रु वे। देवान् आसादयादिह ॥
यजु० २३। १६।

शब्दों में उष्णता द्वारा जल वाष्प और अन्य पदार्थों के रस एक स्थान से दूसरे को जाते हैं। इसलिये अग्नि या उष्णता को प्रकृति या उसके स्वामी ईश्वर का दूत कह सकते हैं।

अंश ६—३३ देवता

हमारे कुछेक पाठकों ने वेदों के ३३ देवताओं के सम्बन्ध में सुना होगा कि जब भारतवर्ष में अवनत होते हुये वैदिक धर्म ने बहुईश्वरवाद का स्वरूप धारण कर लिया तो कदाचित् ये ३३ देवता ही बढ़ते-बढ़ते हिन्दू देवालय के ३३ कोटि देवता बन गये। वेदों के ३३ देवता क्या थे? क्या वे ३३ ईश्वर थे? कदापि नहीं। पण्डित गुरुदत्त की Terminology of the Vedas नामक पुस्तक में जो इस विषय की व्याख्या की गई है वह इतनी स्पष्ट और सुन्दर है कि हम उसका विस्तार पूर्वक यहाँ अनुवाद देते हुये क्षमा याचना की आवश्यकता नहीं समझते।

हम देख चुके हैं कि यास्क मुनि उन चीजों के नामों को (मन्त्रों का) देवता कहते हैं, जिनके गुण मंत्रों में वर्णित हैं। तो फिर देवता क्या पदार्थ है? वे समस्त वस्तुएँ जो मानवी ज्ञान का विषय हो सकती हैं, मनुष्य का सारा ज्ञान देश और काल इन दो बातों से घिरा हुआ है। हमारी कारण कार्य्य अभिज्ञता विशेषतः घटनाओं का नियम से संगठित होना। फिर हमारा ज्ञान किसी वस्तु का ज्ञान होना चाहिये उस वस्तु के लिये किसी स्थान का होना आवश्यकीय है। इस प्रकार हमारे ज्ञान की परिस्थिति देश और काल हैं। अब ज्ञान के आवश्यकीय अंगों के सम्बन्ध में विचार करते हैं। ज्ञान के सबसे अधिक विस्तृत भेद आन्तरिक और बाह्य हैं। जो कुछ मनुष्य देह के बाहर घटित होता है उसका ज्ञान बाह्य ज्ञान कहाता है। यह दृश्यमान् जगत् के विभव का ज्ञान है। विज्ञान वेत्ता लोग इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि प्राकृतिक विज्ञान अर्थात् भौतिक जगत् का विज्ञान दो वस्तुओं

के अस्तित्व को प्रकट करता है (१) प्रकृति वा उपादान कारण और (२) शक्ति। उपादान कारण का हमें स्वयमेव बोध नहीं होता। हम प्रकृति में केवल शक्ति के प्रकाश को देखते हैं, जिनसे, प्रत्यक्ष ज्ञात होता है। इस प्रकार बाह्य जगत का ज्ञान शक्ति और उसके परिवर्त्तनों का ज्ञान रह जाता है। अब हम आन्तरिक ज्ञान की ओर आते हैं। आन्तरिक ज्ञान का उल्लेख करने में सब से पूर्व मनुष्य की आत्मा जो चेतन सत्ता है। दूसरे आन्तरिक भाव जिनका मानवीय आत्मा को ज्ञान होता है। आन्तरिक भाव दो प्रकार के हैं। वे या तो आत्मा के स्वाधीन और ज्ञात कर्म वा ऐसे कर्म हैं जिनका उसे स्वयम् ज्ञान होता है और इसलिये जिन्हें हम चेष्टित कर्म कह सकते हैं, अथवा शरीर के ऐसे कर्म हैं जो आत्मा के शरीर में उपस्थित रहने से प्रादुर्भूत होते हैं। अतएव उन्हें हम जीवन सम्बन्धी कर्म वा प्राण नाम से पुकार सकते हैं।

इसलिये ज्ञेय पदार्थों का (a priori) विश्लेषण हमें ६ बातों की ओर ले जाता है, काल, देश, शक्ति, अथवा, प्राण और चेष्टित कर्म, ये वस्तुएँ देवता कहाने योग्य हैं। उपर्युक्त गणना से हमें यह परिणाम निकालना चाहिये कि निरुक्त में लिखा हुआ वैदिक देवताओं का ज्ञान यदि वास्तव में सत्य है तो हमें वेदों में काल, देश, शक्ति, आत्मा, प्राण और चेष्टित कर्म इन छः बातों का देवताओं के रूप में समावेश मिलना चाहिये अन्य किसी का नहीं। आओ इस कसौटी से परीक्षा करें:—

नीचे लिखे मन्त्रों में हम ३३ देवताओं का वर्णन पाते है :—

त्रयस्त्रिं शँतास्तुवत भूतान्यशाम्यन् प्रजापतिः परमेष्ठ्याधिपतिरासीत्। यजुर्वेद १४। ३१

यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अंगे गात्राविभेजिरे। तान्वै त्रयस्त्रिंशद्देवानेके ब्रह्मविदो विदुः। अथर्व० १०।४।२७

सबका स्वामी, विश्व का नियन्ता, सबको स्थिर रखने वाला ३३ देवताओं द्वारा सब वस्तुओं को ग्रहण किये हुये हैं॥ १॥ सच्ची ब्रह्म विद्या जानने वाले ३३ देवताओं को मानते हैं जो अपने-अपने कर्मों को यथाविधि करते हैं।

अब हम विचार करते हैं कि ये ३३ देवता क्या हैं, जिससे हम अपनी पूर्व विवेचना से तुलना कर सकें और इस समस्या की पूर्ति कर सकें।

शतपथ ब्राह्मण में लिखा है :—

सहोवाच महिमान एवैषामेते त्रयस्त्रिंशत्त्वेव देवाइति। कमते ते त्रयस्त्रि शदित्यष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशा-दित्यास्ता एकत्रिंशदिन्द्रश्चैव प्रजापतिश्च त्रयस्त्रि शाविति ॥ ३ ॥ कमते वसव इति। अग्निश्च पृथिवी च वायुश्चान्तरिक्षं चादित्यश्च द्यौश्च चन्द्रमाश्च नक्षत्राणि चेते वसव एतेषु हीदं सर्वं वसुहित मेते हीद ँ सर्वं वासयन्ते तद्यदिदं सर्वं वासयन्ते तस्माद्वसव इति ॥ ४ ॥

कमते रुद्रा इति। दशेमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशस्ते यदास्मान् मर्त्याच्छरीरादुत्क्रामन्त्यथ रोदयन्ति तद्यद्रोदयनित तस्माद्रुद्रा इति ॥ ५ ॥

कतम आदित्या इति। द्वादश मासाः संवत्सर स्यैता आदित्या एते हीद ँ सवमाददानायन्ति तद्यदिद ँ सव ताददानायन्ति तस्मादादित्या इति ॥६॥ कतम इन्द्रा कतमः प्रजापति रिति। स्तन यित्नुरेवेन्द्रो यज्ञः प्रजापतिरिति। कतमः स्तनयित्नु रित्यशनिरिति कतमो यज्ञ इति पशव इति ॥७॥

कतमे ते त्रयो देवा इतीम एव त्रयो लोका एषु हीमे सर्वं देवा इति। कतमौ द्वौ देवा वित्यन्नं चैव प्राणश्चैति। कतमो अध्यर्ध इति योऽयं पवते ॥८॥

तदाहुः यद्यमेक एव पवतेऽथ कथ मध्यर्ध इति यदस्मिनिद ँ सर्वं मध्याध्नोंत्तेनाध्यर्ध इति । कतम एको देव इति स ब्रह्मत्य दित्या चक्षते। शतपथ पृ० १४, १६

(देखो स्वामी दयानन्द सरस्वती की ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ ६६)

उपर्युक्त वचनों का अर्थ हैं कि याज्ञवल्क्य शाकल्य से कहते हैं— कि ये ३२ देवता परमेश्वर की महिमा का प्रकाश करते हैं। ८ वसु ११ रुद्र ११ आदित्य, इन्द्र और प्रजापति मिल कर सब ३२ हुये। ८ वसु ये हैं :—

अग्नि, पृथ्वी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ, चन्द्रमा, शरीर और नक्षत्र। ये वसु इस लिये कहाते है कि सब पदार्थ इन्हीं में बसते हैं और वह समस्त जीवित, गतिशील, सत्तात्मक पदार्थों के निवास स्थान हैं।

रुद्र ११ हैं १० प्राण जो मनुष्य देह को जोवित रखते हैं और ग्यारहवाँ आत्मा ये रुद्र कहलाते हैं क्योंकि जब वह शरीर का त्याग करते हैं तो वह मृतक हो जाता है और मृतक के सम्बन्धी प्राण निकल जाने के कारण रोते हैं। १२ आदित्य १२ सौर्य्य मास हैं जो समय की गति का परिमाण बताते हैं, उन्हें आदित्य इस लिये कहते हैं कि वे अपनी गति से समस्त पदार्थों में परिवर्तन कर देते हैं और इसी लिये उनके द्वारा प्रत्येक वस्तु की अवधि को समाप्ति हो जाती है। आदित्य उन्हें कहते हैं जो ऐसी अवधियों को समाप्ति करते हैं। इन्द्र सर्वव्यापक विद्युत् या शक्ति का नाम है। प्रजापति यज्ञ है (अर्थात् मनुष्य का विविध पदार्थों को शिल्प-कला सम्बन्धी उद्देश्य पूर्ति के लिये इच्छापूर्वक एकत्र करना अथवा अन्य पुरुषों के साथ अध्ययन वा अध्यापन के लिये सहयोग करना) उसके अर्थ पशु (उपयोगी जानवरों) के भी हैं। यज्ञ और उपयोगी पशु प्रजापति इस लिये कहाते हैं कि ऐसे कार्यों और

ऐसे पशुओं से ही संसार साधारणतया अपनी स्थिति की सामग्री ग्रहण करता है। शाकल्य ऋषि पूछते हैं कि ३ देवता कौन से हैं। याज्ञवल्क्य जी उत्तर देते हैं कि वे तीन लोक हैं (अर्थात् स्थान, नाम और जन्म) उन्होंने पूछा कि दो कौन से है। याज्ञवल्क्य ने कहा कि प्राण (संयोजक पदार्थ) और अन्न (विभाजक पदार्थ)। वह पूछते है अध्यर्द्ध क्या है ? याज्ञवल्क्य उत्तर देते हैं कि वह विश्व की पालन करने वाली विद्युत् है, जो संसार की स्थिति स्थिर रखती तथा सूत्रात्मा कहाती हैं। अन्त में उन्होंने पूछा कि एक देव कौन सा है ? याज्ञवल्क्य उत्तर देते हैं कि एक उपासनीय परमेश्वर है।

इन ३३ देवताओं का वेदों में वर्णन है। अब हमें यह देखना चाहिए कि यह व्याख्या हमारी पूर्व कृत विवेचना से कहाँ तक मिलती है। शतपथ के गिनाये हुए ८ वसु स्पष्ट रूप से स्थानों (वा देश) के नाम हैं। ११ रुद्रों में प्रथम आत्मा है और दूसरे १० प्राण हैं। १२ आदित्यों में काल आ जाता है। विद्युत् वह शक्ति है जो सब में व्याप्त है और प्रजापति (पशु और यज्ञ) में हम साधारण दृष्टि से आत्मा के चेष्टित कर्मों को सम्मिलित मान सकते हैं।

इस प्रकार ३३ देवता हमारी स्थूल विवेचना के ६ तत्वों से मिल जाते हैं, क्योंकि यहाँ विस्तार की यथार्थता दिखाने से हमारा अभिप्राय नहीं है जितना साधारण समानताओं का दिखाना इष्ट है। अतएव आंशिक भेद त्यागा जा सकता है। *

डाक्टर हॉग कहते हैं कि "वेदों के इन ३३ देवताओं की जन्दावस्ता (यास १। १०) के ३३ रतुओं से तुलना की जा सकती है। एक और स्थान पर डा० हॉग लिखते हैं कि वेद और जन्दावस्ता के देवताओं की गणना के सम्बन्ध में अत्यन्त आश्चर्य जनक समानता पाई जाती है।" +

---

* देखो पं० गुरुदत्त कृत Terminology of the Vedas and Europeon Scholars.

+ Haug's Essays p. 276.

जन्दावस्ता से यह प्रकट नहीं होता कि पारसी लोग ३३ देवताओं के यथार्थ्य को जानते थे। डा० हॉग इस बात को स्वीकार करते हुए लिखते हैं कि जन्दावस्ता में उनके पृथक-पृथक् भेदों के अनुसार उन्हें प्रकट रूप से नहीं गिनाया गया, जैसा वेदों में ३३ देवताओं को गिनाया गया है। अतएव हम कुछ निश्चय के साथ यह परिणाम निकाल सकते हैं कि ३३ रतु ईश्वरीय सत्ताओं की गीनती करने के लिये केवल एक वाक्य रह गया था, जो प्राचीन होने के कारण पवित्र समझा गया और जिसके प्रयोग तथा वास्तविक अथ ईरानियों को ब्राह्मणों से पृथक् होने के पश्चात् नहीं ज्ञात रहे।" *

७—सृष्टि-उत्पत्ति

प्रकृति और जीवात्मा का अनादि होना और सृष्टि का प्रवाह से अनादि होना

यह विश्व किस प्रकार उत्पन्न हुआ ? यह प्रश्न है जिसका उत्तर देने का प्रयत्न प्रत्येक धर्म के लिये आवश्यक है।

बौद्ध-धर्म जो ईश्वर या सृष्टि कर्त्ता में विश्वास नहीं रखता, इस प्रश्न का केवल यह कहकर खण्डन कर देता है कि इस संसार का न कभी प्रारम्भ हुआ और न कभी अन्त होगा, अर्थात् यह संसार सदा से उसी दशा में चला आता है जिसमें वह अब है और अनन्त काल तक इसी दशा में रहेगा, परन्तु बौद्ध-धर्म का यह सिद्धान्त सर्वथा भ्रम पूर्ण है। वैज्ञानिक लोग बतलाते हैं कि एक समय था जब उष्णता की अधिकता के कारण पृथ्वी Molten State जल रूप थी अर्थात् जल के समान तई हुई थी। और वे यह भी बतलाते हैं कि यद्यपि भूगोल का बाहरी परत शीतल और ठोस हो गया है तथापि उसके भीतर अब भी बहुत गरमी है, जैसा कि इस घटना से प्रकट है कि ज्वालामुखी पर्वतों से जो वस्तुएँ

* I bid p. 276.

भूगर्भ के बाहर निकलता है वे सामान्यतः तप्त होती है। हमें यह भी बतलाया गया है कि जल वा तई हुई अवस्था में आने से पूर्व वह वायु-रूप Gaseous State में थी। वस्तुतः जब पृथ्वी इतनी उष्ण होगी तब न तो उस पर कोई जीवधारी रह सकता था और न वनस्पति ही उग सकती थी।

जिन विविध अवस्थाओं में पृथ्वी को अपने विकास चक्र में होकर निकलना पड़ा है और जिसे पाश्चात्य विज्ञान द्वारा हाल ही में जाना गया है उसका वर्णन प्राचीन वैदिक साहित्य में पूर्व ही किया जा चुका है। आधुनिक विज्ञान वायु अवस्था पर ही ठहर जाता है परन्तु हमारे शास्त्र उससे भी एक पग पीछे जाते हैं और एक पाँचवीं अवस्था का वर्णन करते हैं, जिसका नाम आकाश है जो वायु से भी अधिक सूक्ष्म है और किसी ग्रह वा खगोल के विकास की प्रथम अवस्था है। तैत्तिरियोपनिषद् में लिखा है :—

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथ्वी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधिभ्योऽन्नम्। अन्नाद्रेतः। रेतसः पुरुषः। तै० उपनि० ब्रह्मानन्दवल्ली अनुवाक २।

जिस समय परमात्मा ने विश्व की रचना प्रारम्भ की, सबसे पूर्व आकाश हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से औषधि, औषधियों से अन्न, अन्न से वीर्य्य और वीर्य्य से पुरुष हुआ।

विज्ञान हमें यह भी बतलाता है कि सूर्य्य की उष्णता दिन प्रतिदिन कम हो रही है और अन्त में वह एक दिन इतना शीतल हो जायगा कि जैसा हमारा भूगोल या चन्द्रमा शीतल है। इससे स्पष्ट है कि उस समय हमारी पृथ्वी मनुष्य या अन्य जीवधारियों का निवास स्थान न रह

सकेगी। और न उस पर कोई वनस्पति उग सकेगी। यही दशा सूर्य मण्डल के अन्य ग्रहों की होगी।

निदान भौतिक विज्ञान की अन्वेषणा ने यह बात सिद्ध कर दी है कि एक समय था जब विविध प्रकार के पशु और वनस्पति जो सम्प्रति पृथ्वी पर निवास करते और उगते हुये पाये जाते हैं, मौजूद न थे। एक ऐसा समय आवेगा जब जीवन के यह रूप धरातल से विलीन हो जावेंगे। यह बात सूर्य के चारों ओर घूमने वाले अन्य ग्रहों के सम्बन्ध में भी सत्य है। अतएव बौद्धों का सिद्धान्त निराधार हो जाता है और प्रश्न बना रहता है कि वह कौन है जिसने इन समस्त परिवर्त्तनों को किया या कर रहा है। कौन है जो इस अनन्त आकाश में पृथ्वी और असंख्य लोकों को विकास क्रम की अवस्था में होकर जल रूप से ठोस वा दृढ़ करता गया उस पर रहने वाले विविध प्रकार के प्राणियों को उत्पन्न करता और फिर विकृतावस्था में घूमाता हुआ प्रलय दशा की ओर ले जाता है? हम उत्तर देते हैं कि वह ईश्वर है।

वैदिक शिक्षा बतलाती है कि अभाव से भाव नहीं हो सकता और जो वस्तु है उसका अभाव नहीं हो सकता। भगवद्गीता के निम्नलिखित श्लोक में यह बात स्पष्ट रीति से कही गई है :—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्व दर्शिभिः।

गीता अ० २ श्लोक १६।

कभी असत् का भाव और सत का अभाव नहीं हो सकता। इन दोनों का निर्णय तत्व दर्शियों ने जाना है। सांख्य सूत्र भी बताता है— "नावस्तुनो वस्तु सिद्धिः" अविद्यमान पदार्थ से कोई वस्तु उत्पन्न नहीं हो सकती। प्रकृति और जीवात्मा निर्लेप एवं तात्विक वस्तु हैं। वे किसी और वस्तु से मिलकर नहीं बने, न वे अभाव से उद्भूत हुए। अतएव वे

अनादि पदार्थ हैं जो सदैव रहते हैं और जिनका कभी अभाव नहीं होता।*

इस प्रकार वैदिक तत्ववाद ३ पदार्थों को अनादि मानता है अर्थात् ईश्वर, जीव और प्रकृति। ऋग्वेद में यह बात भली भाँति स्पष्ट की गई है :—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥
ऋ० वे० मं० १ सू० १६४ मं० २०।

जैसे दो समान आयु वाले और मित्रता युक्त पक्षी एक वृक्ष पर बैठते हैं इसी प्रकार दो अनादि और मित्रता युक्त आत्मा (अर्थात् जीवआत्मा) और परमात्मा अनादि प्रकृति में रहते हैं। इन दोनों में से एक (अर्थात् जीवात्मा) इस प्रकृति रूपी वृक्ष के फल को चखता है (अर्थात् दुःख सुख भोगता है जो भौतिक शरीर में बँधने का परिणाम है) और दूसरा (अर्थात् परमात्मा) इसके फल को न खाता हुआ (अर्थात् दुःख सुख न भोगता हुआ) सब कुछ देखता हुआ प्रकाशमान् हो रहा है।

इस सिद्धान्त के विरुद्ध बहुधा यह आक्षेप किया जाता है कि इसका अर्थ तीन अथवा एक से अधिक ईश्वर में विश्वास रखना है। यह

---

* साधारणतया यह आक्षेप किया जा सकता है कि यह शिक्षा परमेश्वर की सर्वशक्तिमत्ता को परिमित करती है, परन्तु यह निर्बल और अनुचित है। यदि कोई यह आपत्ति उठा सकता है कि परमेश्वर सर्वशक्तिमान नहीं है क्योंकि यह अभाव से भाव को उत्पन्न करने की शक्ति नहीं रखता तो यह भी कहा जा सकता है कि परमेश्वर सर्व शक्तिमान् नहीं है क्योंकि वह दो और दो पाँच नहीं कर सकता। अथवा चतुष्कोण वृत्त नहीं बन सकता। सर्व शक्तिमत्ता का यह अर्थ नहीं है कि वह उसके करने की भी योग्यता रखता हो जिसका होना असम्भव है।

आक्षेप इतना दुर्बल है कि उसका गम्भीरता पूर्वक खण्डन करने की आवश्यकता नहीं। तीनों पदार्थों में अनादित्व समान हैं। परन्तु शेष गुण ऐसे नहीं जो सबके लिये एक से हों। प्रकृति वास्तव में जड़ और निष्क्रिय है परन्तु ईश्वर और जीव चेतन हैं। ईश्वर और जीव में भी ईश्वर अनन्त और जीव परिमित है। ईश्वर समस्त आकाश में भरा हुआ और सम्पूर्ण वस्तुओं में व्यापक है। जीवात्मा एक छोटे से शरीर में बन्धा हुआ है। ईश्वर दुःख सुख से परे, परन्तु जीव उसके अधीन है। ईश्वर सर्वज्ञ है, किन्तु जीव अल्पज्ञ। ऐसी दशा में क्या यह आक्षेप हो सकता है कि यह प्रकृति और जीव को ईश्वर मानने के समान हैं। क्या ईश्वरत्व अनादित्व का पर्य्याय है? क्या परमेश्वर का गुण केवल अनादित्व ही है।

ईश्वर संसार का मूल कारण और प्रकृति उसका उपादान कारण है। ये दोनों अनादि हैं और इसी प्रकार जीव भी।

परन्तु यह सृष्टि जिसमें हम रहते हैं अनादि वा अनन्त नहीं है (जैसा कि बौद्धों का विचार है)। उसका आरम्भ हुआ है और अन्त भी होगा। जितने समय तक एक सृष्टि स्थित रहती है उसका नाम कल्प है और अलंकार रूप से उसको ब्राह्मदिन भी कहते हैं। वह हमारे ४,३२,००,००,००० साधारण वर्षों के बराबर होता है। इस सृष्टि से पूर्व और पश्चात् भी इतना ही बड़ा समय होता है जिसमें उपादान कारण प्रलीन अवस्था में पड़ा रहता है उसे ब्राह्मरात्रि कहते हैं। कारण रूप से कार्य्य रूप में आने का नाम सृष्टि है और फिर उसका कारण रूप में लीन हो जाना प्रलय कहाता है।

अभाव से सृष्टि उत्पत्ति होना अथवा उसका सर्वथा अभाव हो जाना दोनों ही असम्भव बातें हैं। इस सृष्टि की उत्पत्ति के पूर्व उपादान कारण प्रलीन अवस्था में था और उससे पूर्व दूसरी सृष्टि थी। उस सृष्टि से पूर्व फिर वही प्रलीन दशा और दशा से पूर्व फिर सृष्टि

निदान अनादि काल से ऐसा ही क्रम चला आता है। इसी प्रकार वर्त्तमान सृष्टि की भी दशा होगी। इसके पश्चात् प्रलय होकर फिर सृष्टि रची जायगी और यही क्रम अनन्त काल तक चला जायगा। जिस प्रकार दिन के बाद रात्रि और रात्रि के पश्चात् दिन आता है उसी प्रकार सृष्टि और प्रलय का अनादि अनन्त चक्र सदा चलता रहता है।

पाठकों को यह बताने की आवश्यकता नहीं कि परमेश्वर के साथ जीव और प्रकृति को अनादि मानना तथा सृष्टि क्रम को प्रवाह से अनादि समझना आर्य्य तत्व ज्ञान का प्रधान सिद्धान्त हैं। सेमी मत (अर्थात् यहूदी, ईसाई और मुहम्मदी मत) इसके विपरीत शिक्षा देते हैं। उनके मतानुसार यह सृष्टि सबसे प्रथम और अन्तिम है। वह एक विशेष समय पर अभाव से उत्पन्न हुई और जब प्रलय का समय आवेगा फिर अभाव को प्राप्त होजायगी; परन्तु इस सर्वनाश में आत्माएँ बची रहेंगी। कुछ उनमें से स्वर्ग को भेज दी जावेंगी और कुछ नरक को जहाँ वे अपने कर्मानुसार अनादि काल तक रहेंगी।

यह बात कि कोई वस्तु अभाव से सत्तावान हो सकती है और फिर अभाव में परिणत हो सकती है, न केवल बुद्धि, विज्ञान के विरुद्ध है प्रत्युत उसके मानने वालों को अनेक कठिन प्रश्नों का सामना करना पड़ेगा, जैसे परमेश्वर इस विश्व को एक विशेष समय पर क्यों अभाव से भाव में लाया और फिर वह उसे क्यों एक नियत अवधि के पश्चात् नष्ट कर देगा? अपने शान्ति अस्तित्व में परिवर्त्तन करने की ओर उसे किसने प्रेरणा की? जिस समय विशेष पर यह सृष्टि उत्पन्न की गई उससे पूर्व उसे उसके पैदा करने की इच्छा क्यों न हुई? हमारे जो मित्र उपर्युक्त सिद्धान्तों को मानते हैं वे इन और ऐसे ही अन्य प्रश्नों के उत्तर में केवल यही कह देते हैं कि ये 'रहस्य' हैं। इस "रहस्य" शब्द से इन मतों की बहुत त्रुटियों को आच्छादन करने में में सहायता मिली है। वैदिक फिलॉसफी की दृष्टि से न तो यह प्रश्न उठते हैं और न उठ सकते हैं। क्योंकि ऐसा कोई समय न था जब पहले पहल

ईश्वर ने सृष्टि की रचना की। यह बात भी उल्लेखनीय है कि सेमी सिद्धान्त के अनुसार सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व और प्रलय के पश्चात् परमेश्वर में उन गुणों का सिद्ध करना कठिन कार्य होगा जो सामान्यतः उसके सम्बन्ध में कहे जाते हैं। इस सृष्टि से पूर्व उसको स्रष्टा कैसे कहा जा सकता था, जब उसने इस संसार से पूर्व कोई वस्तु उत्पन्न ही नहीं की थी और उसे सर्वज्ञ कैसे कहा जा सकता है, जब कोई दूसरी वस्तु ही उपस्थित न थी जिसको वह जाने। उसे न्यायकारी कैसे कह सकते हैं क्योंकि जब कोई जीव ही न थे तो वह न्याय किसका करता। वह दयालु भी नहीं हो सकता क्योंकि कोई था ही नहीं जिस पर वह दया दिखाता और फिर इस बात को नहीं भूलना चाहिये कि वह समय जब से यह सृष्टि स्थित है वा जब तक रहेगी, अनन्त काल के सामने बहुत ही कम प्रत्युत कुछ भी नहीं है। एक जल विन्दु का समुद्र के सामने जिसका वह अंश है कुछ परिणाम हो सकता है परन्तु एक सप्ताह होने वाले समय का चाहे वह कितना ही लम्बा हो, अनादि अनन्त काल के सामने कुछ भी परिणाम नहीं हो सकता। इस विचार के अनुसार परमेश्वर को निर्विकार भी नहीं कह सकते, फिर क्या यह जानना अयुक्त नहीं हैं कि जिन जीवों का आदि है उनका अन्त नहोगा ?

परन्तु हम मूल विषय को छोड़ कर अन्यत्र जा रहे हैं। यहाँ हमारा उद्देश्य यह सिद्ध करना नहीं है कि वेदिक सिद्धान्त दूसरे धर्मों से उत्कृष्ट है प्रत्युत हमारा उद्देश्य वैदिक शिक्षा और जरदुश्ती शिक्षा के मध्य परस्पर सम्बन्ध दिखलाना है। यह सिद्ध किया जा सकता है कि पारसी धर्म ग्रन्थों में वे शिक्षाएँ पाई जाती है जिनका वर्णन ऊपर किया गया है। सासान प्रथम ने लिखा है :—"जीवात्मा, अप्राकृतिक, अखण्डनीय अनादि और अनन्त है"।

उपर्युक्त वचन की टीका करते हुए सासान पंचम जो पारसी धर्म ग्रन्थों का अन्तिम लेखक हुआ है पहले आत्मा को प्राकृतिक और अखण्डनीय सिद्ध करता है और फिर लिखता है :—

"इसके पश्चात् मैं कहता हूँ कि आत्मा अनादि और अनन्त है; क्योंकि प्रत्येक उत्पन्न हुई वस्तु से पूर्व उसका उपादान कारण (जिससे वह पैदा हुई) होना आवश्यकीय है। इस प्रकार यदि आत्माएँ अनादित्व और अनन्त नहीं हैं तो वे प्राकृतिक होनी चाहिएँ जिसका हम पूर्व ही खण्डन कर चुके हैं"। यही युक्ति उपादान कारण के आदित्व और अनन्तता सिद्ध करने के लिये दी जा सकती हैं।

सृष्टि और प्रलय के चक्र की शिक्षा का वर्णन भी स्पष्टतया किया गया है। पारसी धर्म ग्रन्थों में सृष्टि को (उसके पश्चात् होने वाले प्रलय सहित) "मिहचर्ख" कहा गया है, जो संस्कृत के महाचक्र से निकला है। हम सासान प्रथम में पाते हैं :—

"मिहचर्ख" के आदि में सृष्टि के बनने का कार्य्य नवीन प्रकार से प्रारम्भ होता है। रूप, क्रिया और ज्ञान जो इस मिहचर्ख में प्रादुर्भूत होते हैं वे सर्वथा वैसे ही होते हैं जो पूर्व के मिहचर्ख में प्रकट हो चुके हैं। प्रत्येक भावी मिहचर्ख आदि से अन्त तक अपने पूर्व के मिहचर्ख के सदृश होता है।

उपर्युक्त लेख पर सासान पंचम निम्न लिखित टीका करता है :—

"मिहचर्ख के आदि तत्वों का मिलना आरम्भ होता है और उस समय जिन वस्तुओं का प्रादुर्भाव होता है वे वचन और कर्म में पूर्ववर्त्ती मिहचर्खों के समान ही होती हैं, परन्तु सर्वथा वे ही नहीं होतीं।"

इसके साथ ऋग्वेद के निम्न लिखित मन्त्र की तुलना की जा सकती :—

ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ततो रात्र्य-जायत। ततः समुद्रो अर्णवः समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत। अहो रात्राणि विदधद् विश्वस्य मिषतो वशी।

सूर्य्याचन्द्रमसौधाता यथा पूर्वमकल्पयत्। दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्ष मथो स्वः॥

ऋ० मं० १० सूक्त १९०। १

(सृष्टि विकास से पूर्व)

ईश्वर ने अपने ज्ञान पराक्रम से प्रथम अनादि उपादान कारण को प्रकट किया। उस समय दिव्य रात्रि थी, उसके पश्चात् आकाश वा अन्तरिक्ष की स्थापना की। आकाश स्थापित करके साँवत्सरिक गति पैदा की गई। फिर संसार को वश करने वाले परमात्मा ने दैनिक गति की उत्पत्ति की जिससे रात्रि और दिन होते हैं। संसार के धारण करने वाले ने सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी तथा आकाश के अन्य नक्षत्रों को उनके मध्यवर्त्ती अन्तरिक्ष सहित उसी प्रकार रचा जिस प्रकार कि उसने पूर्व कल्प में रचा था।

पारसी धर्म ग्रन्थों में सृष्टि उत्पत्ति विषयक बातें वैसे विस्तार पूर्वक नहीं लिखी गईं जैसी कि वैदिक पुस्तकों में, तथापि उपर्युक्त प्रमाण सिद्ध करते हैं कि पारसी मत की शिक्षाएँ वैदिक धर्म से ग्रहण की गईं। पिछले अध्याय के चतुर्थ अंश में हम पूर्व ही सिद्ध कर चुके हैं कि विविध वस्तुओं, आकाश, पृथ्वी, वनस्पति, पशु और मनुष्य की रचना का जो क्रम जन्दावस्ता में दिया गया है वह वही है जिसका वर्णन यजुर्वेद में आया है। सृष्टि उत्पत्ति सम्बन्धी मूसा का लेख जैसा कि पैदायश की किताब के प्रथम अध्याय में आया है जरदुश्ती सिद्धान्तों का अनुकरण मात्र है, परन्तु बाइबिल के कर्त्ताओं ने केवल इतना ही अंश लिया। यह ज्ञात होता है कि उन्होंने अपने विचारों को वर्तमान सृष्टि से आगे नहीं जाने दिया और न इस समस्या को सिद्ध करने का कष्ट उठाया कि इस संसार से पूर्व भी कोई संसार था अथवा नहीं, इसके नष्ट होने के

पश्चात् भी कोई संसार होगा वा नहीं। और न यह प्रकट होता है कि उन्होंने अपने आप यह प्रश्न किया हो कि यह संसार अभाव से उत्पन्न हुआ अथवा किसी ऐसे उपादान कारण से जो पूर्व ही से उपस्थित था। क्योंकि बाइबिल में इस सेमी सिद्धान्त का कि संसार शून्य से उद्भूत हुआ और पहली बार ही पैदा किया गया, कोई स्पष्ट वर्णन नहीं है। वस्तुतः यह ध्यान में रखने योग्य बात है कि 'हब्र' शब्द बार 'Bara' का जो पैदायश की किताब के प्रारम्भ में ही आया है और जिसका अनुवाद "उत्पन्न हुआ" किया गया है, शुद्ध अर्थ "काटा गया, किसी में से काट कर बनाया गया" है। उससे सिद्ध होता है कि पैदायश की किताब का कर्त्ता कदाचित उपादान कारण की सत्ता में विश्वास रखता था। पीछे जैसे-जैसे लोग वैदिक शिक्षा के मूल तत्व को भूलते गये, वैसे वैसे सामी मतों का यह विश्वास दृढ़ हो गया कि यह संसार सब से पहिला और सब से पिछला हैं और वह अभाव से पैदा हुआ तथा फिर भी सत्ता हीन हो जायगा। हम यह पूर्व ही बता चुके हैं कि यह अनुमान कितना अयुक्त और विज्ञान विरुद्ध है।

अब यह सुलभता पूर्वक सिद्ध हो जायगा कि बौद्धों का सिद्धान्त भी वैदिक शिक्षा से सम्बन्ध रखता है। बौद्ध सिद्धान्त वहाँ तक ठीक है जहाँ तक वह सृष्टि की अनादिता और अनन्तता का समर्थन करता है; परन्तु जब वह वर्त्तमान संसार का जिसमें हम रहते हैं आदि और अन्त होना नहीं मानता तो भूल करता है। सामी सिद्धान्त इसके ठीक प्रतिकूल हैं। उस अंश तक तो वह ठीक है जब तक उसका विश्वास है कि सृष्टि का आदि भी है और अन्त भी। परन्तु जब वह इस बात को नहीं मानता कि इस सृष्टि के उत्पन्न होने से पूर्व दूसरी सृष्टि थी अथवा इसके पश्चात् और संसार होगा तो वह भूल करता है। दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि बौद्ध और सामी दोनों मतों के विचार वहाँ तक तो ठीक है जहाँ तक वे मानते हैं परन्तु न मानने के अंश में वे ठीक नहीं रहते, दोनों ही अपूर्ण हैं। एक, एक बात में भूल करता है तो

दूसरा, दूसरी ओर चल कर रुक जाता है। दोनों एक दूसरे की पूर्ति करने वाले हैं वैदिक शिक्षा मूल सिद्धान्त है जिससे दोनों मत निकले हैं तथा जिसके दोनों ही पृथक और अपूर्ण अंश हैं।

८—पुनर्जन्म

मैं कहाँ से आया हूँ? कहाँ जाऊँगा? प्रश्न को सभी किसी समय करते हैं। ये जीवन सम्बन्धी वैसे ही प्रश्न हैं। जैसे कि पिछले अंश में सृष्टि सम्बन्धी प्रश्न दिये जा चुके हैं। उनका सम्बन्ध उपादान कारण से हैं इनका आत्मा से। वे भौतिक विज्ञान से सम्बन्ध रखते हैं और ये अध्यात्मिक ज्ञान से; परन्तु धर्म विस्तृत्त सीमा के अन्तर्गत दोनों ही हैं और प्रत्येक धर्म को उक्त दोनों प्रकार के प्रश्नों के उत्तर देना चाहिये।

सृष्टि सम्बन्धी प्रश्नों के समान ही इस विषय में भी वैदिक धर्म के उत्तर सामी मतों के सर्वथा विपरीत प्रतीत होंगे। वस्तुतः प्रस्तुत प्रश्नों में से प्रत्येक प्रश्न के उत्तर वैसे ही हैं जैसे उन्होंने सृष्टि सम्बन्धी प्रश्नों के सम्बन्ध में दिये थे।

हम देख चुके हैं कि वैदिक मत के अनुसार ऐसी ही अनन्त सृष्टियों में से वर्त्तमान सृष्टि भी एक है। उसी प्रकार हम यह भी मानते हैं कि हमारा वर्त्तमान जीवन असंख्य योनि चक्र के क्रम में से एक है। यहाँ यह आवश्यक नहीं कि पूर्व के समस्त जीवन मनुष्य जीवन ही रहे हों। उपादान कारण के समान आत्मा भी अनादि अनन्त है अथवा समुचित शब्दों में यह कहा जा सकता है कि वह अज और अमर है।

कठोपनिषद कहता है:—

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्। अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।

कठो० अ० १ व० १८॥

यह चतन आत्मा न पैदा होता और न मरता है। न वह किसी वस्तु से बनता है, न उससे कोई वस्तु बनाई जा सकती है। वह अज, अनादि, अनन्त और सनातन है! वह शरीर नष्ट होते समय नष्ट नहीं होता।

आत्मा का किसी शरीर विशेष से संयोग होना जन्म और उससे वियोग मरण कहाता है। आत्मा एक नाशवान् चोले को छोड़कर स्वकर्मानुसार मनुष्य, पशु और वनस्पतियों तक की योनि में जा सकता है। हम कठोपनिषद् से फिर उद्धृत करते हैं:—

हन्त त इदं प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनं।
यथा च मरणं प्राप्य आत्मा भवति गौतम॥
योनि मन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।
स्थाणु मन्येऽनुसंयन्ति यथा कर्म यथा श्रुतम्॥

कठवल्ली ५।६-७

हे गौतम! मैं तुझ पर वह सनातन और दिव्य रहस्य प्रकट करूंगा कि मरने पर आत्मा कहाँ जाता है? कुछ आत्माएँ अपने कर्म और ज्ञानानुसार दूसरे शरीर धारण कर लेती हैं और कुछ वनस्पति अवस्था में चली जाती हैं।

यह आवागमन का क्रम उस समय तक रहता है, जिस समय तक आत्मा अपने समस्त पापों से मुक्त हो योग द्वारा सत्य और पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर मुक्ति या निर्वाण पद प्राप्त करती तथा परमेश्वर से सहयोग करके पूर्णानन्द का उपभोग करती है।

जैसा कि पूर्व ही कहा जा चुका है सेमि मतानुसार संसार अपने ढंग का सबसे पहला और सबसे पिछला है। तदनुसार उन मतों का यह भी सिद्धान्त है कि हमारा वर्त्तमान जीवन इस प्रकार का एक ही जीवन है। आत्मा अपने भौतिक देह के साथ पैदा होता है, शरीर के साथ ही नष्ट नहीं होगा और न वह फिर शरीर ही धारण करेगा,

११

प्रत्युत मृतोत्थान के उस दिन तक अपने भाग्य के निर्णय की प्रतीक्षा करेगा, जिस दिन कि ईश्वर प्रत्येक आत्मा के लिये न्याय व्यवस्था देगा और कुछेक को सदैव के लिये स्वर्ग में और शेष को सदैव जलने वाली नरकाग्नि में भेजेगा।

सृष्टि सम्बन्धी प्रश्नों के समान ही इस सिद्धान्त के मानने वाले पुरुषों को अनेक कठिन प्रश्नों के उत्तर देने पड़ते हैं। ईश्वर ने अभाव से आत्मा को क्यों उत्पन्न किया और किसी को दुःखी और किसी को सुखी क्यों बनाया? यदि यह मान भी लिया जावे कि उसने आत्माओं को उत्पन्न किया तो उसने किसी-किसी को ही शारीरिक, मानसिक और सदाचारिक उत्तम गुण क्यों प्रदान किये? सबको क्यों नहीं? उसने किसी को बुरी दशा में क्यों रक्खा? दुःख, सुख और ज्ञान व आचार सम्बन्धी गुणों का विषम होना ऐसी सत्य घटना है कि उससे कोई इनकार नहीं कर सकता और वह इतनी स्पष्ट है कि कोई कितना ही तर्क करे उसकी यथार्थता को नहीं हटा सकता। यदि दण्ड वा उपहार योग्य आत्मा के पूर्व शुभाशुभ कर्म न थे तो क्या परमेश्वर अन्यायी है? जब हमारे मित्रों पर इस प्रकार के जटिल प्रश्नों का भार पड़ता है तो वे 'रहस्य' शब्द की शरण टटोलते फिरते हैं, जो इस प्रकार के बेंडे-ऐंडे प्रश्नों से त्राण पाने का सुगम मार्ग है।

यह सिद्धान्त अन्याय से प्रारम्भ होकर अन्याय पर ही समाप्त होता है। मनुष्य का जीवन चाहे जितना दुष्टता पूर्ण हो तथापि वह अन्याय की दृष्टि से अनन्तकाल के लिये नरक यन्त्रणा भोगने का भागी नहीं हो सकता। न्याय के साथ यदि दया को न भी सम्मिलित किया जाय तथापि आवश्यकता है कि दण्ड की मात्रा अपराध के अनुसार ही होनी चाहिए। एक दुष्टतापूर्ण जीवन में चाहे वह १०० वर्ष का ही माना जाय और अनन्त काल तक रहने वाली नरकाग्नि की कठोर यन्त्रणा में भला क्या सम्बन्ध हो सकता है? सदा के लिये दण्ड का विचार मात्र ही अत्यन्त भयावह और घृणास्पद है। इसमें आश्चर्य नहीं कि

इसी कारण बहुत से विचारशील ईसाइयों की आत्मा उससे विरोध करने लगीं। लूक + (Looke) जैसे कुछेक विद्वान् विचारकों ने यह उत्तर देकर छुटकारा पाया है कि पुण्यशील आत्मा अनन्त कालीन जीवनोपभोग करती हैं और पापात्मा नष्ट हो जाती है, अर्थात् उनका अस्तित्व ही नहीं रहता। क्या ही अच्छा उत्तर है? आत्मा का सर्वथा अस्तित्व हीन हो जाना उतना ही असम्भव है जितना अभाव से उसका उत्पन्न होना। इस उत्तर के अनुसार केवल नरक सम्बन्धी सिद्धान्त ही नहीं प्रत्युत आत्मा का अमरत्व भी कोरी कल्पना रह जाती है।

इसके अतिरिक्त क्या यह न्याय है कि जब उसका सारा भविष्य, नहीं नहीं अनन्त काल खतरे में हो, आत्मा को केवल एक ही परीक्षा का अवसर दिया जावे। इसे कोई अस्वीकार नहीं करता कि मनुष्य जीवन एक कठिन परीक्षण है। पद-पद पर प्रत्येक प्रकार के प्रलोभन हमारे मार्ग में उपस्थित होते हैं और बहुत से लोग सुलभतया उनके चंगुल में फँस जाते हैं। यहाँ तक कि ईसाई लोग संसार में इतने अधिक पापों का कारण बताने के लिए शैतान के व्यक्तित्व को और इस सिद्धान्त को मानना आवश्यक समझते हैं कि आदम के पाप करने से सब मनुष्यों के आत्मा में पाप का बीज आ गया। इस पर भी आत्मा को केवल एक बार ही परीक्षा का अवसर दिया जाता है, अधिक नहीं। यदि वह परीक्षा में सफल होकर निकल आती हैं तब तो अच्छी बात है नहीं तो उसके लिए अनन्त दुःख है; क्योंकि इस दशा में उसको अनन्त काल के लिए दण्डित किया जाता है और फिर उसको मुक्ति की कोई आशा नहीं रहती। पाठक गण! इसकी तुलना पुनर्जन्म सम्बन्धी वैदिक शिक्षा से कीजिए जिसके अनुसार भूली हुई

+ देखो Looke's Treatise on the Reasonableness of Christianity और Life of Looke by Thomas Fowler pp. 155-257.

आत्माओं को लघुतर श्रेणी के जीवों के शरीरों में नियत अवधि तक अपने कुकर्मोंका फल भोगना पड़ता है और जब वे अपने पापों से मुक्त हो जाती हैं तो फिर वे मनुष्य योनि में जन्म ग्रहण करती हैं। इस प्रकार उनको स्वतन्त्रता पूर्वक ज्ञान द्वारा सन्मार्ग या कुमार्ग ग्रहण करके मुक्ति के लिए प्रयत्न करने का नवीन रूप से अवसर दिया जाता है।

हम यह भी कहना चाहते हैं कि समस्त आत्माओं का साधारण दृष्टि से भलाई-बुराई की दो श्रेणियों में विभक्त करके उनमें से एक को सदा के लिए स्वर्ग भेज देने और दूसरी को नरकानल में झोंक देने से न्याय का पेटा पूरा नहीं होता। मनुष्यों के कर्म भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं और उनमें भलाई या बुराई की उतनी ही श्रेणियाँ हैं जितने कि मनुष्य हैं। उनके साथ न्याय पूर्ण और समुचित व्यवहार करने के विचार से यह आवश्यकीय है कि उपहार व दण्ड भी भिन्न-भिन्न प्रकार के हों और ऐसा होना पुनर्जन्म द्वारा ही सम्भव है, जिसमें सुख और दुःखों की असंख्य कक्षाएँ नियत की जा सकती हैं।

इस आवागमन की शिक्षा पारसी पुस्तकों में भी दी गई है, जैसा कि वैदिक धर्म में, होशंग में लिखा है:—"पुराना चोला छोड़कर नया शरीर धारण करना अनिवार्य है।" फिर 'नामा मिहाबाद' में हम पढ़ते हैं:—"अपने कर्म व ज्ञान के अनुसार प्रत्येक मनुष्य स्वर्ग व नक्षत्रों में स्थान पाता तथा वहाँ सदैव रहता है। जिसने अच्छे कर्म किए हैं और जो संसार में आना चाहता है, वह राजा, मन्त्री, शासक या धनी पुरुष का जन्म धारण करता है, जिससे वह अपने कर्मों का फल पा सके।" बाशदाबाद नबी की सम्मति है कि जो दुःख, शोक और रोग राजाओं को आनन्दोपभोग के बीच में सताते हैं वे उनके पूर्वजन्म कृत कुकर्मों का परिणाम होते हैं।

उपरोक्त लेख पर सासान पंचम टीका करते हैं कि "अशुभ कर्मों का अशुभ और शुभ कर्मों का शुभ फल भोगते हैं। क्योंकि यदि ईश्वर

कुकर्मों का दण्ड न दे या अपर्य्याप्त रूप से दे तो वह न्यायकारी नहीं हो सकता।"

मिह्रावाद से हम फिर उद्धृत करते हैं—जो लोग कुकर्मी हैं उन्हें पहले मनुष्य शरीर में ही दुःख दर्द का दण्ड दिया जाता है। उदाहरणार्थ रोग माता के गर्भ में तथा उससे बाहर पीड़ा, आत्मघात, क्रूर और हानिकारक जीवों द्वारा कष्ट पाना, मृत्यु, दारिद्र्य ये सब जन्म ग्रहण करने की तिथि से मरने तक अपने पिछले कर्मों के परिणाम हैं और यही बात वस्तुओं के उपभोग के विषय में सत्य है। (७०)

सिंह, चीता, बाघ, बघेरा, भेड़िया तथा समस्त क्रूर जीव, जो अन्य पशु, पक्षी, चौपाए और कीड़े-मकौड़ों को हानि पहुँचाते हैं, पहले प्रतिष्ठत और उच्च पदस्थ मनुष्य थे और वे पशु * जिन्हें अब ये मनुष्य मारते हैं उनके मन्त्री, सेवक और सहायक थे। ये लोग उनकी मन्त्रणा वा सहायता से बुरे कर्म करते तथा अनुपकारी और निरपराध जीवों के लिए दुःखदायी होते थे। अब वे अपने शासक और स्वामी के हाथों से दण्ड पा रहे हैं। (७१)

अन्त में ये जानवर जो किसी समय में उच्च पदस्थ थे, अब क्रूर पशुओं के रूप में कर्मानुसार किसी दुःख, दर्द या आघात से मर जाते हैं। यदि फिर भी उनके पापों का कोई अंश रहेगा तो वह अपने सहायकों सहित पुनः जन्म धारण कर दण्ड भोगेंगे। (७२)

उपरोक्त लेख पर टीका करते हुए सासान पंचम लिखते हैं :—"जब

* सम्भव है यह व्याख्या कोरी कल्पना प्रतीत होगी। कुछेक संस्कृत पुस्तकों में भी ऐसे ही अथवा इन से भी अधिक कल्पित व्याख्यान मिलेंगे, परन्तु वास्तव में वे पुनर्जन्म सिद्धान्त के आवश्यकीय अंग नहीं हैं और उनसे इस सिद्धान्त का महत्त्व कम न होना चाहिए जो ईश्वरीय न्याय को युक्त और तात्त्विक रीति से सिद्ध करता है और संसार में दुःख सुख के विषम विभाग का कारण बतलाता है।

तक पाप की मात्रा समाप्त न हो जायगी तब तक वह दण्ड भोगते ही रहेंगे, चाहे उसकी पूर्ति एक जन्म में हो वा १० और १०० में अथवा इससे भी अधिक में।"

मिहाबाद लिखता है :—

तुम जन्दवार जानवरों को मत मारो, अर्थात् ऐसे जानवरों को जो दूसरों को नहीं मारते अथवा हानि नहीं पहुँचाते. जैसे घोड़ा, गाय, ऊँट, खच्चर, गधा तथा अन्य इसी प्रकार के जन्तु। तुम उन्हें निर्जीव मत करो, क्योंकि सर्वज्ञ परमेश्वर ने उनके दण्ड का प्रकार दूसरा नियत कर दिया है और वह उनके पूर्व कर्मों का फल दूसरी रीति से भुगवाता है, जैसे घोड़े से सवारी का काम लिया जाय, और बैल, ऊँट, खच्चर और गधे बोझ ढोने के काम आवें। (७४)

यदि कोई समझदार मनुष्य जान बूझ कर जन्दबार जानवरों को मारता है और परमेश्वर या राजा से उसके लिये अपने जीवन में दण्ड नहीं पाता तो फिर वह दूसरे जन्म में उसका फल भोगता है। (७५)

जन्दवार जानवरों की हत्या करनी उतनी ही बुरी है जैसा किसी मूर्ख और निरपराध मनुष्य को मारना। (७६)

(क्योंकि मूर्ख मनुष्यों के समान) जन्दवार जानवर भी जो बोझा ढोने के काम आते हैं परमेश्वर के कोप से इस दशा को प्राप्त हुये हैं। (७७)

यदि तुन्दवार * जानवर अर्थात् जो दूसरे जानवरों को मारता अथवा कष्ट पहुँचाता है जन्दवार को मारे, तो यह मारे जाने वाले का

---

* युक्ति इस प्रकार है—तुन्दवार जानवर सिंह आदि विचार हीन होने के कारण अपने कर्मों के उत्तर दाता नहीं हैं। वे परमेश्वर के हाथ में दण्ड देने के अस्त्र के समान है। अतएव यदि तुन्दवार जानवर किसी जन्दवार को मारदे तो उसे ईश्वर की ओर से दण्ड समझना चाहिये परन्तु यदि कोई आदमी जन्दवार जानवर को मारदे तो ऐसी कल्पना न करनी चाहिये, क्योंकि मनुष्य विचारवान होने के कारण अपने कर्मों

दण्ड है जिसका रक्त बहाया गया उसके कार्यों का परिणाम है, जिसके प्राण लिये गये उसके कर्मों का फल है, क्योंकि तुन्दवार जानवर दण्ड देने के लिये बनाये गये हैं। (७६)

तुन्दवार जानवरों का मारना उचित और उपयोगी है, क्योंकि वे अपने अन्तिम और पूर्व जीवन में क्रूर तथा घातक (मनुष्य) थे और निरपराध जीवों की हत्या किया करते थे। जो उन्हें मारता है पुण्य कमाता है। मनुष्यों में जो लोग, मूर्ख, अज्ञानी और दुराचारी हैं वे अपनी मूर्खता, अज्ञानता और दुराचारिता का दण्ड वनस्पति के रूप में पाते हैं। (८०, ८१)

वे लोग जिनके आचार विचार बुरे हैं धातु * बनते हैं और जब तक प्रत्येक जीव के पापों का दण्ड नहीं मिल जाता कि कोई पाप शेष न रहे तब तक वे धातु बने रहते हैं। फिर क्लेश और अधःपतन सहन करने के पश्चात् पुनः मनुष्य देह प्राप्त करते हैं। तदुपरान्त फिर वे उन कर्मों का फल भोगेंगे जिन्हें वे मनुष्य योनि में करेंगे। (८३)

पिछले अध्याय के पाँचवें और छठे अंशों में हमने कहा था कि बाइबिल और कुरान ने स्वर्ग और नरक सम्बन्धी अपने विचार जन्दा-

---

का उत्तरदाता है, सो यदि वह जन्दवार को मारता है तो पाप करता करता है। वस्तुतः यह सिद्धान्त वही है जिसकी शिक्षा वैदिक धर्म में दी गई है। मनुष्य से नीची श्रेणी के जीव 'भोग योनि' कहाते हैं, अर्थात् वे योनि ऐसी हैं जिसमें जीवों को बुरे कर्मों का दण्ड दिया जाता है। इसके विपरीत मनुष्य 'कर्म योनि' में है अर्थात् वह न केवल अपने पिछले जन्म के भले बुरे कर्मों का फल भोगता है प्रत्युत जो कुछ इस जीवन में करता है उसका भी उत्तरदाता है। यह बात सासान प्रथम ८३ वचन में भी स्पष्टतया वर्णन की गई है।

* यह विचार कि आत्मा धातु का रूप भी ग्रहण करता है, वैदिक सिद्धान्त के अनुकूल नहीं है।

वस्ता से लिये हैं। यह ठीक है परन्तु हमें केवल यह स्मरण रखने की आवश्यकता है कि पारसियों का सातवाँ या सर्वोच्च स्वर्गधाम 'गरत्मान' अर्थात् 'प्रकाश गृह'* कहाता है, जिसमें अहुरमजदा, अमेश, स्पन्द तथा पवित्र लोगों की आत्माओं के साथ रहता है। यह बात वैदिक सिद्धान्त में मुक्ति के विषय में घटती है जिसमें जीवात्मा ईश्वर से संयोग करके पूर्णानन्द का उपभोग करता है। जरदुश्तियों के स्वर्ग के शेष दर्जे उन उच्च दशाओं के स्थानापन्न हैं, जिनमें होकर मनुष्य का आत्मा मुक्ति तक पहुंचता है और जो नरक के दर्जे कहे गये हैं उनसे उन नीच योनियों की ओर निर्देश किया गया है जो मनुष्य को आवागमन के चक्र में पड़ कर प्राप्त होती हैं। इस बात की पुष्टि दसातीर ने भली भाँति की है, सासान प्रथम कहते हैं—

"आत्मा एक शरीर से दूसरे में जाती है। जो लोग सब प्रकार के बुरे कर्मों से मुक्त होते हैं वे ईश्वर का दर्शन करते हैं। जिनके शुभ कर्म कुछ कम श्रेणी के होते हैं वे स्वर्ग में निवास करते हैं। जो और भी नीची श्रेणी के होते हैं वे एक भौतिक शरीर से दूसरे में जाते हैं।" इस पर सासान पंचम टीका करते हैं :—

"जो सबसे प्रथम और उच्च श्रेणी के अच्छे आदमी हैं तथा जो वचन और कर्म से पूर्णता को प्राप्त हो चुके हैं वे प्रकाशमय** जगत् को जाते हैं। उनसे दूसरे दर्जे पर वे लोग हैं जिन्होंने भौतिक सम्बन्ध से अपने को मुक्त कर लिया है, ये लोग उस स्वर्ग विशेष को जाते हैं जिससे उन्होंने सम्बन्ध पैदा कर लिया है और वे उससे सम्बन्ध रखने वाले ज्ञानानन्द को प्राप्त होते हैं। यदि जीवात्मा भौतिक सम्बन्ध से मुक्त नहीं होता और उसकी भलाई वा धर्म अधिक होता है तो वह एक मनुष्य

---

* वेदों में भी मुक्ति या स्वर्ग को स्वः द्यौः आदि प्रकाश बोधक नामों से पुकारा गया है।

** इसका वैदिक मुक्ति से सादृश्य जान पड़ता है और पारसियों का गैरत्मैन नामक यही सातवाँ आसमान है।

देह से दूसरे में जाता है यहाँ तक कि मुक्ति प्राप्त कर लेवे। यह चक्र फरहंगसार कहलाता है। बुरे कर्मों के कारण आत्मा मूक जानवरों की योनि ग्रहण करता है, यह नंगसार कहलाता है। कभी कभी वह वनस्पति में जाता है जिसको तंगसार कहते हैं। कभी-कभी वह धातु बन जाता है और इसको संगसार के नाम से पुकारते हैं। ये ही नरक के दर्जे या विभाग कहते हैं।" इससे स्पष्ट है कि जरदुश्तियों का नरक स्वर्ग सम्बन्धी विचार जैसा उनके सुप्रसिद्ध पारसी दस्तूरों ने लिखा है भौतिक अर्थों में नहीं समझना चाहिए। और वह किसी प्रकार आवागमन के सिद्धान्त के विपरीत नहीं है। यहूदी, ईसाई और मुसलमानी मतों में इस शिक्षा का यथार्थ और भी अधिक भूला दिया गया। वे पुनर्जन्म के सिद्धान्त को भूल गये और नरक स्वर्ग को आत्मा की दशा में न मानकर स्थान विशेष के नाम समझे जाने लगे।

६—मांस भोजन-निषेध

आवागमन में विश्वास रखने से स्वभावतः ही पशु जीवन के प्रति प्रतिष्ठा का भाव उत्पन्न होता है जिससे जीवों के प्राण पवित्र माने जाते हैं। इस परिणाम के उदाहरणार्थ हम पिछले अंश में उद्धृत किये हुये 'नामामिहावाद के ७४ से ७७ वचनों की ओर ध्यान दिलाते हैं'। कोई आश्चर्य की बात नहीं कि वैदिक और पारसी धर्म दोनों ही मांस भक्षण और रसना के स्वाद के निमित्त निरपराध पशुओं के वध का निषेध करते हैं। इसे सब कोई जानता है कि वैदिक धर्म में मांस खाने की आज्ञा नहीं, पारसी मत की पुस्तकें भी इसका खण्डन करती हैं। पाठकों के ध्यान में यह बात हमारे उद्धृत किए हुए मिहावाद के ७१-७६ वचनों पूर्व ही आ गई होगी। आगे चलकर वे लिखते हैं :—

"बहुत से विचारवान बनाए गए हैं तथापि वे बुरे कर्म करते हैं, जैसे वे मनुष्य जो निरपराध पशुओं का वध करके उनके मांस से अपने उदर की पूर्ति करते हैं।" (१३१)

फिर 'जवांशेर' में एक 'सम्मेलन' की बात लिखी है, जिसमें मनुष्य और जानवरों के प्रतिनिधि विवाद के लिये एकत्रित हुए थे।

उसमें लोमड़ी ने मनुष्य से इस प्रकार कहा—"जन्तु अन्य जीवों का हनन करने के लिये बाध्य हैं क्योंकि उनका प्राकृत भोजन मांस है। परन्तु मनुष्य को मांस खाने की आवश्यकता नहीं है। तब वह क्यों उनके जीवन का हरण करता है। तुम इस प्रकार के कार्य करने से पापी बन गए हो अतएव धर्मात्मा और ईश्वर भक्त पुरुष तुम से बहुत दूर भागते हैं।" मनुष्यों का प्रतिनिधि इसका उत्तर देने में असमर्थ रहा।

यद्यपि मांस खाने का निषेध किया गया है, परन्तु यह बात नहीं कि किसी प्रकार के जानवर का बध ही न किया जावे। वैदिक और पारसी दोनों धर्म हानिकारक और भयङ्कर जीवों को मारने की आज्ञा देते हैं। (देखो पूर्व के अंश में उद्धृत मिहावाद ८०)

१०—गौ की प्रतिष्ठा

इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दू और पारसी दोनों खेती और गृहस्थ सम्बन्धी कार्यों में उपयोगी होने के कारण, गाय के प्रति विशेष प्रतिष्ठा का भाव रखते हैं। जन्दावस्ता के निम्नलिखित वाक्य की अपेक्षा इस विषय में अधिक स्पष्ट एवम् ललित साक्षी और क्या हो सकती है?

"बैल में हमारी आवश्यकता है, बैल में हमारी वाक् शक्ति है, बैल में हमारी विजय है, बैल में हमारा भोजन * है, बैल में हमारा कृषि कर्म है जो हमारे लिये अन्न उपजाता है। (वहराम यश्त ६६)

गौ की पवित्रता के भाव की जड़ पारसी धर्म में वैदिक धर्म से भी अधिक गहरी है, क्योंकि उनके ईश्वरीय ज्ञान और जरदुश्ती मिशन से उसका घनिष्ट सम्बन्ध है। हम पादरी ऐल० ऐच० मिल्स लिखित यास्त

---

* इससे कोई यह परिणाम न निकाले कि प्राचीन पारसी लोग गोमांस खाते थे। उसके आगे का वाक्य इस बात को स्पष्ट कर देता है—"बैल में हमारी कृषि है जो हमारे लिए भोजन उत्पन्न करती है।"

२१ के भावार्थ से उद्धृत करते हैं—"गौओं की आत्मा पवित्र ईरानी लोगों के समुदाय को प्रतिनिधि स्वरूप होकर (क्योंकि उनकी उत्तम जीविका का एक मात्र साधन गौ ही थी) उच्चस्वर से पुकारती हैं और संकटापन्न लोगों की महान् आवश्यकताओं को प्रकट करती हुई अत्यन्त करुणा पूर्वक अहुर और उनके दिव्य सेवक अशा को सम्बोधित करती है।"×

"हे अहुर और अशा! तुम्हारे समक्ष गौओं ‡ (हमारे पवित्र पशु और जन समूह) की आत्मा पुकारती है—तुमने मुझे किसके लिये पैदा किया था? किससे बनाया था? मेरे ऊपर कोप और क्रूर शक्ति का आक्रमण होता है, मृत्यु को आघात पहुँचाया जाता है। ढीठ, दुष्ट और चोरों की शक्ति का आक्रमण किया जाता है। आपके अतिरिक्त मेरे पास दूसरा चारा नहीं। अतएव तुम मुझे खेतों में अच्छी कृषि करनी सिखाओ, मेरे भले की केवल यही आशा है।"

इस अवसर पर जरदुश्त भी आकर गौ की आत्मा के साथ उसकी विनती तथा प्रार्थना में सम्मिलित हो जाते हैं। तब अहुर उनको ऋषि या स्मृतिकार के पवित्र पद पर प्रतिष्ठित करता है।

इस बात को दर्शाने के लिये कि पारसी लोग गौ के कितने भक्त हैं, यह लिखना आवश्यक है कि गो मूत्र जो जन्द अवस्ता में गौमेज (सं० गोमेह) कहलाता है उनके संस्कार आदि कृत्यों में बहुत काम में लाया जाता है। डाक्टर हॉग इसके सम्बन्ध में बरशनीम नामक संस्कार का वर्णन करते हैं जो नौ रात्रि तक होता है और जिसमें संस्कार करने वाला गो मूत्र पीता है। वे आगे लिखते हैं—"यह प्रथा बहुत पुराने समय से चली आई है। जब कि प्राचीन आर्य्य गो मूत्र में रोग दूर

× देखो जन्दावस्ता भाग २ पृ० ३।

‡ डाक्टर हॉग इसका अर्थ 'पृथ्वी की आत्मा करते हैं। गो के अर्थ पृथ्वी और गाय के हैं' देखो ११ अंश।

करने और शुद्ध करने के गुण मानते थे" * हिन्दुओं के संस्कारों में पञ्चगव्य और गो मूत्रके उपयोग का वर्णन करते हुए डाक्टर हॉग लिखते हैं :—"यह प्रथा बहुत ही पुराने समय से चली आई है जब कि गोमूत्र सारे शारीरिक रोगों के लिये एक बड़ी प्रभावशाली ओषधि समझा जाता था। योरप के देशों में भी हमारे समय तक किसानों के वैद्य गो मूत्र और गोबर जैसी औषधियों का प्रयोग करते आये हैं।"

११—यज्ञ-क्रिया

ज्ञान काण्ड वा धार्मिक सिद्धान्तों से अब हम यज्ञ कृत्यों की ओर आते हैं। इस विषय में पारसी या वैदिक धर्म के मध्य जो समानता पाई जाती है वह वहुत ही आश्चर्य जनक है।

पिछले अध्याय के ७ वें अंश में हम पूर्व ही कह चुके हैं कि वैदिक कर्मकाण्ड में अग्नि होत्र की कितनी अधिक प्रधानता है। वह आर्यों के पंच नित्य कर्मों में से एक कर्म है। मनुष्य को जन्म से लेकर मरण पर्यन्त जो १६ संस्कार करने पड़ते हैं, प्रत्येक में उसका विधान किया गया है। हम यह बात भी बता चुके हैं कि पारसी लोग इस कृत्य को करने में कितने नियमित हैं, यहाँ तक कि उनका नाम ही अग्निपूजक हो गया।

दोनों धर्मों के कृत्यों की समानता उन नामों में भी पाई जाती है जो उनके लिये व्यवहृत होते हैं। हम डाक्टर हाँग का लेख उद्धृत करते हैं— "वेद और जन्दावस्ता को पढ़ने वाले लोगों को आरम्भ ही में ज्ञात होगा कि पुरोहिताई के कृत्यों के सम्बन्ध रखने वाले बहुत से शब्द एक हो हैं। जन्दावस्ता में पुरोहित के लिये अयूब शब्द आता है जिसका मिलान वेदों में अथर्वण से किया जा सकता है' इसके अर्थ अग्नि और सोम के पुरोहित के हैं। वैदिक शब्द इष्टि ....और आहुति की पहचान जन्दावस्ता के इश्ति और आजुति से होती है। दोनों धर्मों में वे मुख्य-

---

* देखो Haug's Essays p. 241, 242, 285,

मुख्य नाम एक ही है जो किसी बड़े यज्ञ का सम्पादन करते समय कतिपय पुरोहितों को दिये जाते हैं। ऋग्वेद का उच्चारण करने वाले होता और 'जोता' पुरोहित एक ही बात है। अध्वर्यु अथवा प्रबन्धकर्त्ता पुरोहित जो होता के लिये सब सामग्री संचित करता है वह रब्बी है जो अब रस्मी कहाता है। यह अब प्रधान पुरोहित या जोता का एक सेवक मात्र होता है।" *

यस्न शब्द संस्कृत 'यज्ञ' शब्द से पूर्णतया मिलता है। +

समानता की इति श्री यहीं नहीं हो जाती। डाक्टर हॉग साहब पारसी और इस देश के प्राचीन आर्यों में बहुत से मुख्य मुख्य यज्ञों में सादृश्य दिखाते हैं।

"ज्योतिष्टोम वा इजश्ने" यज्ञ में सोमलता के रस की आहुति देना सबसे अधिक महत्व की बात है। दोनों के यज्ञों में इस पौधे की डालियाँ प्राकृतिक रूप में उस पवित्र स्थान पर लाई जाती हैं जहाँ यज्ञ होता है वहाँ प्रार्थना पढ़ते हुये उसका रस निचोड़ा जाता है। रस निकालने की विधि तथा उसके लिये जो पात्र व्यवहृत होते हैं उनमें कुछ भेद हैं परन्तु यदि अधिक अन्वेषणा की जावे तो इन दोनों में भी वास्तविक समता पाई जाती है।"

"दर्श पौर्णिमाइष्टि (अमावस्या और पूर्णमास का यज्ञ) पारसियों के दारून Darun से मिलता हुआ मालूम होता है। दोनों बहुत साधारण हैं। ब्राह्मण लोग यज्ञ में विशेषतः पुरोडाश का उपयोग करते हैं और पारसी लोग 'पवित्र रोटियों' (दारून) का, जो पुरोडाश से मिलती हुई हैं।"

"चातुर्मास्येष्टि यज्ञ जो चार मास अथवा दो ऋतुओं के पश्चात् किया जाता है, पारसियों के 'गहन बार' से मिलता है जो वर्ष में ६ बार

---

* Haug's Essayasa p. 280

+ Ib'd 139.

होता है।" *

बहुत से दिद्वानों का कथन है कि वेद में पशु बध की आज्ञा है, यहाँ तक कि यज्ञ के लिये गो वध तक का विधान है। यह प्रश्न इतना विवादास्पद है कि उसकी इस पुस्तक में विवेचना नहीं की जा सकती, तथापि हम वैदिक यज्ञ गोमेध के सम्बन्ध में जिसके अर्थ गोबध के लगाये जाते हैं कुछ कहना उचित समझते हैं। हम इस यज्ञ को जन्दावस्ता में भी पाते हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती अपने सत्यार्थ प्रकाश** में बतलाते हैं कि संस्कृत भाषा के 'गो' शब्द के अर्थ केवल गाय के ही नहीं प्रत्युत पृथ्वी और इन्द्रियों के भी हैं। गोमेध का आधि भौतिक अर्थ खेती के लिये धरती जोतना और आध्यात्मिक अर्थ इन्द्रिय दमन हैं। कुछ लोग इस व्याख्या का उपहास करते हुए उसे अर्थ की खींचताच बताते हैं। वे यहाँ तक कह डालते हैं कि वेद के इस प्रकार अर्थ लगाना अन्याय है। हमें देखना चाहिये कि डाक्टर हॉग जैसे प्रामाणिक और विश्वस्त पुरुष पारसियों के विषय में क्या सम्मति देते हैं "गोश उर्व का अर्थ पृथ्वी की सार्वभौमिक आत्मा है जो सब प्रकार के जीवन और वृद्धियों का कारण है। शब्द का अक्षरार्थ "गौ की आत्मा" है यहाँ उपमालङ्कार हैं क्योंकि पृथ्वी की गाय से तुलना की गई है। उसको काटने और बांटने से पृथ्वी में हल लगाने का अर्थ लिया जाता है। अहुरमजदा और स्वर्गीय सभा ने जो आदेश दिया है उसका मतलब यह है कि धरती को जोतना चाहिये। अतएव वह खेती के काम को धार्मिक कर्म बतलाता है।"+

हम पाठकों का ध्यान रेखाङ्कित वाक्य की ओर विशेष रूप से आकर्षित करते हैं। क्या यह वही बात नहीं है जो स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वैदिक 'गोमेव' के विषय में कही है?

---

* Haug's Essays p. 285.

** देखो सत्यार्थप्रकाश ११ समुल्लास पृ० ३०५

+ Haug's Essays p. 148.

एक पाद-टिप्पणी में डाक्टर हॉग लिखते हैं कि "संस्कृत में गौ के दो अर्थ हैं—गाय और धरती। यूनानी शब्द Ge (जो Geography जुगराफिये शब्द में मौजूद है।) और पृथ्वी के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इसी शब्द (गो) का रूपान्तर है। वह बड़े महत्व की बात है कि संस्कृत और जन्द दोनों भाषाओं में 'गो' शब्द के गाय और धरती दो अर्थ होते हैं। दशवें अंश में जरदुश्त के ईश्वर की ओर से भेजे जाने के सम्बन्ध में हम पारसियों की प्राचीन कथा का उल्लेख कर चुके हैं। गाय की आत्मा ने (या डाक्टर हॉग की व्याख्यानुसार पृथ्वी की आत्मा ने) मनुष्यो के अत्याचार से दुःखित होकर अपने कातर शब्द को स्वर्ग तक किस प्रकार पहुँचाया और किस प्रकार अहुरमजदा ने उसे सुनकर जरदुश्त को अपनी ओर से दूत, नबी और मनुष्यों के लिये उपदेशक नियुक्त किया। पाठकगण! इसकी तुलना भागवत् की उस कथा से करना चाहेंगे कि कलियुग के आरम्भ में पृथ्वी गाय का रूप धारण कर किस प्रकार विष्णु भगवान् के समीप गई और उनसे दया के लिये विनती की, और किस प्रकार विष्णु ने मनुष्य देह धारण कर मर्त्यलोक में आ उसके दुःख दूर करने की प्रतिज्ञा की। इसमें सन्देह नहीं कि इन दोनों कथाओं में से जन्दावस्ता की कथा पुरानी है। परन्तु हम जो बात पाठकों के हृदय पर अङ्कित करना चाहते हैं वह यह है कि संस्कृत और जन्द दोनों भाषाओ में गाय और पृथिवी दोनों का 'गो' नाम होने से, केवल भाषा विषयक सम्बन्ध ही नहीं प्रत्युत विचार का भी सम्बन्ध है। इन दोनों की संयोजक शृङ्खला निश्चय ही कृषि कर्म है जिसके लिये (भूमि और गाय) दोनों ही आवश्यक हैं। पाठकों को गौ की आत्मा की उस अन्तिम प्रार्थना का स्मरण होगा जो उसने अहुरमजदा से की थी—"इस लिये तुम मुझे खेतों को अच्छी तरह जोतना सिखाओ जो मेरी भलाई की एक मात्र आशा है।" डाक्टर हौग लिखते हैं, पारसी धर्म खेती को धार्मिक कृत्य बतलाता है। यदि पाठकगण वेदों की ओर आवें तो देखेंगे कि उनमें भी कृषि कर्म को ऐसा ही

पवित्र मानने की शिक्षा दी गई है *। पाश्चात्य विद्वानों के लिये इसमें कोई अचरज की बात नहीं है। क्योंकि उनके मतानुसार 'आर्य्य' शब्द ही (जिससे पारसी और हिन्दू दोनों के पुरखा अपने को पुकारते थे Earth (अर्थात् पृथिवी) शब्द से सम्बन्ध रखता है, वे सभ्य होने के कारण खेती करते थे और खेती पर ही उनकी जीविका निर्भर थी, जबकि प्राचीन काल की दूसरी जातियाँ साधारणतया असभ्य होने के कारण गृह-हीन दशा में फिरती थीं, उनकी जीविका विशेष कर शिकार से होती थी।

हिन्दुओं की गाय के लिये प्रतिष्ठा प्रसिद्ध है। यह भी निश्चित है कि प्राचीन काल के पारसी लोग भी उसका बहुत आदर करते थे तो फिर क्या यह कहना अयुक्त नहीं कि गोमेध का अर्थ गो वध है जबकि भाषा और भाव दोनों का समुचित विचार रखते हुये उसका अर्थ हम धरती का जोतना कर सकते हैं। परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि जहाँ पश्चिमी विद्वान् डाक्टर हॉग कृत उपर्युक्त पारसी यज्ञ की व्याख्या के विरुद्ध कुछ नहीं कहते वहाँ वैसे ही यज्ञ की तद्रूप व्याख्या करने के लिये स्वामी दयानन्द सरस्वती का उपहास करने वाले लोगों की कमी नहीं है।

१२—कुछ छोटी समानताएँ

अब हम दोनों धर्मों की कुछ छोटी-छोटी समानताएँ दिखाते हैं:—

(क) वैदिक और जरदुश्ती दोनों ही फिलासफियों में कर्म ३ प्रकार के माने गये हैं, अर्थात् मानसिक, वाचिक और कायिक। यजुर्वेद के ब्राह्मण से हम नीचे एक वचन देते हैं:—

यन्मनसा ध्यायति तद् वाचा वदति यद् वाचा वदति तत् कर्मणा करोति।

---

* जो पाठक देखना चाहें वे ऋ० वेद मं० १० सूक्त १०१ मन्त्र ३ से ७ तक देख सकते हैं।

मनुष्य जो विचार करता है वही वाणी से कहता है, जो वाणी से कहता है वही कर्म से करता है। ॥

जरदुश्त की फिलासफी के विषय में डाक्टर हॉग लिखते हैं—"कि उसके फिलासफी सम्बन्धी विचार मन, वचन और कर्म के त्रिकोण में घूमते थे"। *

वे फिर लिखते हैं:—

"हुमतम् ++(अच्छी तरह से सोचा हुआ) हूक्तम् + (अच्छी तरह से कहा हुआ) हूर्स्तम् + (अच्छी तरह किया हुआ)" ये शब्द जरदुश्ती सदाचार के मूल सिद्धान्त हैं, और बारम्बार ‡ उनका अनेक स्थान पर वर्णन आता है"। यहाँ जन्दावस्ता के एक दो वचन उद्धृत करके इस बात को दिखाते हैं:—

"अच्छा सोचा हुआ, अच्छा कहा हुआ और अच्छा किया हुआ' इन शब्दों द्वारा।" ×

"अच्छा सोचा हुआ क्या है? शुद्ध मन (विचार)। अच्छी तरह कहा हुआ क्या है? उत्तम वचन। अच्छी तरह किया हुआ क्या है? जिसे उच्च कोटि के पवित्र आदमी करते हैं"। ⋹

॥ इसी प्रकार मनु जी ने भी कर्मों का विभाग मानस, वाचिक, कायिक तीन प्रकार का किया है। देखो मनु अ० १२। ३-९

++ देखो Haug' Essays p. 300

+ हुमतम्	=	(संस्कृत) सुमतम्
हूक्तम्	=	„ सूक्तम्
हूर्स्तम्	=	„ सुकृतम्

‡ ऐसे ही संस्कृत में मनसा 'वाचा' कर्मणा शब्दों का प्रयोग अनेक स्थानों पर आता है।

× यास्न १९। १६

⋹ यास्न १९। १९

(ख) वेद पढ़ने वालों ने सोमलता का नाम अवश्य सुना होगा। इस लता का वेदों तथा प्राचीन वैदिक साहित्य में बहुत कुछ महात्म्य वर्णन किया गया है। यह निश्चित नहीं कि सोम औषधि सम्बन्धी जड़ी बूटियों के समुदाय को बोध कराने वाली संज्ञा है, अथवा किसी बूटी विशेष का नाम है। यदि पिछली बात ठीक मानी जाय तो इस प्रकार को बूटी का अब तक पता नहीं लगा और न वर्त्तमान बूटियों में से ही किसी का यह नाम है। प्रो० मोक्षमूलर २५ अक्टूबर सन् १८८४ के Academy पत्र में लिखते हैं:—

"धर्म सम्बन्धी कृत्यों की प्राचीनतम पुस्तकों अर्थात् सूत्र तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में भी यह बात मानी गई है कि असली सोम का मिलना बहुत कठिन है और उसके स्थान में अन्य वस्तु काम में लाई जा सकती है। यह लिखा है कि जब वह मिल सकती थी तब जंगली लोग उसे उत्तराखण्ड से लाया करते थे। उस समय भी वह विशेष प्रयत्न करने पर ही मिल सकती थी।"* वे फिर लिखते हैं कि—"रूसी और अंग्रेजी दूत निरपेक्ष भूकटिबन्धों के उत्तरी देशों में बड़ा उपयोगी काम करेंगे, यदि वे अपने भ्रमण में सोमलता के सदृश पौधों को खोजते रहें।" प्रोफेसर साहब अन्त में लिखते हैं कि—"जिस स्थान में उपर्युक्त पौधा अपने आप उगता पाया जायगा उसको आर्य्यजाति अथवा कम से कम उन लोगों के पुरखाओं का निर्भयता पूर्वक उत्पत्तिस्थान बताया जा सकेगा जो दक्षिण में आकर संस्कृत या जन्द भाषा बोलते थे।"+

असली सोमलता चाहे जो हो परन्तु हमारा उद्देश्य यहाँ यह सिद्ध करना है कि जन्दावस्ता में होम ‡ की सोम के समान हो प्रशंसा की गई है।

---

* देखो Zoroastrianism in the Light of Theosophy. पृ० ९८-९९ में "पवित्र होम (सोम) लता" पर नसरवान जी० एफ० वेलमोरिया लिखित व्याख्यान।

+ देखो १९ पेज का फुट नोट।

‡ जैसा हम पहले लिख चुके हैं संस्कृत सकार का जन्द या फारसी में हकार हो जाता है, इसी अध्याय के अंश एक में शब्द समूह (१) देखो।

अब हम जन्दावस्ता के कुछ वचन उद्धृत करके यह दिखावेंगे कि जो भाव जन्दावस्ता में प्रकट किये गये हैं वे सोमलता सम्बन्धी वैदिक वर्णन से बहुत समानता रखते हैं।

"हे होम; मैं तुझ से जो मृत्यु को दूर मार भगाता है यह दूसरा आशीर्वाद माँगता हूँ अर्थात् शरीर का नीरोग होना (उस आनन्दमय जीवन को प्राप्त करने के पूर्व), हे होम; तू मृत्यु भी दूर भगाता है अतएव मैं तुझ से तीसरा आशीर्वाद अर्थात् दीर्घ जीवन चाहता हूँ।" *

"हे पीत वर्ण होम, मैं तुझ में अपने वचनों से ज्ञान, सामर्थ्य, विजय, स्वास्थ्य, आरोग्य, उन्नति, वृद्धि, सारे शरीर का तेज और प्रत्येक प्रकार के विषय को समझने की बुद्धि स्थापित करता हूँ। मैं तुझ में (अपने वचन से) वह शक्ति स्थापित करता हूँ, जिसके द्वारा मैं संसार भर में स्वेच्छा पूर्वक विचर सकूँ, दुःखों को समाप्ति करता हुआ और (अच्छे विश्व के शत्रुओं को) नाश कारिणी शक्ति को नष्ट करता हुआ।" +

अब हम ऋग्वेद के कुछ मन्त्र उद्धृत करते हैं:—

सना च सोम जेषिच पवमान महिश्रवः। अथानो वस्यसस्कृधि ॥ सना ज्योतिः सनास्वर्विश्वा च सोम सौभगा। अथानो वस्यसस्कृधि ॥ सना दक्ष मुतक्रतुमपसोममृधो जहि। अथानो वस्यसस्कृधि ॥

ऋग्वेद ९। २२। १-४

हे पवित्र सोम! तू बड़ा पुष्टिकारक भोजन है। हमें कृपया (नीचे लिखी वस्तुएँ) प्रदान कर। हमें विजयी और हर्षित कर।

हे सोम! हमें प्रकाश (देदीप्यमान बुद्धि) दो। हमें आनन्द दो। हमें समस्त उत्तम वस्तुएँ दो और हमें हर्षित कर।

---

* होम यस्त-यास्न ९

\+ होम यस्त १७

हे सोम ! हमें बल, बुद्धि दो। हमारे शत्रुओं को दूर भगाओ और हमें हर्षित कर।

कुछेक पाश्चात्य विद्वान् जो यह सिद्ध करने की चिन्ता में रहते हैं कि आर्य लोग मांस मदिरा के सेवन से घृणा नहीं करते थे, सोम को एक मादक पौधा और उसके रस को एक प्रकार का मादक द्रव्य बताते हैं। वेद और जन्दावस्ता दोनों में सोम या होम के नाम से जो कुछ कहा गया है, उससे ऊपर लिखा विचार मिथ्या हो जाता है। जन्दावस्ता के विद्वान् अनुवादक डारमेस्टेटर ने ठीक लिखा है कि—"सोम या होम के अन्तर्गत समस्त प्रकार की वनस्पतियों की जीवन शक्ति समावेशित हैं।"* जन्दावस्ता में होम को "औषधियों का राजा" कहा गया है और यही नाम उसके लिये वेदों में प्रयुक्त हुआ हैं। +

अब इस में कोई शंका नहीं रही कि सोम आयुर्वेद से सम्बन्ध रखने वाली बूटी का नाम है। प्रोफेसर मोक्षमूलर के कथनानुसार यह सम्भव है कि सोम भारतवर्ष में न होकर उत्तर दिशा के किसी अज्ञात देश में पैदा होता हो। उसकी पहिचान भूल जाने तथा अनभिज्ञता के कारण असली रूप छिप जाने से कालचक्र ने उसके चारों ओर पवित्रता का मण्डल लगा दिया है। जन्दावस्ता में उसे अमरत्व देने वाली कहा गया है और जब जरदुश्तियों ने पुनरुत्थान का सिद्धान्त स्थिर किया तो इसी होम या सोम के द्वारा मृतकों में जीवन संचार किया गया। फिर इसी सोम के दो भेद पहला सफेद होम और दुसरा दुःख रहित पौधा है, जिनका बाईबिल में ज्ञानतरु और जीवनतरु रूप से वर्णन है और जिसकी बाईबिल के स्वर्ग में कल्पना की जाती है। पिछले अध्याय के आठवें अंश में इस विषय पर हम डाक्टर स्पीगल की सम्मति उद्धृत कर चुके हैं और प्रोफेसर मोक्षमूलर के वचन उद्धृत कर के यह दिखला

---

* जन्दावस्ता भाग १ भूमिका पृ० ६९

+ देखो ऋग्वेद १०।९७।१८-२२

चुके हैं कि वे भी सोम वा होम और बाबिल के जीवन तरु में समानता स्वीकार करते हैं। अब हम मैडम ब्लैवस्टकी सम्मति उद्धृत करते हैं— "सामान्य शब्दों में सोम ज्ञान वृक्ष के फल का नाम है। ईर्ष्यालु एलोहिम ने आदम, हव्वा अथवा यहुवी से इन्हीं को न खाने के लिये कहा था, क्योंकि 'कहीं ऐसा न हो कि आदमी उनके समान हो जायें' *

* देखो Secret Doctrine Vql. H, pp. 498-499.

सारांश

हम दिखला चुके हैं कि "जरदुश्ती सिद्धांतों और कृत्यों में तथा वैदिक सिद्धान्त और कृत्वों में कितना आश्चर्य जनक सादृश्य है। हमने यह भी दिखाया है कि जन्दावस्ता की भाषा और छन्दों में वैदिक भाषा व छन्दों का घनिष्ट सम्बन्ध है। यह भी बताया गया है कि प्राचीन समय में दोनों धर्मों के अनुयायी अपने को आर्य नाम से पुकारते थे। क्या कोई पल भर के लिये भी कह सकता है कि ये सादृश्य और समता आकस्मिक है? इस प्रकार का न तो कभी किसी का विचार हुआ और न हो सकता है। हमें इसका कारण बताने के लिये नीचे लिखी तीन बातों में से एक न एक को अवश्य मानना पड़ेगा :—

१—वेदों के धर्म और भाषा जन्दावस्ता के धर्म और भाषा से लिये गये हैं।

२—वेद और जन्दावस्ता को भाषा और धर्म का मूल स्रोत एक ही है। दोनों ही किसी प्राचीनतम और लुप्त प्रायः भाषा और धर्म से निकले हैं।

३—जन्दावस्ता के भाषा और धर्म वैदिक भाषा और धर्म से निकले हैं।

संख्या एक में जो बात कही गई है उसे आज तक किसी ने नहीं कहा। समस्त विद्वानों ने, जिनकी सम्मति इस विषय पर विश्वस्त समझी जा सकती है, वेदों को जन्दावस्ता से पुराना माना है। अब ऊपर की शेष दो बातों में से किसी एक को स्वीकार करना होगा। हम तीसरी बात को मानते हैं। उसे युक्तियों से सिद्ध करने के पहले कुछेक प्रमाण दिये जाते हैं।

वेद और जन्द भाषा में आश्चर्य जनक समानता सिद्ध करने के लिये विलियम जोन्स की सम्मति पूर्व ही उद्धृत की जा चुकी है।

सर विलियम लिखते हैं कि—"कम से कम जन्द भाषा संस्कृत की एक शाखा थी। यह कदाचित् उसके उतनी ही निकट थी जितनी प्राकृत अथवा अन्य प्रचलित भाषाएँ जो भारतवर्ष में दो सहस्र वर्ष पूर्व बोली जाती थीं।"*

डारमेस्टेटर अपने जन्दावस्ता के अनुवाद (Sacred books of the the East Series) में इस विचार की पुष्टि करते हुए कई अन्य प्रमाणों को प्रस्तुत करते हैं, यद्यपि वे स्वयम् पहली बात के ही मानने वाले हैं। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि विलियम जोन्स आदि पुरुषों की सम्मति दोनों भाषाओं के सम्बन्ध पर है, दोनों धर्मों पर नहीं। डारमेस्टेटर फादर पोलो डी सेन्ट बारथेलेमी (Father Paulo de Saint Barthelemy) का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि "वह इस परिणाम पर पहुँचे कि अति प्राचीनकाल में संस्कृत भाषा फारस और भारतवर्ष में बोली जाती थी और उससे ही जन्द भाषा का जन्म हुआ।" + डारमेस्टेटर आगे कहते हैं—"१८०८ ई० में जॉन लिडिन John Lydon जन्द को पाली भाषा के समान एक प्राकृत की शाखा समझते थे। एर्सकीन Erskine की दृष्टि में जन्द संस्कृत भाषा की शाखा थी जिसे पारसी धर्म के संस्थापन ने भारतवर्ष से लिया, परन्तु यह भाषा फारस में कभी नहीं बोली गई।" वे पीटर बोन बोहलन (Peter Von Bohlen) के विषय में कहते हैं कि "उसके अनुसार (जन्द प्राकृत) भाषा की शाखा है। जैसा कि जोन्स लीडन और एर्सकीन का कथन है।"

निम्न लिखित युक्तियों द्वारा हम इस बात को पर्याप्त रूप से सिद्ध कर देंगे कि जरदुश्ती मत वैदिक धर्म से निकला है।

(१) जरदुश्त जन्दावस्ता में एक पुराने ईश्वरीय ज्ञान का वर्णन

---

* Asiatic Researches II—3.

\+ Zend Avesta part 1. Introd. p. XXL.

करते हैं जो वेद के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता।

हम हॉग साहब की सम्मति उद्धृत करते हैं—"हम देखते हैं कि गाथाओं में (जो जन्दावस्ता का सबसे पुराना भाग है) एक प्रचीन ईश्वरीय ज्ञान की ओर संकेत किया गया है और सोश्यन्त, अथर्व तथा अग्नि के पुरोहितों को बुद्धि की प्रशंसा की गई है। वह अपनी मण्डली को अंगिरा की प्रतिष्ठा और सन्मान करने की ओर प्रेरित करता है अर्थात् वैदिक मन्त्रों के अंगिरा जो प्राचीन आर्य लोगों के पूर्वज थे और जो अन्य पिछले ब्राह्मण परिवारों की अपेक्षा जरदुश्त से पूर्ववर्त्ती पारसी धर्म से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते थे। इन अंगिराओं का वर्णन अथर्वण अथवा अग्नि पुरोहितों के साथ प्रायः कई स्थलों पर किया गया है और दोनों वैदिक साहित्य में अथर्ववेद के कर्त्ता माने गये हैं। (जिनको हम ऋषि कहेंगे) यह वेद अथर्वाङ्गिरा अथवा अथर्व अङ्गिराओं का वेद कहलाता है।" *

डाक्टर हॉग फिर कहते हैं :—

"स्वयम् अपने ही पुस्तक में जरदुंश्त अपने को अहुरमजदा का प्रेरित किया मथून अर्थात् मन्त्र द्रष्टा दूत कहते हैं।" +

(२) होमयश्त (जन्दावस्ता का एक अध्याय) में सोम यज्ञ करने वाले चार मनुष्यों की गणना की गई है जो जरदुश्त से पूर्व वैदिक कृत्य सोमेष्टि या सोमयाग को किया करते थे। जरदुश्त के बाप पौरुषास्य के नाम के अतिरिक्त शेष सब नाम वैदिक साहित्य में आते हैं।

"पहला पुरुष जिसने सोमयज्ञ रचा विवंह्वत था। उसके एक यम लड़का पैदा हुआ, जो तेज युक्त, सुशील और परम प्रतापी था तथा जो मनुष्यों में सूर्य्य को सबसे अधिक देख सकता था। दूसरा आथ्व्य था, जिससे थ्रैतान पैदा हुआ और जिसने अजि दाहक सर्प को मार डाला।

* Haug's Essays p. 294.

+ वही पुस्तक पृ० २९७

तीसरा थ्रित था, जिसके दो बेटे हुये। चौथा स्वयम् जरदुश्त का बाप पौरुषास्प था। होम जरदुश्त से कहता है—हे पवित्र जरदुश्त, तू उसके घर शैतान के विरुद्ध लड़ने के लिए पैदा हुआ था। तेरा अहुर पर पूरा विश्वास है और तू आर्मान् बीज अर्थात् आर्य देश में प्रसिद्ध है।" *

अब इन में से पहले दो अर्थात् विवन्ह्वत और उसका बेटा यम वही हैं जो वैदिक साहित्य में प्रसिद्ध हैं। जन्दावस्ता में यम को राजा कहा गया है और उसका नाम यमख्शेत (संस्कृत-क्षत्र = राजा) बताया गया है, जो फरदौसी के शाहनामे में जमशेद हो जाता है। डाक्टर हॉग इस परम्परागत कथा का पता वैदिक साहित्य में लगाते हुए कहते हैं कि यम, खशेत, जमशेद और यमराज + एक ही नाम और पद हैं। यिम और यम एक ही है। खशेत का अर्थ राजा है। दोनों के पारिवारिक नाम एक ही हैं। जन्दावस्ता में विवन्हु या विवन्ह्वत का बेटा और वेद में वैवस्वत या विवस्वत का पुत्र दोनों एक ही बात हैं।"**

जन्दावस्ता के अनुसार यिम सबसे पहला नबी भी है। अहुरमजदा कहता है कि—'हे पवित्र जरदुश्त, तुझ से पूर्व सुन्दर यम सबसे पहला मनुष्य था, जिससे मैंने वार्त्तालाप किया, जिसको मैंने जरदुश्ती धर्मशास्त्र की शिक्षा दी।" ☛

जरदुश्त का दूसरा पूर्ववर्त्ती जो सोम यज्ञ का करने वाला कहा जाता है—आथ्व्य और उसके पुत्र थ्रैतान (शाहनामे का फरीदुन)

---

* हाम यस्त Quoted in Essay on the Sacred Homa in Zoroastrianism in the Light of Theosophy.

+ जैसा हम पूर्व कह चुके हैं जन्द 'खशेत' संस्कृत 'क्षत्र' शब्द से बना है।

** जो वेदों में राजा के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अर्वाचीन संस्कृत में क्षत्र शब्द व्यवहृत नहीं होता, परन्तु क्षत्रिय (राजकीय पुरुष या योद्धा) 'क्षत्राद्घः' से निकला है।

+ Haug's Essays p. 277.

☛ फर्गर्द २। २

आप्त्य और त्रैतान से मिलते हैं। डाक्टर हॉग कहते हैं कि वैदिक त्रैतान में थ्रैतान (फरीदुन) सुलभता से पहिचाना जा सकता है। उसके बाप का नाम आथ्व्य था जो त्रित के आप्त्य से जिसका प्रयोग प्रायः वेदों में हुआ है पूर्ण रूप से समानता रखता है। ‡

तीसरा थ्रित और वैदिक त्रित एक ही हैं। डाक्टर हॉग कहते हैं :-

"जन्दावस्ता के साम परिवार का (जिसमें महावीर रुस्तम पैदा हुआ) थ्रित सब से पहिला हकिम है जो अहरिमन द्वारा पैदा किये रोगों की चिकित्सा करता है। यह विचार भी वेदों में त्रित के सम्बन्ध में पाया जाता है। अथर्ववेद (६, ११३, १) में कहा गया है कि वह मनुष्यों के रोगों को दूर करता है ...... । दीर्घ जीवन प्रदान करता है। प्रत्येक बुरी वस्तु शान्त होने के लिये उसके पास भेजी जाती है। (ऋ० ७, ४७। १३) जन्दावस्ता में उसके इस गुण का संकेत साम अर्थात् शान्ति दाता के नाम से किया गया है।" *

यह कम आश्चर्य की बात नहीं है कि जरदुश्त के पिता के नाम को छोड़ कर उसके शेष समस्त पूर्वजों के नामों का पता वैदिक साहित्य में लग सकता है। उपरोक्त गणना स्पष्ट रूप से उस वैदिक अलंकार वा कथा की स्मृति स्वरूप हैं जो जरदुश्त के समय में ईरानियों के यहाँ प्रचलित थी।

(३) जन्दावस्ता में अथर्ववेद की स्पष्ट और अचूक प्रतीक है। हम उसको उसी प्रकार उद्धृत करते हैं जिस प्रकार डाक्टर हॉग ने उसे उद्धृत किया है।

"होम ने किरसानी को राजसिंहासन से उतार दिया उसकी अधिकार लिप्सा इतनी बढ़ गई कि उसने कहा कि मेरे साम्राज्य को समृद्धि के लिये अथर्व लोग (अग्नि पुरोहित) 'अपाम अविष्टिश, (पानी

‡ Haug's Essays p. 278.

* Haug's Essays p. 278.

के समीप) का जाप न करने पावेंगे। वह सब समृद्धि शालियों को नष्ट-भ्रष्ट करता तथा उनका नाश करके उन्हें पद दलित करता था।"

एक नोट में डाक्टर हॉग लिखते हैं कि "प्रकरण से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि किरसानी अथर्व धर्म के किसी शत्रु का नाम है और इसमें सन्देह नहीं कि वह वैदिक ग्रन्थों का कृशानु है।"

दूसरे नोट में विद्वान् डाक्टर साहब जन्दावस्ता के उपर्युक्त बचन में आए हुए 'अपाम अविष्टिश' वाक्य के सम्बन्ध में लिखते हैं :—

स्पष्ट रूप से ये शब्द अथर्ववेद संहिता के पारिभाषिक नाम रूप हैं। कई हस्त लिपियों में इस वेद का "शन्नो देवी रभिष्टय आपो भवन्तु पीतये" मन्त्र से जिसमें ऊपर के दोनों शब्द आते हैं, प्रारम्भ होता है। छपे हुए संहिता पुस्तकों के आरम्भ में इस मन्त्र को छोड़ दिया गया है, परन्तु १-६-१ में वह मन्त्र दिया गया है। और उसी स्थान पर ऊपर लिखी हस्त लिपियों में भी आता है। दो सहस्र वर्ष पूर्व अथर्व वेद इसी मन्त्र से प्रारम्भ होता था। यह बात इससे भली भाँति सिद्ध होती है कि पातञ्जलि मुनि ने चारों वेदों के प्रारम्भिक मन्त्रों को अपने महभाष्य की भूमिका में दर्ज करते हुए "शन्नो देवी रभिष्टय" * अथर्ववेद + के लिये लिखे हैं।" ‡

---

* यह आचमन-मन्त्र है, जिसे सब आर्य जानते हैं—"शन्नों देवो रभिष्टय आपो भवन्तु पीतये शंयो रभिस्रवन्तुनः" इसमें से जिन शब्दों से नीचे रेखा खिची हुई है वे जन्दावस्ता में बहुत थोड़े हेर फेर के साथ आते हैं

+ पाश्चात्य विद्वानों का निश्चय है कि वेद विविध समय में लिखे गये और अथर्ववेद चारों वेदों मे से सबसे पीछे का है। यदि अथर्ववेद ही जन्दावस्ता से पुराना सिद्ध कर दिया जाय तो यह परिणाम स्वतः निकल आता है कि शेष तीन वेद जन्दावस्ता से और भी अधिक पुराने हैं।

‡ Haug's Essays p. 182.

अथर्ववेद का यह स्पष्ट और निर्विवाद प्रतीक इस बात के सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है कि वेदों कर काल जन्दावस्ता से पूर्व का है।

(४) यह सिद्ध किया जा सकता है कि प्राचीन फारसी लोग भारतवर्ष से जाकर ईरान वा फारस देश में बसे थे।

प्रोफेसर मोक्षमूलर स्पष्ट रूप से लिखते हैं—"अब यह बात भौगोलिक साक्षी द्वारा भी सिद्ध हो सकती है कि फारिस में बसने से पूर्व पारसी लोग भारतवर्ष में रहते थे। ज़रदुश्त और उनके पुरखाओं का वैदिक काल में भारतवर्ष से जाना उसी प्रकार स्पष्ट रूप से सिद्ध हो सकता है जिस प्रकार मसीलिआ निवासिओं का यूनान से जाना।"*

विद्वान् प्रोफेसर ने अपने "भाषाविज्ञान" सम्बन्धी व्याख्यान में इसी बात को और भी स्पष्ट शब्दों में कहा है—

"पारसी लोग उत्तरीय भारत से आकर बसे थे। कुछ काल तक वे उन लोगों के साथ रहे जिनके पवित्र गायन को अब भी हम वेदों में पाते हैं। फूट हो जाने पर पारसी लोग पश्चिम की ओर एराकेशिया और फारिस की ओर चले गये; उन्होंने नवीन नगरों और उन नदियों के जिनके किनारे वे रहे वही नाम रक्खे जिनसे वे अच्छी तरह परिचित थे। ये नाम उन स्थानों का स्मरण दिलाते हैं जिनको वे छोड़ कर आये थे। फारसी अक्षर 'ह' संस्कृत के 'स' का बोध कराता है इस लिये 'हरयू' शब्द संस्कृत में 'सरयू' होता है। भारतवर्ष के पवित्र नदियों में से एक का नाम सरयू है, जिसका वेदों में भी वर्णन है, जिसे अब सरयू कहते हैं" +

प्रोफ़ेसर मोक्षमूलर की बताई सरयू और हरयू नदियों के अतिरिक्त फ़ारिस के बहुत से अन्य स्थानों के नामों का पता संस्कृत के नामों से लग सकता है जैसेः—

---

* Chips from a German Workshop. Vol. 1, p. 235.
+ Lectures on the Science of Languge Vol. 1, p. 235.

(क) Euphrates जिसे साधारणतया फरात कहते हैं फारिस की एक प्रसिद्ध नदी का नाम है। इसकी व्युत्पत्ति "भारत" शब्द से हो सकती है। संस्कृत में भारत इस देश का ही नाम नहीं प्रत्युत यहाँ के निवासियों का भी बहुत पुराना नाम है। हम हिन्दुस्तान के लिये अब तक भारत*, भारतवर्ष अथवा भरत खण्ड आदि शब्द का प्रयोग करते हैं। जिन्होंने संस्कृत भाषा का प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थ महाभारत पढ़ा है वे जान सकते हैं कि आरम्भ में यह शब्द मनुष्यों के लिये व्यवहृत होता था। 'महाभारत' शब्द का अर्थ ही (महा) बड़े (भारत) महाराज भरत के पुत्रों का इतिहास है। भारतवर्ष के निवासी जो अपने को भारत कहते थे उस नदी (फरात) के किनारे जाकर बसे और उसका नाम अपने नाम पर रक्खा। यह बात कि संस्कृत का 'भ' फारसी 'फ' या 'फ़' से बदल जाता है वैदिक संस्कृत के गृभ‡ ग्रहणे धातु से (जो फारसी में गिरिफ्त हो जाता है) साफ हो जाती है।

(ख) बेबीलन फारिस के एक प्रसिद्ध नगर का नाम है। यह फरात के किनारे बसा हुआ है। वह किसी समय एक बड़े साम्राज्य की राजधानी थी। इसका पता भूपालान से जिसका अर्थ भूपाल निवासी है चल सकता है। सम्भव है भारतवर्ष से आकर लोगों ने इस नगर को बसाया हो।

(ग) तिगरी नदी के किनारे रहने वाले कौसी लोग सम्भवतया भारतवर्ष के प्रचीन नगर काशी या बनारस से जाकर बसे थे।

---

* भारत भरत की अपत्यवाचक संज्ञा है, जिसका अर्थ है भरत के पुत्र। भरत प्राचीन भारत में एक प्रसिद्ध राजा हुआ है, जिसने यह नाम पहले अपनी प्रजा और फिर अपने देश को दिया। भरत के माता पिता शकुन्तला और दुष्यन्त थे। इनकी सुप्रसिद्ध कथा महाकवि कालिदास कृत शकुन्तला नाटक में वर्णित है।

‡ आधुनिक संस्कृत में धातु का रूप गृह और वैदिक संस्कृत में गृभ होता है।

(द) ईरान, आर्य्यान शब्द का अपभ्रंश है। इस देश का यह नाम उन आर्य लोगों ने रक्खा था जो उसमें आकर रहे थे।

यह दिखाने के लिये कि एक मत दूसरे से निकला है, तीन बातें सिद्ध करनी होंगी। अर्थात् (१) विचारों और सिद्धान्तों की समानता (२) एक की अपेक्षा दूसरे मत की प्राचीनता (३) उनमें परस्पर सम्बन्ध का मार्ग। अब वैदिक और पारसी मत में सिद्धान्तों की सदृशता इतनी स्पष्ट है कि कोई मनुष्य उसमें सन्देह नहीं कर सकता। जन्दावस्ता की अपेक्षा वेदों का समय अधिक पुराना है, यह बात भी स्पष्ट है रीति से सिद्ध की जा चुकी है। जब यह सिद्ध हो गया कि ईरानी लोग भारतवर्ष से ही जाकर वैदिक काल में बाहर बसे तो सम्बन्ध का मार्ग भी स्पष्ट हो जाता है। पिछले समय में भी परस्पर गमनागमन और सम्बन्ध का मार्ग बताना कठिन नहीं। नामे जरश्दुश्त* में लिखा है कि व्यासजी फारिस को गये और वहाँ जरदुश्त से शास्त्रार्थ किया। ईश्वर जरदुश्त से कहता है—"व्यास नामक एक बहुत बुद्धिमान ब्राह्मण जिसके समान पृथ्वी पर कोई न होगा, भारतवर्ष से आवेगा। वह तुझसे यह प्रश्न करना चाहेगा कि विश्व का रचियता केवल ईश्वर क्यों नहीं है?"
(६५-६६)

उससे कहना कि ईश्वर ने विना किसी की सहायता के प्रथम मन वा बुद्धि उत्पन्न की और इस बुद्धि द्वारा ही भौतिक संसार पैदा किया। (६७)

---

* यह पुस्क जन्दावस्ता से भले ही पिछला हो परन्तु जरदुश्त का रचा बताया जाता है। असली बात यह है कि इस नाम के कई पुरुष हुए हैं,—जैसे ब्रह्मा, बसिष्ठ, नारद और सम्भवतया व्यास नाम के भी अनेक ऋषि हुए हैं। दविस्तान में १३ जरदुश्तों का वर्णन है उनमें सबसे पहला स्पितामाजरदुश्त था जो पारसी मत का प्रवर्त्तक माना जाता है। स्पितामा शब्द के कारण वह दूसरे नामों से आसानी से पहिचाना जा सकता है।

प्रथम उत्पन्न हुई बुद्धि की सहायता लेने के कारण परमेश्वर के विश्व कर्त्तृत्व पर किसी प्रकार का दोष नहीं आ सकता। (६८)

दूसरा प्रश्न होगा कि अग्नि आकाश के नीचे, वायु अग्नि के नीचे जल वायु के नीचे और पृथ्वी जलके नीचे क्यों है ? (७१)

इसके आगे व्यास के उपर्युक्त प्रश्न का वह उत्तर है जिसके देने के लिये परमेश्वर जरदुश्त को शिक्षा देता है। पांचवां सासान अपनी व्याख्या में लिखता है—"बलख में व्यास जी और गुस्तास्प की भेंट हुई। राजा ने समस्त बुद्धिमान पुरुषों को निमन्त्रित किया। जरदुश्त भी अपने उपासना मन्दिर से बाहर आये और व्यासजी ने उनका मत स्वीकार किया।"

यह कथा गुस्तास्प* के समय से सम्बन्ध रखती है। गुस्तास्प बैक्ट्रिया का प्रसिद्ध राजा था। कहते हैं कि उसने सन् ईस्वी से ५५० वर्ष पूर्व पारसी मत को राज धर्म बनाया और उसका प्रचार किया। जरदुश्ती मत की उन्नति के लिये वह समय बड़ा महत्व पूर्ण था। व्यास जी का वर्णन बड़े गौरव के साथ किया गया है अतएव यहाँ सम्भवतया उन्हीं व्यास जी की ओर संकेत है जो वेदान्त सूत्र के कर्त्ता और पातञ्जल योग सूत्र के प्रसिद्ध भाष्यकार हुए हैं। पंचम सासान का भाष्य उनसे

---

* इस राजा के असली नाम का यह रूप पीछे हो गया है। असली नाम विश्तास्प जो संस्कृत विष्टाश्व से निकला हुआ है। यूनानी पुस्तकों में वह हिस्टास्पीज़ Hystaspes के नाम से प्रसिद्ध है। प्रसिद्ध पारसी ग्रन्थकार डाक्टर एस० ए० खापड़िया एम० डी०, एल० आर० सी० पी० के अनुसार विश्तास्प अथवा गुस्तास्प का समय अब से लगभग २५०० वर्ष है। (देखो उनकी बनाई Teachings of Zoroaster and the Philosophy of the Parsi Religion, wisdom of the Esst Sertis पृष्ठ १५ से १८ तक)। यह समय प्रायः उतना ही है जितना हिन्दू इतिहास में महात्मा व्यास का बताया गया है।

बहुत पीछे का बना है, इस लिये उसका यह कहना कि व्यास जी ने जरदुश्ती मत स्वीकार किया ठीक नहीं है।

पारसी ग्रन्थों का यह लिखना कम गौरव की बात नहीं है कि दोनों मतों के दो आचार्य ऐसे समय में मिले जो पारसियों के इतिहास में बहुत ही महत्वपूर्ण और स्मरण करने योग्य था।

इसके पीछे भी ज्ञात होता है कि सासान प्रथम, जिनके ग्रन्थों से अनेक बार उद्धरण दिये जा चुके हैं केवल इस देश में रहते ही न थे प्रत्युत उन्होंने यहाँ किताबें भी लिखी थीं। उनके पुस्तक के ३८ वें अंश में ईश्वर से कहलाया गया है—"तुम धन्य हो, क्योंकि मैंने तेरी इच्छाओं को स्वीकार कर लिया है।" इस पर सासान पंचम अपना टीका करते हैं—"यहाँ यह बता देना चाहिये कि सिकन्दर के फारिस विजय करने पर दारा का पुत्र सासान अपने चाचा से अलग होकर भारतवर्ष गया और वहाँ पवित्रता और ईश्वर-भक्ति में लग गया। परमेश्वर उस पर दयालु हुआ इसलिये उसने उसे नबी बनाया।

इसके आगे सासान पंचम लिखता है कि सासान प्रथम ने अपनी आयु भारतवर्ष में रहकर बिताई। इस प्रकार भारत ही में पारसियों के उस अन्तिम धर्म-ग्रन्थ-रचयिता पर जिसके लिखे फिलासफी और तर्क-शास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों से पारसियों की बनाई किताब बढ़ नहीं सकती, ईश्वरीय दया का सञ्चार हुआ। इसका तात्पर्य सासान पंचम की और से प्रेरणा व प्रकाश होना बतलाते हैं।

इस प्रकार यह बहुत स्पष्ट है कि ज़रदुश्ती मत केवल वैदिक काल में (जब पारसियों के पुरखा भारत से आये थे) वेदों से निकला ही नहीं प्रत्युत उसके उन्नत काल में भी उस पर वैदिक शिक्षा का बहुत प्रभाव पड़ा है। यही कारण है कि वह पारसियों के पिछले धर्म-ग्रन्थों अथवा दासातीर में वर्णित रूप में भी वैदिक धर्म से बहुत सादृश्य रखता है।

वैदिक और जरदुश्ती मत की अत्यन्त समानता पर एक पारसी ग्रन्थकार की सम्मति उद्धृत करके हम इस अध्याय को समाप्त करते हैं—

"पवित्र वैदिक धर्म और जरदुश्ती मत एक ही हैं। जरदुश्ती मत उन दूषणों और मिथ्या विश्वासों के विरुद्ध युद्ध करने के लिये प्रादुर्भूत हुआ, जिन्होंने विशुद्ध वैदिक सत्य पर परदा डाल दिया था तथा पुरोहित और प्रजा घातक राजाओं के स्वार्थ साधनार्थ प्राचीन प्रशस्त धर्म का स्थान हरण कर लिया था। जरदुश्त ने प्राचीन समय में वही काम किया था जो महात्मा बुद्ध ने उसके पश्चात् किया।" *

इस पर टीका पिप्पणी की आवश्यकता नहीं। ग्रन्थकार स्वयम् स्वीकार करता है कि जरदुश्त बुद्ध के समान एक आर्य्य सुधारक थे जिनका उद्देश्य वैदिक धर्म में पीछे से मिलाई हुई मिलावटों को दूर करना था। एक दूसरे पारसी ग्रन्थकार डा० एस० ए० कापड़िया भी अपने ग्रन्थ में ऐसे ही विचार प्रकट करते हैं कि जरदुश्ती मिशन का उद्देश्य एक ईश्वर का उपदेश करने वाले आर्यों के प्राचीन धर्म को संशोधन करना था (इसको वे स्पष्ट शब्दों में वैदिक धर्म के नाम से नहीं पुकारते) वे लिखते हैं—"जो वस्तु आरम्भ में ईश्वर की महिमा का प्रकाश रूप समझी जाती थी, काल की गति से उनको पुरुषवत् मान लिया गया। भक्तों की निर्बल कल्पना ने उन्हें देवता का रूप दे दिया और अन्त में सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर के स्थान में उनकी पूजा होने लगी। इस प्रकार वह प्रथम उच्च कक्षा का तात्विक धर्म अनेक ईश्वरवाद के चक्र में पड़कर अवनत हो गया। मूर्त्तिपूजा और मन घड़न्त देव और राक्षस आदि की पूजा करना उसका उद्देश्य बन गया। यही बड़े दूषण थे जिनको दूर करने के लिये हमारे आचार्य्य जरदुश्त ने कष्ट उठाया। उस समय के पुराने मत को अहुर पूजा की प्रारम्भिक पवि-

---

* Zoroastrianism in the Light of Theosophy p. 63 by Khurshaidji, N. Seervai.

त्रता की ओर ले जाना उनका मुख्य उद्देश्य था।"*

यह सम्भव है कि जरदुश्त के प्रादुर्भाव के समय एक ईश्वर की उपासना का उपदेश करने वाला विशुद्ध वैदिकधर्म अवनत होकर बहुत से देवी देवताओं को मानने लगा था और इन्द्र को सब देवों का राजा समझता था। ज़रदुश्त के उपदेश का उद्देश्य इस देवी देवताओं की पूजा से विरोध करना था। यह स्वाभाविक बात है कि उस समय प्रचलित मत के अनुयायिओं और सुधार के समर्थकों में कुछ वैमनस्य हुआ हो, इससे यह बात समझ में आ जाती है कि जिन देवताओं को आर्य कहाने वाले लोग पूजते थे, उन्हें जन्दावस्ता में बुरी + आत्मा क्यों कहा गया, और इन्द्र उनका राजा क्यों माना गया, और संस्कृत भाषा में ऐसा परिवर्त्तन क्यों हुआ कि जरदुश्तियों के ईश्वर का मुख्य नाम असुर (अहुर) राक्षस के अर्थों में व्यवहृत होने लगा।

बहरामयष्ट के नीचे लिखे वचन से पाया जाता है कि जरदुश्त ने पशुवध की भी निन्दा की है, जिस को उस समय के वैदिक आर्य यज्ञों में करने लगे थे :—"अहुर के बनाये हुए वृत्रघ्न ने यह घोषणा की, ** गौ की आत्मा को मनुष्य से उचित यज्ञ नहीं मिलता क्योंकि + अब देव (यज्ञों में) पानी के समान लहू बहाते हैं।" × इसमें सन्देह नहीं कि यहाँ

---

* The Teachings of Zoroastrianism and the Philosophy of Parsi Religion pp. 16-17

+ फ़ारसी भाषा में देव शब्द के अर्थ अब भी राक्षस या बुरी आत्मा के हैं। इन्द्र सभा नाटक आदि में लाल देव और काले देव से बहुत पाठक परिचित होंगे।

** संस्कृत के समान जन्द में गौ शब्द का अर्थ पृथ्वी और गाय दोनों हैं। यहाँ पृथ्वी से तात्पर्य है।

+ जैसा पहिले कहा जा चुका है देव शब्द का अर्थ जन्द में दैत्य वा राक्षस है।

× जन्द अवस्था भाग २; पृष्ठ २४५।

वैदिक आर्यों की ओर संकेत है जिनको जरदुश्त देवयशनी अर्थात् देव पूजक कहता था और अपने अनुयायियों को मजदायशनी अर्थात् अहुरमजदा का उपासक कहता था। इस से अनुमान होता है कि उस समय वैदिक आर्यों में यज्ञ में पशु बध करने को प्रथा चल पड़ी थी जो गौतम बुद्ध के समय में भी प्रचलित थी उन्होंने भी "पानी के समान लहू बहाने" को घोर निन्दा की है। यह बात निर्विवाद है कि पारसी लोग यज्ञों में पशु बध कभी नहीं करते थे।

प्राचीन और अर्वाचीन समय के इतिहास से इस बात के अनेक उदाहरण मिलते हैं कि जब कभी पुरोहित लोगों की स्वार्थपरायणता, प्रबलता और सर्व साधारण की अज्ञानता, तथा धार्मिक उदासीनता एवम् अन्य कारणों से धर्म का ह्रास होता है उस समय किसी ऐसे महात्मा का प्रादुर्भाव होता है जो सत्य और न्याय के प्रति प्रेम और आवेश के दृढ़ उत्साह से प्रेरित होकर सुधार के महा कठिन काम को करता है। जो कार्य जरदुश्त को प्राचीन काल में तथा गौतम बुद्ध को उसके पीछे करना पड़ा, वही कार्य राजा राममोहन राय और स्वामी दयानन्द सरस्वती ने हमारे समय में किया। इन सभी महानुभावों ने अपने २ विचारों के अनुसार पवित्र वैदिक धर्म के संशोधन का कार्य किया और उसे अवनति के गर्त्त से निकला। जिसमें वह स्वार्थ व अज्ञानान्धकार के कारण पड़ गया था। फिर कुछ ऐसे कारण उपस्थित हो गये (जिनके विस्तार की यहाँ आवश्यकता नहीं) कि बौद्ध धर्म के समान जरदुश्ती मत ने भी एक नवीन मत का रूप धारण कर लिया, परन्तु हम समझते हैं कि वह बात अच्छी तरह सिद्ध की जा चुकी है कि जिन जिन मुख्य सत्य सिद्धान्तों की जरदुश्त ने शिक्षा दी, वे महात्मा बुद्ध के उपदेशों के समान वेदों पर अवलम्बित तथा उन्हीं से निकले हैं।

उपसंहार

हम देखते हैं कि मुसलमानी और ईसाई मत के सिद्धान्त यहूदी मत से लिये गये हैं। ईसाई मत के कुछ उपदेश बौद्ध धर्म से भी लिये गये हैं। यहूदी मत के सिद्धान्त जरदुश्ती मत से निकले सिद्ध हो सकते हैं। जर-दुश्ती और बौद्ध धर्म दोनों का पता सीधा वैदिक धर्म तक चलता है। क्या इसी प्रकार वैदिक धर्म का भी उद्गम किसी दूसरे मत से दिखाया जा सकता है? कदापि नहीं, क्योंकि प्रोफेसर मोक्षमूलर जिन्होंने जीवन भर वेदों का अध्ययन किया तथा जिनके समान तुलनात्मक धर्म विज्ञान का ज्ञाता कदाचित् ही कोई विद्वान् हुआ हो, लिखते हैं :—

"केवल वैदिक धर्म ही ऐसा धर्म है जिसकी उन्नति बिना किसी बाहर के प्रभाव के हुई है। ·······इबरानियों अर्थात् यहूदियों के मत में भी बैवेलियन, फैनेशियन और कुछ पीछे फारस निवासियों के प्रभाव का पता चला है।"*

वैदिक धर्म की उत्पत्ति केवल दो प्रकार से बतलाई जा सकती है। (१) या तो यह मान लिया जावे कि वैदिक ऋषियों पर ईश्वरीय ज्ञान का प्रकाश हुआ। (२) या यह समझना चाहिये कि उन्होंने बिना किसी की सहायता के केवल अपनी बुद्धि बल से वैदिक धर्म को रच लिया।

वेदों को ईश्वरीय ज्ञान न मानने वाले ग्रन्थकार भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि ईश्वर सम्बन्धी विचार, जो धर्म का प्रधान अङ्ग है, मनुष्य के मतिष्क में स्वयं नहीं उत्पन्न हो सकता। डाक्टर फ्लिन्ट Dr. Flint अपने Theism' नामक पुस्तक में लिखते हैं :—

"जो लोग आस्तिक हैं परन्तु ईसाई मत या ईश्वरीय ज्ञान को नहीं मानते उनका ईश्वर वही है, जिसका अब्राह्म, इसहाक और याकूब ने उपदेश किया। इन प्राचीन यहूदी आचार्यों से परम्परागत ऐतिहासिक प्रणाली द्वारा परमेश्वर का ज्ञान हम तक पहुंचा है। हमने उसको उन से

* India what can it teach us? page 129.

पैतृक सम्पत्तिवत् प्राप्त किया है। यदि वह हम तक इस प्रकार न पहुँचा, यदि हम उस समाज में हुये होते, जिसमें फैला हुआ था तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमें उसका स्वयम् ज्ञान कभी न होता।"*

कुरान में लिखा है कि "प्रत्येक बालक प्राकृतिक धर्म में जन्म ग्रहण करता है, परन्तु उसके मां बाप उसे यहूदी या ईसाई या पारसी बना देते हैं।" इस सिद्धान्त का वर्णन करते हुये डाक्टर फ्लिण्ट कहते हैं कि यह बात ठीक नहीं है। कोई बालक प्रकृति के धर्म में उत्पन्न नहीं होता। वह निपट अज्ञान में जन्म ग्रहण करता है। यदि उसे प्रकृति के ऊपर ही छोड़ दिया जावे तो वह उतना धार्मिक सत्य भी न जान सकेगा जितना महाअज्ञानी माता पिता उसे सिखा सकते हैं।"**

जिन पाठकों ने पिछले दो अध्यायों पर विचार किया है उनमें से बहुत से सम्भवतया हम से इस बात में सहमत होंगे कि परमेश्वर का विचार, जिसकी बाइबिल में शिक्षा दी गई है जन्दावस्ता द्वारा वेदों से लिया गया है और अब्राहम् मूसा व याकूब के पैदा होने से बहुत पहले वैदिक ऋषिगण अनादि एवम् सर्वव्यापक परमेश्वर की उपासना करते तथा वैसा ही करने के लिये सबको उपदेश देते थे। अतएव हम डाक्टर फ्लिण्ट के वाक्यों को कुछ आवश्यक परिवर्तन के पश्चात् दुहराने तथा यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं करते कि—"हम में से सब लोगों का परमेश्वर, जो उसे मानते हैं अर्थात् उनका भी जो वेदों को नहीं मानते और उनका भी जो किसी ईश्वरीय ज्ञान को नहीं मानते, वही है जिसका अग्नि, वायु आदित्य और अंगिरा ने उपदेश किया है। परम्परागत ऐतिहासिक प्रणाली द्वारा बिना किसी रुकावट के इन आदि वैदिक ऋषियों का ज्ञान हम तक पहुँचा। हमने उसको उनसे पैतृक सम्पत्तिवत् प्राप्त किया है। यदि यह हम तक न पहुंचता, यदि हम ऐसे समाज में न हुये होते, जिसमें वह फैला हुआ था, तो निस्सन्देह हम स्वयम् उसे कभी प्राप्त नहीं कर सकते थे।"

* Flint's Theism p. 19

** फ्लिण्ट पुस्तक पृ० २०

आधुनिक समय के विचारशीलों को ऐसी धारणा है कि अन्य समस्त संस्था और विचारों के समान ईश्वर ज्ञान की उत्पत्ति भी विकासवाद की सहायता से की जावे अर्थात् यह कि प्रारम्भ में कुछ अनगढ़ विचार थे और पीछे क्रमशः और लगातार उन्नति होती आई। डाक्टर फ्लिण्ट केवल यहूदी, ईसाई और मुसलमानी मत को आस्तिक मानते हैं। इन तीन मतो का उल्लेख करते हुये मुसलमानी मत के सम्बन्ध में वे लिखते हैं :—

"यद्यपि मुसलमानी मत सब से पीछे प्रकट हुआ तथापि वह सबसे कम उन्नत और सबसे कम परिपक्व है। ईश्वर के विचार को जिसे उसने दूसरों से लिया था उन्नत और अभ्युदित बनाने के बदले उलटा दूषित और अस्तव्यस्त कर डाला *।"

---

* परमेश्वर के विचार के सम्बन्ध में हम विकासवाद का इन अर्थों में विरोध नहीं करते कि काल की गति और सदैव उन्नतिशील ज्ञान के द्वारा हमें ईश्वरीय गुणों को उत्तरोत्तर अधिक समझने की योग्यता प्राप्त होती जाती है। यहाँ हम डाक्टर फ्लिण्ट के (Theism) से कुछ शब्द उद्धृत करते हैं :—

"सहस्रों वर्ष पूर्व ऐसे मनुष्य थे जो बहुत ही साधारण शब्दों में कहते थे कि ईश्वर सर्वशक्तिमान है। ईश्वर पर विश्वास रखने वाला मनुष्य इस बात को अवश्य स्वीकार करेगा कि आधुनिक ज्योतिष सम्बन्धी अन्वेषणायें उससे अधिक ईश्वर विषयक ज्ञान उत्पन्न कराती हैं, जितना कि किसी प्राचीन विद्वान् वा इबरानी लोगों कोगों को हो सकता था। बहुत समय हुआ जब मनुष्य ने परमेश्वर की बुद्धिमत्ता पर विश्वास किया था। यह बात प्रत्येक समझदार आस्तिक को माननी पड़ेगी कि विज्ञान के अनेक अविष्कारों से मनुष्य के विचार ईश्वर के ज्ञान की महिमा के विषय में बहुत ठीक और विस्तृत हो जाते हैं, जिससे यह जानने में सहा-

मि० ग्रान्ट एलिन Mr. Grant Allen विकासवाद के पूर्ण पक्ष-

पाती होते हुये भी ईसाई मत के सम्बन्ध में ऐसी ही सम्मति प्रकट करते हैं कि :—ईसाइयों ने ईश्वर सम्बन्धी विचार यहूदियों से लेकर उसे बिगाड़ डाला। वे कहते हैं—"ईसाइयों ने यह महत्वपूर्ण विचार यहूदियों से लिया और उचित शब्दों में यह कहा जा सकता है कि पुत्र और पवित्र आत्मा को मिलाकर उस विचार को ईसाइयों ने बिगाड़ दिया, क्योंकि ऐसा करने से यहूदियों के ईश्वर की एकता भ्रष्ट हो गई।

पाँचवें अध्याय के दूसरे और चौथे अध्याय के पाँचवें अंश में हम दिखा चुके हैं कि परमेश्वर का विचार वेदों से जन्दावस्ता और जन्दावस्ता से बाइबिल में जाने से कुछ उन्नत नहीं हुआ उलटा, बिगड़ गया।

प्रो० मोक्षमूलर अपने ग्रन्थ भाषा-विज्ञान Science of Language में धर्म के इतिहास की इस विचित्र बात पर इस प्रकार लिखते हैं — "मेरा विश्वास है कि जितना हम पीछे को हटते हैं और जितने हम हर एक धर्म के सबसे प्राचीन मूल की जाँच करते हैं उतना ही अधिक शुद्ध ईश्वर सम्बन्धी विचार और हर एक नये धर्म के संस्थापक का उतना ही अधिक शुद्ध भाव हम पावेंगे।*" विकासवाद के मानने वाले

यता मिलती है कि हमारी पृथ्वी का अन्य लोकों के साथ क्या सम्बन्ध है? वह अपनी वर्त्तमान दशा में कैसे आई? उस पर विविध प्रकार के पौधे और जीव किस प्रकार पैदा किये गये? उनके द्वारा वह किस प्रकार सुसज्जित और उन्नत हुई? ये किस प्रकार विकसित और विभाजित हुये? उनकी आवश्यकतायें किस प्रकार पूर्ण की गईं?" (पृ० ५४-५५) डाक्टर फ्लिण्ट स्वीकार करते हैं कि—"मेरा यह विश्वास नहीं कि हम ईश्वर के सम्बन्ध में कोई नवीन सत्य खोज सकेंगे।" विकासवाद पहिले बीज वा अंकुर का होना मानता है, वही ज्ञान के अंकुर या बीज हम वेदों में पाते हैं।

* Evolution of the Idea of God p. 14.

इन घटनाओं का किस प्रकार समर्थन करेंगे जो उनके सिद्धान्तों से सर्वथा प्रतिकूल हैं ? *

जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है हमें दो बातों में से एक स्वीकार करनी पड़ेगी अर्थात् या तो यह मान लिया जावे कि वैदिक ऋषियों पर ईश्वर के ज्ञान का प्रकाश हुआ, अथवा इस पर विश्वास किया जावे कि उन्होंने बिना किसी सहायता के ऐसा धर्म और फिलासफी गढ़ ली जो विशुद्ध और पूर्ण है, साधारण और महान् है; सत्य और युक्ति-युक्त है, जिससे दूसरे धर्मों के प्रवर्त्तक तथा आचार्यों ने अपने धार्मिक विचारों को लिया, जिसके द्वारा किसी न किसी रूप में मनुष्य मात्र के ऊपर प्रकाश और शान्ति का प्रचार हुआ, जिसने अन्धकार में मनुष्य को मार्ग दिखाया; भय में शक्ति प्रदान की और दुःख में सान्त्वना दी। हमको यह न भूलना चाहिये कि ये ऋषि लोग, जैसा कि सब ही मानते हैं अति प्राचीन और प्रारम्भिक समय में हुये थे, जबकि मानव-जाति अपनी बाल्यावस्था में थी। यह बात हम पाठकों ही पर छोड़ते हैं कि उपर्युक्त दोनों बातों में से जो अधिक युक्ति-संगत हो उसे वे स्वीकार करें। उनकी रुचि चाहे जिधर हो परन्तु हम आशा करते हैं कि वेद को समस्त धर्मों का मूल स्रोत सिद्ध करने के लिये पर्याप्त कथन किया जा चुका है। हमारी समझ में ऊपर की दूसरी बात को मानना धार्मिक इतिहास की गति के विरुद्ध है।

इस सम्बन्ध में एक ईसाई पादरी, फिलिप साहब Maurice Phillips of London Mission, Madras के उस व्याख्यान में से कुछ उद्धरण देना अनुचित न होगा जो उन्होंने वेदों की शिक्षा विषय पर सन् १८९३ में दक्षिणी अमेरिका शिकागो की धार्मिक महासभा Parliament of Religions में दिया था। वे कहते हैं:—

"हम देख चुके हैं कि वरुण की स्तुति में जो आर्य्यों के ईश्वर का सबसे प्राचीन नाम है, ईश्वर का सबसे ऊँचा विचार और पाप का

* Science of Language Voll. II. p. 467

अधिक से अधिक गहरा नैतिक भाव पाया जाता है।" वे आगे लिखते हैं:—

"यह स्पष्ट है कि (१) वैदिक धर्म के मूल तक जितना ऊँचा हम अपनी खोज को ले जाते हैं उतना ही शुद्ध और सरल ईश्वर का विचार हमको मिलता है (२) और जितना जितना समय की धारा के नीचे की ओर हम आते हैं उतना ही बिगड़ा हुआ और जटिल वह विचार पाया जाता है। इसलिये हम ये परिणाम निकालते हैं कि वैदिक आर्य्यों ने ईश्वरीय गुण और स्वभाव का ज्ञान सांसारिक अनुसार वा युक्ति से प्राप्त नहीं किया क्योंकि उस दशा में हमको वह बात जो आरम्भ में मिलती है अन्त में मिलनी चाहिये थी, इसलिये हमको ऐसा उत्तर ढूंढ़ना चाहिए जिससे (आरम्भ में) वरुण जैसे ईश्वर के शुद्ध ज्ञान का और उस लगातार अवनति का भी समाधान हो जावे जिसका अन्त ब्रह्मा में पाया जाता है और यह समाधान किस उत्तर से ऐसे अच्छे प्रकार हो सकता है जैसा इस सिद्धान्त से कि आरम्भ में ईश्वर द्वारा ज्ञान प्राप्त हुआ ?" *

एच॰ पी ब्लैवस्टकी के शब्दों को यहाँ हम फिर दुहरा सकते हैं कि "आर्य सैमी, या तुरानियों में ऐसा कोई, धर्म प्रवर्त्तक नहीं हुआ, जिसने किसी नये धर्म का प्रचार या नवीन सत्य का प्रकाश किया हो। ये समस्त प्रचार करने वाले हुये हैं, मौलिक आचार्य नहीं।" फिर धर्म का असली आचार्य कौन है ? 'एक ईश्वर' उसके अतिरिक्त और कौन हो सकता है ? ऐसा ही पतञ्जलि मुनि कहते हैं :—

"स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ।"

"वह प्राचीन से प्राचीन ऋषियों का आचार्य है क्योंकि वह काल-बन्धन से मुक्त है।" (योग सूत्र १। १। २६)

---

* The Teaching of the Vedas by Maurice Phillips (Longman Green & Co.) p. 104.

जिन मुख्य-मुख्य धाराओं में होकर धर्म-नद निरन्तर बहकर आया है उनके किनारे-किनारे होकर हम धर्म के स्रोत की ओर चले हैं। कुरान और बाइबिल हमें जन्दावस्ता तक ले जाते हैं और जन्दावस्ता वेदों तक। वेदों से आगे हम नहीं बढ़ सकते। यहाँ आकर हमें ज्ञात होता है कि धर्म की धारा सदैव रहनेवाले हिम में लोप हो जाती है, जो स्वर्गीय आकाश से उसके ऊपर गिरता है। तो क्या अब हमारा यह कथन ठीक नहीं है कि—"वेद ही धर्मों का आदि स्रोत है"?

०००

ओ३म्

आर्यसमाज कलकत्ता के संक्षिप्त विवरण एवं स्थायी क्रिया-कलाप

पूर्वांचल में अनेकानेक धार्मिक एवं सामाजिक गतिविधियों के केन्द्र-बिन्दु आर्यसमाज कलकत्ता की स्थापना १८८५ में हुई, किन्तु इसके स्थापना की पूर्वपीठिका इससे १३ वर्ष पूर्व ही बन गई थी जब १६ दिसम्बर १८७२ को स्वामी दयानन्द का कलकत्ता आगमन हुआ। स्वामी दयानन्द ब्राह्म समाजियों को ऋषि-मुनियों की विचारधारा से अलग होते देख रहे थे। उन्होंने निराकार ईश्वर का वर्णन, वेदों की महिमा, मूर्तिपूजा का खण्डन इत्यादि सभी धार्मिक स्थलों का स्पर्श किया और लोग स्वामी दयानन्द के मिशन से बहुत प्रभावित हुए! यहाँ सब संचित प्रभाव परवर्ती काल में आर्यसमाज की संचित निधि की तरह काम आया।

शिक्षा प्रचार

आर्यसमाज ने सारे देश में स्कूल, कालेज, कन्या-पाठशाला, गुरुकुल इत्यादि का बड़ा व्यापक क्षेत्र बना लिया था। कम से कम कन्याओं और शूद्रों के शिक्षा देने में आर्यसमाज का प्रयास सर्वप्रथम और अद्वितीय रहा।

कलकत्ता इस विचारधारा से कैसे अछूता रह सकता था। यहाँ के आर्यसमाजी कार्यकर्त्ताओं के हृदय में शिक्षा की भावना बड़ी बलवती

रही। उस समय कलकत्ता में ईसाई मिशन के स्कूल थे किन्तु जिस हिन्दू समाज में १०-१२ वर्ष की लड़कियों का विवाह अनिवार्य समझा जाता था वहाँ लड़कियों के पढ़ने की बात उन्हें सीधा ख्रीस्तान बनाने जैसी लगती थी। उस समय लड़कियों को शिक्षा देने की बात सोच ही कौन सकता था? आर्यसमाज कलकत्ता के अधिकारियों में आर्य कन्या महाविद्यालय के संगठन के लिए दृढ़ भावना काम करने लगी थी।

स्वामी दयानन्द ने आर्यसमाज की स्थापना की, उसके १० नियम बनाये। उनमें अष्टम नियम है, अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए। नवम नियम है प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए। तृतीय नियम है, वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। इन नियमों को एक साथ पढ़ने से विद्या का प्रचार, सबकी उन्नति में अपनी उन्नति का बोध और वेद प्रचार आर्यसमाज के नियमों में सम्मिलित है।

सन् १८८३ ई० में दीपावली के दिन जब स्वामी जी का देहावसान हो गया तो स्वामी दयानन्द के भक्तों के मन में उनकी स्मृति को चिरस्थायी करने के लिए शिक्षालय खोलने की बात आई थी। इसी क्रम में आर्यसमाज कलकत्ता ने सन् १९०२ ई० में नाई टोला में कन्या विद्यालय खोला। आर्यसमाजी कार्य-कर्त्ता, सेठसाहूकार दानदाता बहुमुखी प्रयास चला रहे थे। सन् १९०७ में आर्यसमाज के लिए भूमि ली गई। सन् १९१० ई० में आर्यसमाज का मन्दिर बना। उसी की एक कड़ी यह भी है कि १९०९ में कन्या-विद्यालय का भवन खरीदा गया। सेठ श्री किशनलाल पोद्दार की सूचना के अनुसार सन् १९०९ ई० में कन्या विद्यालय का भवन बनने निमित्त एक सभा हुई जिसमें निम्न रूप से दानी सज्जनों ने इसकी घोषणा की थी—

१) श्री सेठ जुगलकिशोर बिड़ला	२५०००)
२) श्री सेठ छाजूराम चौधरी	२५०००)

३) श्री सेठ जयनारायण पोद्दार २५०००)

४) श्री तुलसीदास दत्त २५०००)

विद्यालय की लड़कियों ने एक ऐसा गीत प्रस्तुत किया जिससे सेठ श्री छाजूराम चौधरी ने घर जाकर २५०००) की राशि को ५०,०००) कर दिया। सेठ श्री जुगल किशोर विड़ला ने उक्त राशि के अतिरिक्त ७५०००) देकर रानी विड़ला की स्मृति में २० न० विधान सरणी स्थित प्रसिद्ध आर्य कन्या महाविद्यालय का भवन बनवाया। कन्या विद्यालय के पृष्ठ भाग में जो भवन बना है उसके निर्माण में सेठ श्री गुरु प्रताप पोद्दार ने सेठ रघुमल चैरिटी ट्रस्ट से ७५०००) दिलवाने का प्रशंसनीय कार्य किया। श्री गुरुप्रताप पोद्दार रघुमल चैरिटी ट्रस्ट के ट्रस्टी थे और उनके प्रयत्न से ही इस राशि का मिलना सम्भव हो सका था। मकान का स्वामी आर्य महिला शिक्षा मण्डल ट्रस्ट कलकत्ता है। ट्रस्ट ने इस भवन में विद्यालय चलाया। इस समय आर्य कन्या महाविद्यालय में लगभग १६०० छात्राएँ ७० अध्यापिकाएँ हैं तथा महर्षि दयानन्द कन्या विद्यालय जिसकी स्थापना १९८० में हुई, इसी भवन में चलता है जिसमें लगभग २५० छात्राएँ एवं १२ अध्यापिकाएँ हैं। आर्य महिला शिक्षा मण्डल ट्रस्ट कलकत्ता कन्या विद्यालय की उन्नति के लिए, साथ ही महिलाओं में बहुविध शिक्षा प्रचार करने की दृष्टि से २४ सितम्बर १९३५ ई० को आर्य महिला शिक्षा मण्डल कलकत्ता के नाम से इस ट्रस्ट की रजिस्ट्री करायी गयी। इस ट्रस्ट का मुख्य उद्देश्य कन्या विद्यालय को अच्छी तरह से संचालित करना था। जिन व्यक्तियों ने मण्डल का निर्माण किया था उनके नाम हैं: १—सर छाजूराम जी चौधरी, २—राय रलाराम बहादुर, ३—सेठ जुगल किशोर जी बिड़ला, ४—सेठ नागरमल जी मोदी, ५—सेठ तुलसीदास जी दत्त, ६—सेठ दीपचन्द जी पोद्दार, ७—लाला हंसराज गुप्त एम० ए० बी० एल०, ८—श्री हरगोविन्द जी गुप्त। इन आजीवन ट्रस्टी के अलावा ३ वर्षों के लिए मण्डल के ७ ट्रस्टी आर्यसमाज कलकत्ता द्वारा निर्वाचित होते हैं तथा मंत्री

ओर प्रधान पदेन इस ट्रस्ट के सदस्य है। इस प्रकार वर्त्तमान में इस ट्रस्ट के आजीवन ट्रस्टी इस प्रकार हैं—श्रीलक्ष्मी निवास बिड़ला, सेठ किशन-लाल पोद्दार, श्री महेन्द्र मोहन चौधरी, श्री शिवचन्द्र राय अग्रवाल, श्री पूनम चन्द आर्य, (दिवंगत) श्रीसीताराम आर्य, श्रीदेवीप्रसाद मस्करा, एवं श्रीरुलियाराम गुप्त, सभी ट्रस्ट के आजीवन ट्रस्टी हैं। आर्यसमाज कलकत्ता द्वारा तीन वर्गों के लिए निर्वाचित सदस्यों के नाम इस प्रकार हैं—१—सर्वश्री लक्ष्मण सिंह, २—सुखदेव शर्मा, ३—यशपाल-वेदालंकार, ४—छबील दास सैनी, ५—श्रीमती विद्यावती दत्ता, ६—प्रो० उमाकान्त उपाध्याय, ७—राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल, ८—श्रीनाथ दास गुप्त, ९—राजाराश जायसवाल। वर्त्तमान में इस मण्डल के प्रधान श्री किशन लाल पोद्दार और मन्त्री श्री रुलियाराम गुप्त हैं।

आर्य कन्या महाविद्यालय की प्रबन्ध समिति में इस समय श्री किशन लाल पोद्दार, अध्यक्ष, श्री सुखदेव शर्मा, मन्त्री एवं श्रीमती सरोजनी शुक्ला पदेन संयुक्त मन्त्री हैं। सदस्यगण श्री सीताराम आर्य, श्री पूनम चन्द आर्य, (दिवंगत) प्रो० उमाकान्त उपाध्याय, श्रीरामस्वरूप खन्ना, श्री शिवचन्दराय अग्रवाल, श्री डा० अतुल नारायण, श्री उपेन्द्र नाथ राय, श्री मती रेखा सेन एवं श्रीमती प्रभावती बनर्जी हैं।

रघुमल आर्य विद्यालय

इस विद्यालय की स्थापना १९३६ ई० में की गई। इसका आरम्भिक नाम आर्य विद्यालय है। कन्याओं की शिक्षा की महत्ता को ध्यान में रखकर आर्य समाज के नेताओं, कार्यकर्त्ताओं ने कन्या विद्यालय की स्थापना १९०२ में ही कर दी थी। बालकों के लिए विद्यालय का अभाव न था, किन्तु यह न्यूनता अवश्य ही खटकती थी कि विशेष रूप से अछूत कहे जाने वाले वर्ग के बच्चों के लिए कोई विद्यालय न था। आर्यसमाज वर्णव्यवस्था गुण-कर्म-स्वभाव से मानता है, जन्म से नहीं। अतः आर्य समाजियों की निगाह में छूत अछूत का मसला केवल इस रूप में था कि अछूतों को कैसे वृहद् हिन्दू समुदाय का अंग बना लिया जाय।

इन्हीं सब उद्देश्यों की भूमिका में सन् १९३९ में आर्य विद्यालय की स्थापना हुई। इस स्थापना में इन सज्जनों का सहयोग रहा १—श्री विष्णुदासजी बांसल, २—सेठ दीपचन्द पोद्दार, ३—श्री हरगोविन्द गुप्त, ४—पं० श्री विद्या प्रसाद जी, ५—श्री मूलचन्द अग्रवाल, ६—श्री किशनलाल जी पोद्दार, ७—श्री लक्ष्मी प्रसाद जी। विद्यालय के वर्तमान भवन जो कि ३३ सी०, मदन मित्रा लेन में है, उसके इस स्वरूप में आने का श्रेय जहाँ आर्य विद्यालय ट्रस्ट, के उत्साही सदस्यों को है वहीं इसमें रघुमल चैरिटी ट्रस्ट के आदर्श दान का बड़ा महत्व है जो कि सेठ किशन लाल पोद्दार के सूझबूझ एवं दूरदर्शिता से सम्भव हो सका था। आर्य विद्यालय ट्रस्ट के वर्त्तमान ट्रस्टी हैं: १—श्री भगवती प्रसाद खेतान प्रधान २—श्री देवकीनन्दन पोद्दार, मन्त्री ३—श्री राजेन्द्र कुमार पोद्दार, ४—श्री नन्दलाल कानोड़िया, ५—श्री देवी प्रसाद मस्करा, ६—श्री सीताराम आर्य, ७—श्री रघुवीर प्रसाद गुप्त, ८—श्री कृष्णलाल खट्टर, ९—रिक्त।

विद्यालय की प्रबन्ध समिति इस समय अपूर्ण स्थिति में है। इस समय केवल ६ सदस्य हैं—श्री देवकीनन्दन पोद्दार, अध्यक्ष, २—श्री रघुवीर प्रसाद गुप्त; ३—श्री सुखदेव शर्मा, ४—प्रो० उमाकान्त उपाध्याय, ५—श्री रामलखन सिंह, ६—श्री किशोरी रमण तिवारी।

इस समय विद्यालय में लगभग ७०० छात्र एवं १८ अध्यापक हैं, ४ स्थान रिक्त। विद्यालय प्रबन्ध समिति के कुछ कानूनी दावपेचो की उलझन में पड़ने के कारण रघुमल आर्य विद्यालय अपने पुराने गौरवपूर्ण स्थान की रक्षा करने में असमर्थ हो गया है। इन परिस्थितियों को ध्यान में रखकर विद्यालय के संस्थापक आर्यसमाज कलकत्ता ने कोर्ट से यह प्रार्थना की है कि वर्त्तमान परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए जबतक अन्य स्थगन आदेशों का निर्णय नहीं हो जाता तबतक के लिए संस्थापक आर्यसमाज को सर्वाङ्गीण परिपूर्ण प्रबन्ध समिति विशेष संविधान के अनुसार बनाने का अधिकार दिया जाय।

प्राथमिक विभाग में इस समय लगभग ८०० छात्र एवं १४ अध्यापक हैं। विद्यालय ७४, अमहर्स्ट रो में दिन के समय एवं ३३ सी, मदन मित्रा लेन में प्रातः चलता है। माध्यमिक एवं प्राथमिक दोनों विभाग सरकारी सहायता प्राप्त हैं। दोनों विभोगों में वैदिक धर्म की शिक्षा दी जाती है और प्रत्येक शनिवार को सामूहिक यज्ञ होता है एवं समय-समय पर विद्वानों के प्रवचन भी कराये जाते हैं।

क्रान्ति केन्द्र

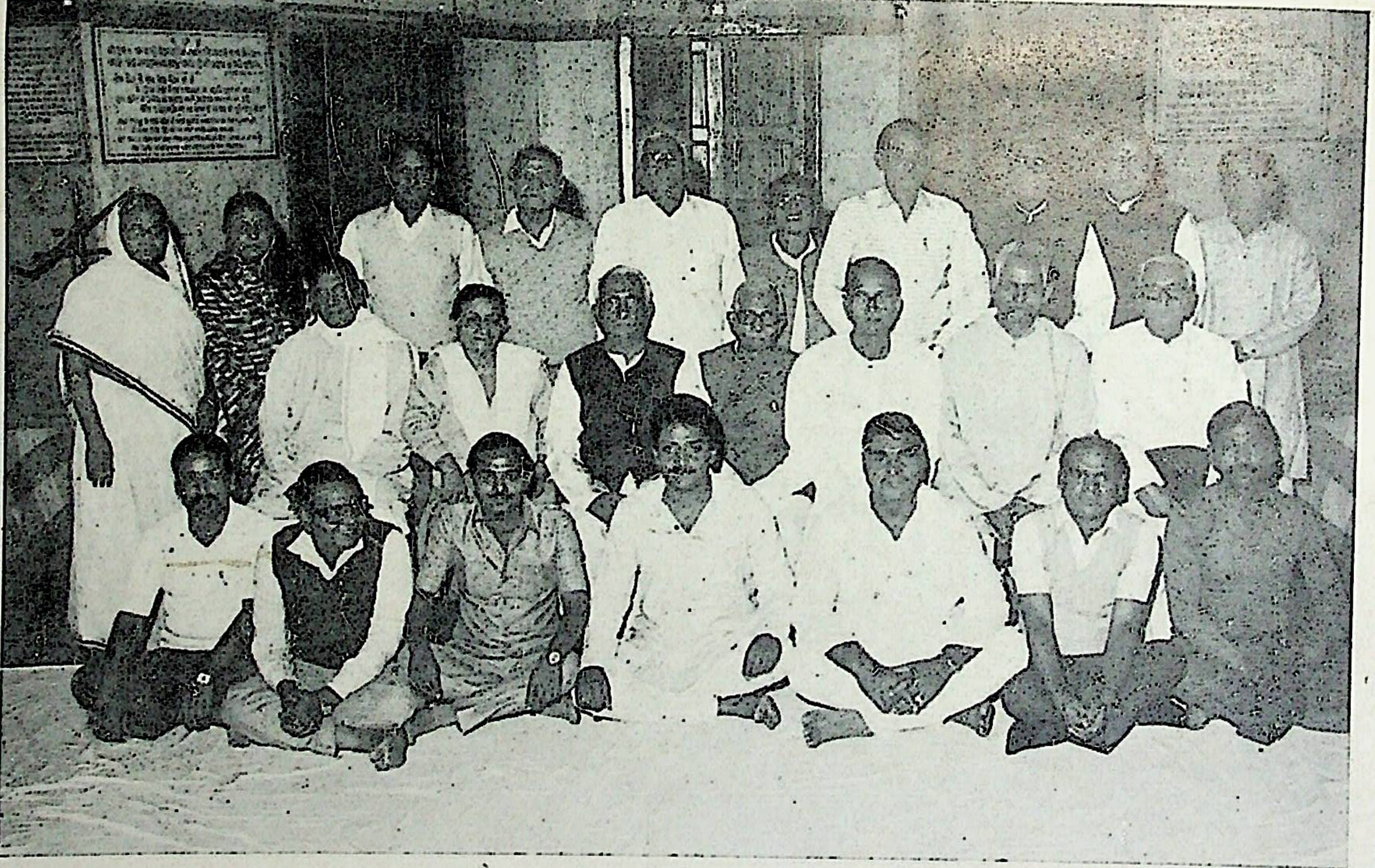
आर्य समाज मन्दिर : आर्यसमाज कलकत्ता की भूमि स्वदेशी आन्दोलन की भूमि रही है। यहाँ लाला लाजतराय, बाल गंगाधर तिलक और बिपिन चन्द्र पाल जैसे स्वदेश भक्त क्रान्तिकारी राष्ट्रीय नेताओं के व्याख्यान हो चुके हैं। यह मन्दिर-निर्माण के पूर्व का इतिहास है। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी अमर शहीद भगत सिंह दो दो बार कलकत्ता प्रवास के दौरान आर्यसमाज मन्दिर में केवल ठहरे ही नहीं थे वरन् यहाँ पर इस पवित्र वेद मन्दिर में क्रान्तिकारी न केवल निवास की दृष्टि से अपने को निरापद समझते थे अपितु कई-कई क्रान्तिकारी एक साथ इकट्ठे होकर क्रान्ति के कुछ कार्यों की योजना भी बनाते थे।

सहायता कार्य

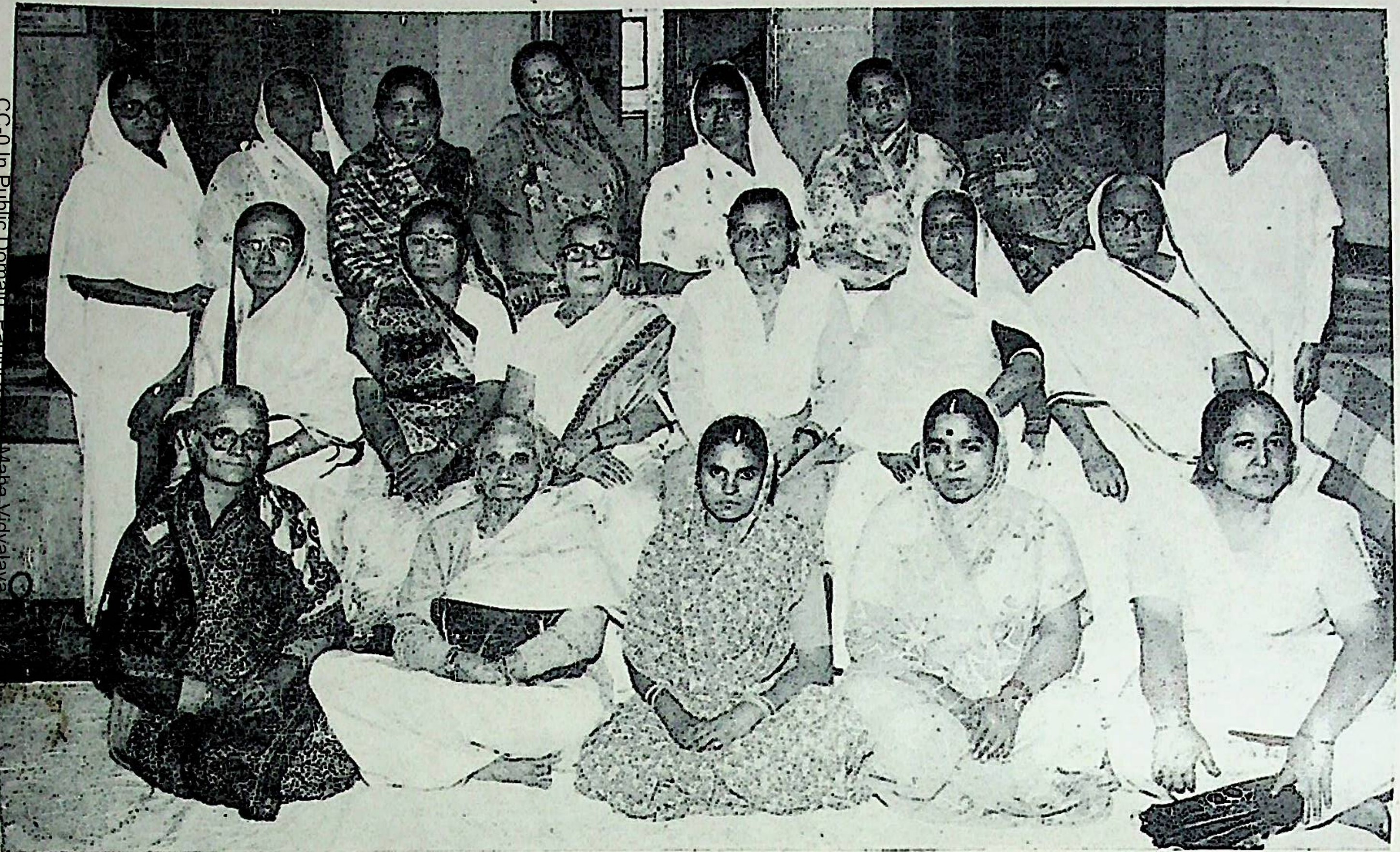
१९३४ के विहार के भूकम्प, १९४२ के मिदनापुर के समुद्री तूफान, बंगाल का अकाल, पूर्वी बंगाल का दुर्भिक्ष, साम्प्रदायिक दंगे से नोआखाली और त्रिपुरा में सहायता केन्द्र खोलना, हावड़ा स्टेशन पर शरणार्थी शिविर, विलोनिया केन्द्र खोलना एवं आर्यसमाज रिलीफ सोसाइटी की स्थापना, पूर्वी बंगाल विस्थापितों की सहायता इत्यादि सहायता कार्य से आर्यसमाज कलकत्ता का इतिहास भरा है। इस वर्ष २९-११-८७ से पण्डित प्रियदर्शन जी के निर्देशन में दिनाजपुर जिले के बाढ़ पीड़ित में १७५ कम्बल बाँटे गये।

विद्यार्थी सहायता, उपदेशक सहायता

आर्यसमाज कलकत्ता द्वारा विद्यार्थी सहायता, वैदिक धर्म प्रचारक



अन्तरंग, विशेष आमन्त्रित एवं अन्य सदस्यगण



एवं उपदेशक सहायता, महिला कल्याण इत्यादि पर प्रति वर्ष प्रचुर व्यय किया जाता है।

निःशुल्क नेत्र शल्य चिकित्सा शिविर

आर्यसमाज कलकत्ता की युवा शाखा "आर्य युवा जन" द्वारा ४ वर्षों से प्रतिवर्ष निःशुल्क नेत्र शल्य चिकित्सा शिविर लगाया जाता है जिसमें ४०-५० रोगी प्रतिवर्ष मोतियाबिन्द जैसे नेत्र रोग से छुटकारा पाते हैं। गत वर्ष नवम्बर में लगभग ४८ रोगियों का आपरेशन आर्यसमाज के ऊपरी हाल (श्रीमती सुवादेवी पोद्दार हाल) में ८ नवम्बर को किया गया। शिविर १३ नवम्बर तक चला जिसमें आर्य युवाजन के उत्साही कार्यकर्त्ताओं ने बड़ी लगन से रोगियों की देखभाल की। रोगियों को दूध, फल, भोजन, दवा सब मुफ्त दी गई। इस वर्ष चिकित्सा शिविर अप्रैल १९८९ में लगेगा।

पुस्तकालय एवं विक्री विभाग

आर्यसमाज मन्दिर में प्रवेश करते ही दक्षिण पार्श्व में समाज का अपना वाचनालय है जिसके खुलने का समय प्रातः ७ से ११ बजे तक तथा संध्या ४ से ८ बजे तक है। वाचनालय में देश में प्रकाशित विविध भाषाओं के समाचार पत्रों एवं सांस्कृतिक पत्रिकाओं की सुव्यवस्था है।

पुस्तकालय में सहस्रों पुस्तकें हैं। इनकी सूची समय-समय पर बनती सुधरती रहती है। आर्यसमाज में आरम्भ से ही पुस्तकालय रहा है। इसमें महत्वपूर्ण पुस्तकें क्रय करके रख दी जाती रही हैं। सदस्यों को पढ़ने के लिये पुस्तकें देने को एक अलग रजिस्टर है जिसमें सदस्यों को दी जाने वाली पुस्तकें इत्यादि अंकित कर दी जाती हैं।

जिस समय गोविन्दराम हासानन्द का प्रकाशन कार्य कलकत्ता में था उस समय पुस्तकालय में विक्री विभाग खोला गया था। इस विक्री विभाग में आज भी पुस्तकें आती हैं। नूतन साहित्य आर्य सदस्यों को उपलब्ध होता रहता है। आर्यसमाज हजारों रुपयों का विनियोग पुस्तकों के खरीदने वेचने में करता है। इस समय श्रीघनश्याम मौर्य पुस्तकाध्यक्ष हैं।

पुस्तक मेला

पिछले कुछ वर्षों में कलकत्ता में एक नई प्रवृत्ति का उदय हुआ है। यहाँ प्रतिवर्ष पुस्तक मेला लगता है जिसमें आर्यसमाज कलकत्ता के उत्साही कार्यकर्त्ता वैदिक साहित्य को नये लोगों तक पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं।

साप्ताहिक सत्संग

१ रविवारीय साप्ताहिक सत्संग

२ बाल सत्संग

३ आर्य-स्त्री समाज कलकत्ता महिला सत्संग

महर्षि दयानन्द दातव्य औषधालय

महर्षि दयानन्द दातव्य औषधालय का प्रारम्भ प्रसिद्ध आर्य महोपदेश ठाकुर अमर सिंह जी (स्व० महात्मा अमर स्वामी जी) के कलकत्ता में १९५९ में प्रचारार्थ आने के समय से सम्पन्न कराये गये जो कुछ प्रमुख कार्यों में से एक है। ठाकुर अमर सिंह जी आयुर्वेद के कुशल जानकर हैं। उस समय आर्यसमाज कलकत्ता के कार्यालय का भार श्री दिनेश चन्द्र शर्मा पर था। इस प्रकार ठाकुर अमर सिंह जी और आयुर्वेद भास्कर श्री दिनेश जी शर्मा दोनों औषधालय के लिए सोने में सोहागा सिद्ध हुए। इनके साथ सहयोग श्री अमृत नारायण झा सहायक का कार्य करने लगे। आर्यसमाज मन्दिर भवन में प्रवेश करते समय बायीं ओर दातव्य औषधालय है। औषधालय को व्यवस्था का भार आर्यसमाज के किसी वरिष्ठ अधिकारी कार्यकर्ता पर रहता है। श्री छबील दास सैनी, श्री रलियाराम गुप्त, श्रीमती विद्यावती दत्त औषधालय की व्यवस्था और आर्थिक स्थिति को सुधारने में सहयोग करते रहते हैं। औषधालय के वार्षिक विवरण को देखने से पता चलता है कि वर्ष भर में लगभग २७००० रोगियों की चिकित्सा की गयी। प्रतिदिन रोगियों की संख्या लगभग ९० रहती है। औषधालय पर वार्षिक व्यय १९०००) के लगभग आता है, वर्तमान में

औषधालय चिकित्सक कविराज श्री अमृतनारायण झा हैं। वे बड़ी सूझ-बूझ और लगन के साथ अधिकांश औषधियों का निर्माण आर्यसमाज मन्दिर में ही करते हैं। अधिकारियों में श्री छबील दास सैनी औषधालय की व्यवस्था करते हैं और श्रीमती विद्यावती दत्त आर्थिक सहयोग पर ध्यान रखती हैं तथा प्रतिवर्ष लगभग ६०००) स्वयं एकत्र करके लाती हैं।

रविवारीय साप्ताहिक सत्संग

आर्यसमाज कलकत्ता के प्रमुख साप्ताहिक सत्संग में प्रत्येक रविवार को प्रातः यज्ञ पं० नचिकेता भट्टाचार्य के सान्निध्य में प्रातः ८ से ९ बजे तक होता है। सन्ध्या, हवन और भजन के साथ सत्यार्थ प्रकाश की कथा और फिर प्रमुख आध्यात्मिक उपदेश का कार्यक्रम रहता है। पुरुष, महिलायें सब मिलकर २०० से ३०० तक की उपस्थिति रहती है। इस समय सत्यार्थ प्रकाश की कथा का भार पं० रामनरेश जी शास्त्री जैसे स्वाध्याय-शील, परम विद्वान्. सिद्धान्त मर्मज्ञ के ऊपर है। आध्यात्मिक उपदेशों की कड़ी में प्रमुख व्याख्यान का भार पं० उमाकान्त उपाध्याय के ऊपर है। आर्यसमाज के अधिकारियों को इस बात का सन्तोष है कि विश्व विश्रुत् विद्वान् पं० अयोध्या प्रसाद जी, प्रसिद्ध वैदिक विद्वान पं० सुखदेव जी विद्या वाचस्पति, आचार्य पं० रमाकान्त जी शास्त्री की कड़ी में प० उमाकान्तजी जैसे विद्वान् प्रमुख व्याख्यान के लिये उपलब्ध हो गए हैं। पं० उमाकान्त उपाध्याय के व्याख्यान की अपनी अलग शैली है। गहन से गहन दार्शनिक बातों को भी बड़ी सहजता से अपने श्रोताओं में उतार देते हैं। बहुत से लोग तो केवल पण्डित जी के व्याख्यान सुनने के लिए आते हैं। आजकल कुछ वर्षो से उपनिषदों की कथा चल रही है।

बाल सत्संग

आर्यसमाज कलकत्ता अल्प-वय बालक बालिकाओं में धार्मिक भावना के प्रचार की दृष्टि से बाल-सत्संग का आयोजन करता है। वर्षों से यह कार्यक्रम पं० प्रियदर्शन जी सिद्धान्त भूषण के सान्निध्य में होता

हैं। पं० जी बच्चों को सन्ध्या, अग्निहोत्र, भजन इत्यादि सिखाते हैं। उन्हीं से अभ्यास कराते हैं। बच्चों में पूरा पुरोगम पर्याप्त प्रिय हैं। वार्षिकोत्सव के समय बच्चों के इस प्रोग्राम का सार्वजनिक रूप से प्रदर्शन होता है और उन्हें पुरस्कार भी दिया जाता है। बच्चों की संख्या बढ़ते रहना भी स्वाभाविक है किन्तु औसत में ५० के लगभग बच्चे इस कार्यक्रम में भाग लेते हैं।

आर्य स्त्रीसमाज कलकत्ता

आर्य स्त्रीसमाज की स्थापना सन् १९५२ ई० में हुई। माता विद्या वती सभरवाल, श्रीमती बीरांवाली मनचन्दा आदि ने उत्तर कलकत्ता की महिलाओं के लिये आर्यसमाज कलकत्ता में आर्य स्त्रीसमाज की स्थापना कर डाली। वर्तमान में आर्य स्त्रीसमाज के सदस्याओं की संख्या लगभग ४० है। माता केकनवती बंसल इसकी प्रधाना तथा श्रीमती सुमना आर्या इसकी मन्त्री हैं।

महिला सत्संग

आर्यसमाज कलकत्ता का महिला सत्संग प्रत्येक बुधवार को अपराह्न में लगा करता है। सन्ध्या, हवन, भजन, कथा, उपदेश सारे कार्यक्रम आदरणीय पं० प्रियदर्शन सिद्धान्तभूषण जी की देखरेख में सम्पन्न होते हैं।

बंगला सत्संग

आर्यसमाज कलकत्ता में बंगला सत्संग बहुत दिनों तक पं० दीनबन्धु जी वेदशास्त्री के द्वारा होता रहता था। पं० दीनबन्धु जी वेदशास्त्री बड़े कुशल प्रचारक एवं मिशनरी कार्यकर्त्ता थे, परन्तु पं० दीनबन्धु जी वेदशास्त्री के पश्चात् यह कार्य शिथिल-सा पड़ गया। पर अब पुनः पं० नचिकेता भट्टाचार्य द्वारा संचालन हो रहा है

बंगला साहित्य प्रचार

आर्यसमाज के सिद्धान्तों एवं वैदिक धर्म के प्रचारार्थ आर्यसमाज कलकत्ता द्वारा समय-समय पर बंगला पुस्तकों का प्रकाशन एवं वितरण किया जाता है। इसके अतिरिक्त और भी लघु पुस्तिका (ट्रेक्ट)का

प्रमाशित होता रहता है। पूना प्रवचन (उपदेश मंजरी) का वंगला अनुवाद एवं आर्याभिविनय, दयान्नद चरित्र का वंगला अनुबाद तथा पं० प्रियदर्शनजो सिद्धान्तभूषण द्वारा अनूदित आर्यसमाज कलकत्ता का इतिहास वंगलाभाषा में छप चुका है।

साहित्यिक कार्य

आर्यसमाज कलकत्ता ने प्रारम्भ से ही पर्याप्त साहित्यिक कार्य किया। प्रारम्भ में श्री गोविन्दराम हासानन्दजी जब आर्यसमाज के पुस्तकाध्यक्ष और मंत्री के पदों पर थे। उस समय जो साहित्यिक सेवा का कार्य आरम्भ किया, वह निरन्तर बढ़ता हो गया। पं० अयोध्या प्रसाद, पं० सुखदेव विद्यावाचस्पति और प० रमाकान्त जी शास्त्री, ठा० नमर सिंह जी आर्य पथिक एवं पं० प्रियदर्शन जी द्वारा अनेकानेक साहित्य का सृजन किया गया। पं० उमाकान्त जो उपाध्याय का साहित्यिक कार्य "आर्यसंसार" के सम्पादन से आरम्भ होता है। इनके द्वारा लिखित पुस्तक आर्यसमाज कलकत्ता से प्रकाशित हुई जिनमें भगवान श्री कृष्ण, श्रावणी उपाकर्म, मूर्ति पूजा समीक्षा, अर्थशोच, आर्यसमाज का परिचय, वेदों में गोरक्षा या गोवध, हन्सामत की मिथ्या वाणी, कम्युनिज्म के मोर्चेपर स्वामी दयानन्द, श्राद्ध तर्पण, वेद में नारी, काशी शास्त्रार्थ : एक समीक्षा प्रमुख हैं। डा० योगेन्द्र कुमार शास्त्री का 'त्रैतवाद का उद्भव और विकास' का प्रकाशन आर्य समाज कलकत्ता द्वारा किया गया। भारतीय स्वतन्त्रा संग्राम म आर्य समाज की दिन प्रमुख स्थान रखता है। "आर्य-संसार" के विशेषांक के रूप में "आनन्द संग्रह" एवं स्वामी नित्यानन्द के 'व्याख्यानमाला' ग्रन्थ प्रकाशित हुए। बंगला भाषा एवं देवनागरी लिपि में मूल लेखक सत्यबन्धु दास द्वारा लिखित श्री दयानन्द चरित्र का बंगला एवं हिन्दी अनुवाद विशेपांक की कड़ी के रूप में गत वर्ष सत्य उपदेशमाला प्रकाशित हुआ तथा इस वर्ष आर्य-संसार के विशेषांक के रूप में धर्म का आदि श्रोत प्रकाशित हुआ है।

आर्य संसार मासिक पत्र

आर्यसमाज कलकत्ता द्वारा एक मासिक पत्र का प्रकाशन पं० उमाकान्त उपाध्याय के सम्पादकत्व में होता है। यह व्यवसायिक पत्रिका नहीं है। इसका मूल्य नाममात्र का है। इसके प्रकाशन के पीछे अपने सहयोगियों से सम्पर्क स्थापित रखने के साथ ही सैद्धान्तिक रूप में कुछ सेवा करना है। साहित्य-सेवा की दृष्टि से आर्यसमाज कलकत्ता के वार्षिकोत्सव पर प्रकाशित विशेषांकों का विशेष महत्व है। इसी कड़ी में आर्यसमाज कलकत्ता ने विभिन्न अनुपलब्ध साहित्य का प्रकाशन किया। इसका प्रकाशन नियमिय रूप से १९५८ ई० से हो रहा है।

विद्यार्थी सहायता

आर्यसमाज कलकत्ता विद्यार्थी सहायता के मद में प्रायः विद्यालयों एवं गुरुकुलों में पढ़ने वाले छात्रों को अपना सहयोग देता रहता है। वर्त्तमान में उड़ीसा के पानपोष स्थित गुरुकुल को आर्यसमाज द्वारा सहयोग दिया जा रहा है।

एक छात्र को आन्ध्रप्रदेश, उड़ीसा, मेरठ, बनारस में प्रत्येक को छात्रवृत्ति दी जाती है।

पेय जल सेवा

विगत कई वर्षों से आर्यसमाज मन्दिर के सामने ही आर्यसमाज कलकत्ताके संरक्षण में श्रीमती महादेवी चेरीटेबुल ट्रस्ट की ओर से एक सुन्दर स्वच्छ प्याऊ चल रहा है।

इस वर्ष से प्याऊ के लिये श्रीमती चम्पादेवी की ओर से ३००) मासिक दान मिल रहा है।

पर्वोत्सव श्रावणी एवं वेद सप्ताह

आर्यसमाज कलकत्ता द्वारा नव शस्येष्टि, दीवाली, विजयादशमी, ऋषि निर्वाण दिवस, आर्यसमाज स्थापना दिवस आदि पर्व मनाये गये।

इनके अतिरिक्त श्रावणी पर यजुर्वेद पारायण यज्ञ पं० उमाकान्तजी उपाध्याय के अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ।

शास्त्रार्थ महारथी पं० शांति प्रकाश जी एवं पं० रुद्रदत्त शास्त्री वेद कथा का सुन्दर आयोजन श्रावणी पूर्णिमा से कृष्णजन्माष्टमी तक किया गया। इस महायज्ञ में पं० उमाकान्त उपाध्याय, पं० शिवनन्दन प्रसाद वैदिक, पं० प्रियदर्शन सिद्धान्तभूषण, पं० रामनरेश शास्त्री, पं० श्रीकान्त उपाध्याय एवं पं० आत्मानन्द शास्त्री ने ऋत्विज का भार संभाला। इस महत् पर्व समारोह का समापन श्री कृष्ण जन्माष्टमी पर्व के साथ समपन्न हुआ।

बिजया दशमी व दीपावली पर्वोत्सव

उपरोक्त उभय पर्वों के अवसर पर विशेष यज्ञ का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। बिजयदशमी पर्व प्रधान श्री सीताराम आर्य की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ जिसमें वक्ता श्री श्रीराम आर्य, श्री वैद्यनाथ शास्त्री, श्रीमती सुनीति शर्मा, श्री श्रीनाथदास गुप्त एवं पं० रामकृष्ण शास्त्री थे। ऋषि निर्वाण दिवस एवं दीपावली पर्व श्री सीताराम आर्य की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ जिसमें श्री मनीराम आर्य, पं० देवनारायण तिवारी, श्री श्रीनाथदास गुप्त, श्री कुलभूषण सभरवाल, श्रीराजेन्द्र प्रसाद जायसवाल, श्री देवीप्रसाद मस्करा आदि के व्याख्यान हुए।

शुद्धि संस्कार (वैदिक धर्म प्रवेश)

१—दिनांक २५-४-८८ को इ० एच० टिप्पू इस्लाम धर्म त्यागकर पं० आत्मानन्द शास्त्री के पौरोहित्य में वैदिक धर्म में दीक्षित हुए।

२—दितांक १-५-८८ को मिली पीटर ईसाई धर्म त्यागकर पं० आत्मानन्द शास्त्री के पौरोहित्य में वैदिक धर्म में दीक्षित हुई।

३—दिनांक २६-५-८८ को कु० रेहाना खान इस्लाम धर्म त्याग कर पं० आत्मानन्द शास्त्री के पौरोहित्य में वैदिक धर्म में दीक्षित हुईं। इनका नाम नेहा कुमारी रखा गया।

४—कल्याण मंडल दिनांक २०-७-८८ को क्रिश्चयन धर्म त्यागकर प० प्रियदर्शन जी के पौरोहित्य में वैदिक धर्म में दीक्षित हुए। इनका नया नाम श्री आशीष आर्य पड़ा।

५—दिनांक ११-९-८८ को श्रीमती फामीदा हुसेन पं० प्रियदर्शन सिद्धान्तभूषण के पौरोहित्य में इस्लाम धर्म त्यागकर वैदिक धर्म में दीक्षित हुईं। इनका नाम शुभाश्री राय पड़ा।

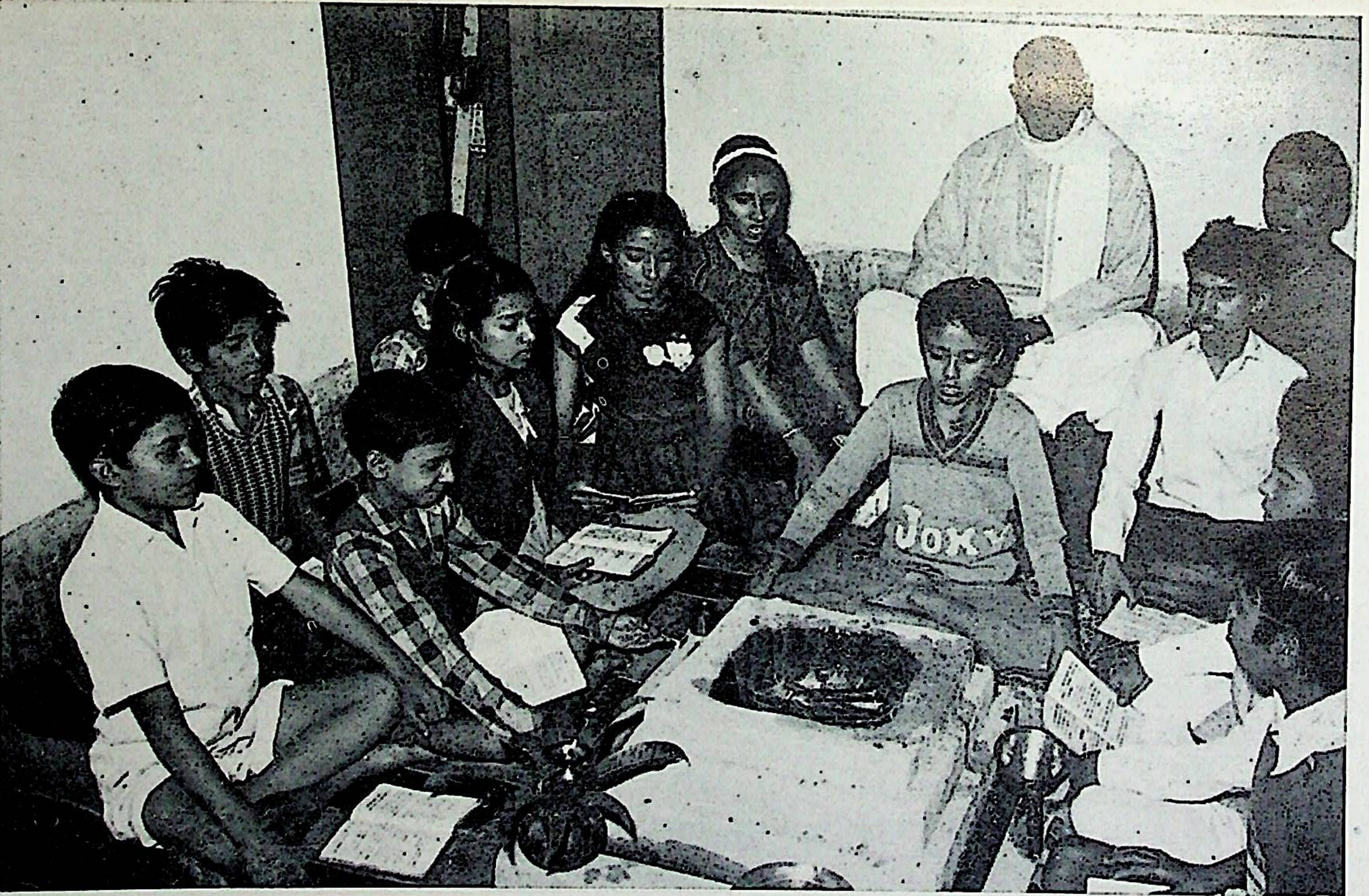
शुद्धि तिलक एवं विवाह संस्कार

इस वर्ष हमारे आर्यसमाज मन्दिर में हमारे योग्य पुरोहितों द्वारा ५ शुद्धियाँ २३ विवाह संस्कार तथा ३१ वाग्दान (तिलक समारोह) कराये गए।

वार्षिकोत्सव

वार्षिकोत्सव हमारे समाज का विशेष आकर्षण, प्रचार-प्रसार का स्रोत तथा महान धर्म वृद्धि का आयोजन है। इस अवसर पर हमारे आगन्तुक विद्वानों के अतिरिक्त यहाँ के भी विद्वज्जन अपनी सेवाओं से समाज को कृतार्थ करते हैं। वार्षिकोत्सव सदैव दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में होता है, जिसका आयोजन ९ दिनों तक बड़े धूमधाम से चलता है। उत्सव में अन्य धार्मिक कार्यक्रमों के अतिरिक्त समय समय पर विशेष सम्मेलनों का भी आयोजन होता है। शंका समाधान आदि जैसे कार्यक्रम विधिवत् सम्पन्न होते हैं।

इस वर्ष आर्यसमाज कलकत्ता का १०३सरा वार्षिक समारोह दिनांक २४ दिसम्बर ८८ से १ जनवरी १९८९ ई० तक मुहम्मद अली पार्क में मनाया गया।



बाल सत्संग पं० प्रियदर्शन सिद्धान्तभूषण के आचार्यत्व में

इस समारोह पर सामवेद पारायण यज्ञ का आयोजन किया गया। इसके ब्रह्मा थे आचार्य उमाकान्त उपाध्याय एवं ऋत्विज थे पं० रामनरेश शास्त्री, पं० प्रियदर्शन सिद्धान्तभूषण, पं० श्रीकान्त उपाध्याय, पं० आत्मानन्द शास्त्री एवं पं० शिवनन्दन प्रसाद वैदिक।

विद्वानों वक्ताओं में (१) आचार्य प्रेमभिक्षु जी (मथुरा) (२) डा० ओम दत्त शर्मा (मेरठ) (३) श्री वृजपाल शास्त्री बम्बई (४) प्रो० अनूप सिंह (५) श्रीमती सावित्री देवी शर्मा (६) श्री दिनेश दत्त आर्य इत्यादि ने पधार कर उत्सव को सफल बनाया। वेद सम्मेलन, महिला सम्मेलन, राष्ट्रीय एकता सम्मेलन, आर्य संस्कृति सम्मेलन इत्यादि आयोजित हुये।

स्थिर निधियाँ

श्री जगदीश तिवारी द्वारा २०,०००) का आर्यसमाज कलकत्ता a/c श्रीमती हौसला देवी तिवारी के नाम पर स्थिरनिधि खोला गया जिसके व्याज से दयानन्द धर्मार्थ औषधालय में दवा आदि क्रय किया जायेगा।

आर्यसमाज कलकत्ता a/c सरोज अरोड़ा के नाम पर १०,०००) का एक स्थिरनिधि स्थापित की गई है जिसके व्याज को वार्षिकोत्सव के अवसर पर यज्ञ के लिए खर्च की जायेगा।

श्रद्धाञ्जलियाँ

१. श्री वीरसेन वेदश्रमी
२. श्री हृदय नारायण झा
३. आचार्य विश्वबन्धु शास्त्री
४. श्रीमती करतार देवी
५. आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री
६. श्रीमती सरोज आहूजा
७. श्री कृष्णचन्द्र अग्रवाल

८. श्री गोपीनाथ चौधरी
९. श्री सन्तराम बी० ए०
१०. श्री गजानन्द आर्य की दादी जी
११. श्री विष्णु कान्त शास्त्री की धर्मपत्नी
१२. आचार्य रामानन्द शास्त्री
१३. श्रीमती सत्यवती शालवाले
१४. श्री मोती लाल
१५. श्री दिनेश चन्द्र शर्मा
१६. श्री कृष्ण प्रधान

धन्यवाद ज्ञापन

आर्यसमाज कलकत्ता के कर्मठ कार्यकर्ताओं, अन्तरंग के सदस्यों एवं कर्मचारियों के हार्दिक सहयोग से वर्तमान वर्ष का कार्य पूर्ण हुआ, अतः इन सभी महानुभावों के प्रति आभार प्रदर्शित करते हुए सबका हार्दिक धन्यवाद करते हैं

आशा है, भविष्य के लिये भी वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार निमित्त जो भी योजना बनायी जावेगी उसमें आप सबका पूर्ण सहयोग प्राप्त होता रहेगा।

रुलियाराम गुप्त — प्रधान

राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल — मन्त्री

हार्दिक आभार

आर्यसमाज कलकत्ता, १९ विधान सरणी के १०३ सरे वार्षिकोत्सव (दिनांक २४ दिस० '८८ से 1 जनवरी १९८९ ई०) के उपलक्ष्य में जिन श्रीमन्त महानुभावों ने समारोह के सम्बन्ध में स्वेच्छा से प्रेमपुर्वक धन राशि अर्पित की है या अर्पन करने का वचन दिया है उन सभी दान दाताओं के हम हृदय से आभारी हैं।

इनके अतिरिक्त जिन व्यापारियों, प्रतिष्ठानों के मालिकों ने आर्य-संसार स्मारिका में विज्ञापन देकर हमें सहायता की है उनका हम हार्दिक धन्यवाद करते हैं।

इतना ही नहीं, जिन नर-नारियों ने धन या विज्ञापन संचित करने में घर का कारोबार स्थगित करके, स्वल्प समय में रात-दिन अथक परिश्रम किया है और इस स्मारिका को भी सफल बनाया है उनका किन शब्दों में हम आभार प्रकट करें ? वे भी हमारे स्नेह और धन्यवाद के पात्र है।

अपने अन्तरंग साथियों, उत्साही नवयुवक मित्रों एवं उन सभी सह-योगियों, जिनकी निष्ठा, संकल्प और श्रम से हम अपने ध्येय तक पहुँच सके हैं, का आभार प्रकट करते हैं। परम पिता परमेश्वर की अपार कृपा से यह सब सम्पन्न हुआ है।

हम उन विद्वानों और विदुषियों को भी धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते जिन्होंने देश के विभिन्न अंचलों से पधार कर अपने व्याख्यानों द्वारा हमें प्रोत्साहित एवं अनुगृहीत किया है।

रुलियाराम गुप्त
प्रधान

राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल
मन्त्री

आर्य समाज के नियम

१—सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूलरमेश्वर है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, नर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य पवित्र और सृष्टि-कर्त्ता है। उसीकी उपासना करनी योग्य है।

३—वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सदा उद्यत रहना चाहिए।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करना चाहिए।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है। अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७—सबसे प्रीति पूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

९—प्रत्येक को अपनी उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए। और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

विज्ञापन-सूची

विज्ञापन	पृष्ठ संख्या
मैनी वाच कम्पनी	१
साकेत मोटर्स	२
सिंह एण्ड सन्स	३
श्री शीतल प्रसाद आर्य एण्ड सन्स	४
बागेश्वरी राम शिवनारायण	५
दीपा इन्टरप्राईजेज	६
रघुबीर प्रसाद गुप्त एण्ड सन्स	७
एम० ए० स्टील ट्रेडर्स	८
जे० एम० कारपोरेशन	९
शीतल प्रसाद काली प्रसाद	१०
विक्टोरिया कारपोरेशन (इण्डिया)	११
गोविन्द ब्रादर्स	१२
इञ्जीनीयर्स (इण्डिया) कारपोरेशन	१३
दिनेश इलेक्ट्रिक कम्पनी	१४
ट्रांजीस्टर क्लाक इण्डस्ट्रीज	१५
आ० सी० ट्रेडिंग कम्पनी	१६
के० आर० स्टील यूनियन लि०	१७
नवीन ट्रेडिंग कारपोरेशन	१८
श्याम ट्रेडिंग कम्पनी	१९
शीतल प्रसाद विन्ध्याचल प्रसाद	१९
माउण्टेड पॉन्ट्स सप्लायर्स	२०
कानपुर स्टील ट्रेडर्स	२१

विशेष-विज्ञापन

विज्ञापन	पृष्ठ संख्या
स्वर्गीय श्री देवराज आर्य की स्मृति में	६
राजाराम जायसवाल	७
न्यू पटना ट्रान्सपोर्ट एजेन्सी	८
के० बी० सभरवाल एण्ड ब्रादर्स	९
फास्ट एण्ड सेफ ट्रान्सपोर्ट	१०
जयभारत बकेट इण्डस्ट्रीज	११
रानपाड़ा इण्डस्ट्रीज	१२
सैनी इण्टरनेशनल	१३
श्री गणेश विन्देश्वरी प्रसाद	१४
सागर सिलाई मशीन	१५
मेवाललाल सुरेशचन्द	१६
ब्लेकर एण्ड कम्पनी प्रा० लि०	१७

आवरण पृष्ठ

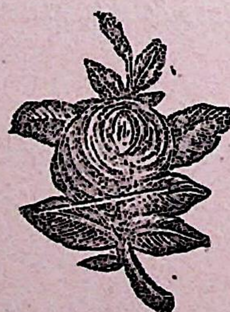
श्री रोडवेज प्रा० लिमिटेड	द्वितीय
ट्रान्सपोर्ट कारपोरेशन आफ इण्डिया लिमिटेड	तृतीय
दोषी सेन फेब्रिको	चतुर्थ

आर्यसमाज कलकत्ता के १०३सरे वार्षिकोत्सव के अवसर पर
हमारी हार्दिक शुभकामनायें :

ओ३म् समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः, समानेन वो हविषा जुहोमि ॥

हों बिचार समान सबके चित्त मन सब एक हों ।
ज्ञान देता हूँ बराबर भोग्य पा सब नेक हों ॥

स्वर्गीय श्री देवराज आर्य की स्मृति में



यतेन्द्रकुमार आर्य
१५७, बी० के० पाल एवेन्यू
कलकत्ता-५

॥ ओ३म् ॥

महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती।
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि
वार्य्येसुजाते अश्वसूनृते। ॥ ४२१ ॥ सामवेद ॥

भावार्थः—इसमें ऊषा की प्रसंशा के साथ-साथ परमात्मा का यह उपदेश है कि जो लोग ऊषा काल प्रभात-वेला में जागते हैं वे उद्यमी, कर्मण्य और धनधान्य आदि ऐश्वर्यशाली होते हैं। और जो स्त्री ऊषा के समान गुण कर्म स्वभाव वाली होती है उसके घर में लक्ष्मी निवास करती है।

॥ ओ३म् ॥

जिनकी महत्ता का न कोई पा सका है भेद भी
संसार में प्राचीन सबसे हैं हमारे वेद ही।
इन्जील और कुरान आदिक थे न तब संसार में।
हमको मिला वर वेद वैदिक बोध जब संसार।
—भारत-भारती अ० ख०

॥ ओ३म् ॥

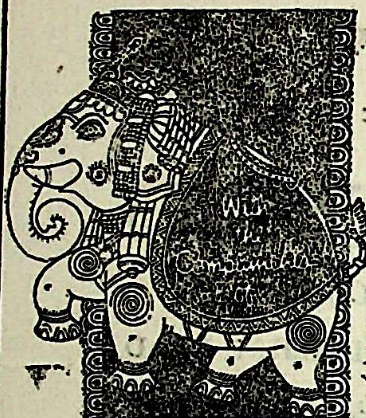


ओ३म्

यस्यामन्न व्रीहियवौ यस्या इमा पञ्च कृष्टयः ।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे ॥
अ० बृ० सू० ४२

पद्यानुवाद

यहाँ अन्न जो चावल उपजे पाँचों प्रजा बसें सुखसार
वर्षा मेघ मुदित माता को होवे नमस्कार बहुबार ॥



॥ ओ३म् ॥



Kanpur Steel Traders

IRON & STEEL MERCHANTS

C. R. Sheet, B. P. Sheet. Sheet Cutting, C. R. Coil

Cut Coil Def. Strips Mise Scraps.

67B, Kailash Bose Street.
Calcutta-700006

**

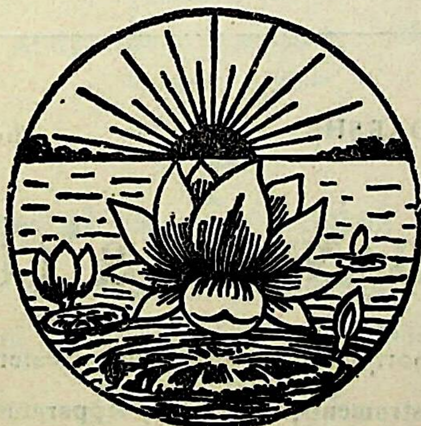
Godown :

286/287, G. T. ROAD,

SALKIA. HOWRAH

With the best Compliments of

Artech Trade Centre



Dealers in :

ALL KINDS OF BALL BEARINGS

SPACE Donated by

Phone : Office : 39-3602
Resi. : 54-3836

MINERAL TRADING CORPORATION

Dealers in :

Ferro Alloys And Manufacturer of Magnesite Ramming Mass

●

Mineral & Ceramist CO.

Manufacturing & Processing of :

Magnesite Ramming Mass T. C. Dolomite & Sintered Dolomite

Works :
99, B. T. Road
(Inside Panihati Nursing Home
Sodepur, 24 Pgs. (W. B.)
Phone : 58-3633

Sales Office :
2/B, Jadulal Mullick Road
Calcutta-700006
Phone : 39-3602
54-3836

आर्यसमाज कलकत्ता के १०३ वें वार्षिकोत्सव पर

हमारी हार्दिक शुभकामनाएँ

हिन्दुस्तानी केसर कस्तूरी भण्डार

बाजार चूड़ह बेरी

अमृतसर (पंजाब)

केसर, हींग, मोती, शिलाजीत, किराना, जड़ी-बूटी व आयुर्वेदिक औषधियों के थोक विक्रेता।

विशाल ट्रैक्टर स्पेयर्स

४, खेरू प्लेस

कलकत्ता

॥ ओ३म् ॥

Phone : 35-3992

U. P. Steel Traders

Dealers in :

"IRON STEEL" Merchants C. R. C. & B. P. Sheet & General Order Suppliers

77, Kailash Bose Street, Calcutta-700006

With best compliments of :

Gram : "FACILITIES"

Phone : 25-1603

Kedia Brothers Ltd.

138, Canning Street.

Calcutta-700001

(Engineers & Mill Stores Merchants.)

।। ओ३म् ।।

॥ ओ३म् ॥

॥ ओ३म् ॥



Hindusthan Road Carriers



P-7, DALIM TOLLA LANE,
CALCUTTA-700 006

॥ ओ३म् ॥



॥ ओ३म् ॥

With best Compliments of :

SHREE BHAGWATI INDUSTRIES

Govt. Approved Contractors & Fabricators

Manufacturers of :

Electrical Conduits, Furniture Tubes, Lancing Tubes
M. S. Pipe Round & Square
(Registered S. S. I. Unit)

Office :
134/1, Mahatma Gandhi Road
Calcutta-70 ˈ 007
Phone : 38-4933

Factory
69, Dharmtolla Road
Ghusory, Howrah
Phone : 66-4296

|| ओ३म् ||

With the best Compliments of

R. C. M. Trading Compny.

25/2, Khetro Mittro Lane,

(Salkia Howrah)



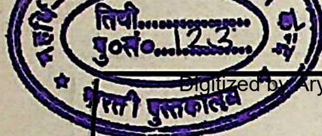
Ramjee Trading Corporation

Iron & Steel Merchants.

C. R. B. H. & H. R. Sheet.

AND

Shearing All Types of Sheet.





With the Best Compliments of

M/s Phenoweld Polymer Pvt. Ltd.

Saki Vihar Road,
Bombay 400072



Manufacturers of :.

Polyma Fabric Rolling Mill Water Cooled
Roll Neck Bearings-Range From
6 "Mill Upto 46" Mill size Bearing



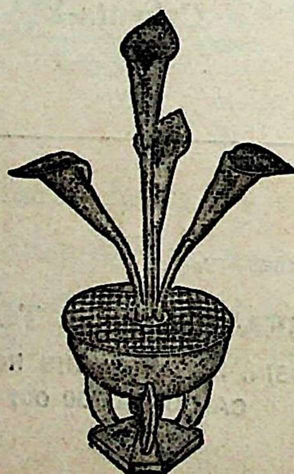
Commander Brand

1. W. C. Seat Covers
2. Bathroom Cabinets
3. Acrylic Bath Tubs



आर्य-समाज कलकत्ता के १०३ रा वार्षिक विशेषांक के
शुभ अवसर पर हार्दिक शुभ कामना सहित :





M|s MARTEX (INDIA)

आर्य-संमाज कलकत्ता, १९, विधान सरणी, कलकत्ता ६ के लिए प० उमाकान्त उपाध्याय, एम० ए० द्वारा संपादित एवं प्रकाशित तथा एसोशियेटेड आर्ट प्रिण्टर्स, ७/२, बीडन रो, कलकत्ता-६ में मुद्रित।